तृण सन्देश

राजभाषा वार्षिक पत्रिका

अंक – 15, वर्ष 2019–20

भा.कृ.अनु.प. – खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर

ICAR - Directorate of Weed Research, Jabalpur

आई.एस.ओ. 9001 : 2015 प्रमाणित

ISO 9001 : 2015 Certified

GLOBAL
CERTIFICATION SERVICES

Registration Certificate

This is to Certify that

ICAR-DIRECTORATE OF WEED RESEARCH

MAHARAJPUR, ADHARTAL,

JABALPUR-482004, (M.P.), INDIA.

has been assessed by Global Certification services and found to comply the requirements of

ISO 9001 : 2015

Quality Management System

For the following activities :

RESEARCH & TRAINING IN WEED MANAGEMENT

The Validity of Certificate is subject to regular surveillance audit on or before below mentioned dates and it's only valid after successfull surveillance with continuation letter issued by GCS

Initial Date of Certification - 21th December 2016 Current Date of Certification 21th December 2016

Date of Expiry : **20 December 2019**

1st Surveillance Audit **November 2017**

2nd Surveillance Audit **November 2018**

Certification Number : **GCS/QMS/0351**

Director

Global Certification Services

REGN.NO.UKAF-CB-024

This certificate of registration remains the property of GCS and shall be returned immediately upon request.
GCS is accredited by UK Akkreditaring Forum Limited, UK (www.ukaf.org.uk)
5 Jupiter House, Calleva Park, Aldermaston, Reading Berkshire RG78NK UK

Limca

Book of Records

World Record

Directorate of Weed Science Research (DWSR), Jabalpur, Madhya Pradesh, established as National Research Centre for Weed Science on April 22, 1989 and upgraded as DWSR on Jan 23, 2009, is the only institute of its kind in the world in field of weed management research.

Vijaya Ghose

Editor, Limca Book of Records

"LIMCA BOOK OF RECORDS" IS THE COPYRIGHT OF THE COCA-COLA COMPANY, "LIMCA" IS THE REGISTERED TRADEMARK OF THE COCA-COLA COMPANY
THIS CERTIFICATE DOES NOT NECESSARILY DENOTE AN ENTRY INTO LIMCA BOOK OF RECORDS

तृण सन्देश

राजभाषा वार्षिक पत्रिका

अंक – 15, वर्ष 2019-20

भा.कृ.अनु.प. – खरपतवार अनुसंधान निदेशालय

ICAR - Directorate of Weed Research

जबलपुर, मध्य प्रदेश

Jabalpur, Madhya Pradesh

आई.एस.ओ. 9001 : 2015 प्रमाणित

ISO 9001 : 2015 Certified

राजभाषा कार्यान्वयन समिति 2019–20

डॉ. पी. के. सिंह – अध्यक्ष

श्री मुकेश कुमार मीणा – सचिव

डॉ. योगिता घरडे – सदस्य

श्री आर. एस. उपाध्याय – सदस्य

श्री जी. आर. डोंगरे – सदस्य

श्री बसंत मिश्रा – सदस्य

श्री मनोज गुप्ता – सदस्य

सम्पादक मण्डल

डॉ. पी. के. सिंह
प्रधान संपादक

जी. आर. डोंगरे
संपादक

श्री एम. के. मीणा
सह–संपादक

डॉ. वी. के. चौधरी
सदस्य

डॉ. योगिता घरडे
सदस्य

श्री संदीप धगट
सदस्य

मुख्य पृष्ठ डिजाईन एवं रेखांकन

श्री व्ही.के.एस. मेश्राम

छायांकन

श्री बसंत मिश्रा

टंकण

कु. श्वेता सोनी

प्रकाशक

निदेशक, भाकृअनुप– खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर

इस पत्रिका के लेखों में व्यक्त विचार रचनाकारों के हैं। सम्पादक मण्डल उनके विचारों के लिए किसी प्रकार से उत्तरदायी नहीं है।

संपादकीय

भारत जैसे कृषि प्रधान देश जहां देश की अधिकतम आबादी गांवो में बसती हैं। उनके जीविका उपार्जन का एक मात्र स्त्रोत खेती, पशुपालन मत्स्य पालन आदि हैं। ग्रामीण अंचल के कृषक जो भारत के अन्नदाता हैं वे वर्षों से परम्परागत खेती करते आ रहे हैं तथा बदलते कृषि आयामों को ना समझने, नवीनतम अनुसंधानिक तकनीकों को ना अपनाने से कृषि क्षेत्र लाभ का व्यवसाय नहीं हो पा रहा है, साथ ही साथ एक बड़ा वर्ग खेती से दूर भाग रहा हैं। ऐसे समय में कृषकों को नई वैज्ञानिक विधि द्वारा खेती करने तथा अधिक से अधिक लाभ अर्जित करने के लिए खरपतवार अनुसंधान निदेशालय प्रतिबद्ध है। इस हेतु निदेशालय के राजभाषा कार्यान्वयन समिति द्वारा प्रकाशित राजभाषा पत्रिका "तृण संदेश" का पंद्रहवा अंक एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सुखद अनुभूति प्रदान कर रहा है। प्रचार–प्रसार के इस युग में इस बात की महती आवश्यकता है कि वैज्ञानिक अन्वेषण सरल व सहज भाषा में अधिकाधिक कृषक वर्ग तक पहुंचे जिससे हमारे किसान भाई वैज्ञानिक तकनीकों की जानकारी को ग्रहण कर खेतों में अपेक्षा के अनुरूप उत्पादन प्राप्त कर सकें। निदेशालय द्वारा "मेरा गाँव मेरा गौरव" "फार्मर फर्स्ट" एवं अन्य योजनाओं के अंतर्गत किसानों के खेतों में कृषि तकनीकों का हस्तांतरण किया जा रहा है, साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न कार्यक्रमों एवं गतिविधियों के माध्यम से भी प्रचार–प्रसार किया जा रहा है। जिससे निदेशालय के कृषि वैज्ञानिकों से किसानों का सीधा सम्पर्क एवं संवाद हो रहा है जिसका लाभ किसानो को मिल रहा है।

नवीनतम अनुसंधान के परिणामों को किसानों तथा जन–साधारण तक हिन्दी में पहुँचाना निदेशालय का प्रमुख ध्येय है। इस उपलब्धि को हासिल करने हेतु निदेशालय निरंतर प्रयासरत है। जिससे वैज्ञानिक उपलब्धियों को किसानों तक आसानी से उनकी अपनी हिन्दी सरल भाषा में पहुँचाया जा सके, तथा दिन–प्रतिदिन किये जा रहे नए–नए अनुसंधानों की जानकारी एवं लाभ किसान तक सहजता से पहुँच सके। विगत कुछ वर्षों में विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र में हमारे देश ने विशेष प्रगति की है संचार माध्यमों के विशेष प्रचार–प्रसार का सकारात्मक प्रभाव हमारी कृषि पर भी पड़ा है निदेशालय द्वारा समय–समय पर इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों से भी सम्पर्क कर अथवा संदेश भेजकर कृषकों को कृषि संबंधी समसामयिक जानकारी प्रदान की जा रही है तथा संरक्षित कृषि व खरपतवार प्रबंधन के विभिन्न वैज्ञानिक तरीकों से अवगत कराया जा रहा है। इस आधुनिक युग में नई–नई तकनीकी एवं कृषि संबंधित जानकारियो को हिंदी भाषा में सहज उपलब्ध कराना भी निदेशालय का एक ध्येय है। ऐसे समय में इस पत्रिका का निदेशालय द्वारा प्रकाशन, और प्रासंगिक एवं व्यावहारिक बनाने की दिशा में एक सराहनीय कदम हैं। कृषि उत्पादन को अंतराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप एवं कृषि विज्ञान को राजभाषा के माध्यम से लक्ष्य की प्राप्ति हेतु कृषि के प्रत्येक क्षेत्र, अर्थात् कृषि शिक्षा, कृषि शोध एवं प्रसार को सुदृढ़ बनाने की आवश्यकता है। इसी तारतम्य में फसलों को खरपतवारों से होने वाली समस्याओं को दूर करने के लिए इस निदेशालय द्वारा अनेक प्रयास किए जा रहें हैं। सभी विकसित तकनीकों को कृषकों तक पहुँचाने के लिए राजभाषा का उपयोग सहज हैं चूंकि हमारे देश में विभिन्न जनसमुदाय विभिन्न बोलियां बोलते है परंतु हिन्दी एक मात्र ऐसी भाषा है जो विभिन्न भाषा बोलियों के बीच सेतु का कार्य करती हैं, जिसके माध्यम से हम अपनी अभिव्यक्ति एवं ज्ञान को दूसरों तक आसानी से पहुँचा सकते हैं।

"तृण संदेश" पत्रिका के पंद्रहवे अंक मे खरपतवार प्रबंधन में किए गए शोध लेखों के साथ–साथ संरक्षित खेती एवं सामान्य खेती से संबंधित महत्वपूर्ण विषयों को समाहित किया गया हैं। हिन्दी के उन्नयन के प्रति संकल्पित उक्त पत्रिका में प्रकाशित शोध लेखों व अन्य लेखकों के उत्कृष्ट विचारों से किसान व कृषि जगत से जुड़े लोग निश्चित रूप से लाभान्वित होंगे। हम सभी वैज्ञानिकों, लेखकों, कवियों, कहानीकारों के आभारी हैं जिन्होंने अपने विचारों को लेखनीबद्ध कर पत्रिका के माध्यम से प्रस्तुत किया हैं। साथ ही साथ हम उन सभी सहयोगियों के हार्दिक आभारी हैं जिनके योगदान एवं प्रयासों से पत्रिका के "पंद्रहवें संस्करण" का प्रकाशन संभव हो सका है। आशा है कि आपको हमारे प्रयास पसंद आयेंगे। हम आपके सुझावों एवं प्रतिक्रिया हेतु आशान्वित रहेंगे।

दिनांक : 15 जुलाई, 2020

संपादक मण्डल

भाकृअनुप

ICAR

सत्यमेव जयते

डॉ. त्रिलोचन महापात्र, पीएच.डी.
सचिव एवं महानिदेशक

Dr. TRILOCHAN MOHAPATRA, Ph.D.
SECRETARY & DIRECTOR GENERAL

भारत सरकार
कृषि अनुसंधान और शिक्षा विभाग एवं
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, कृषि भवन, नई दिल्ली 110 001

GOVERNMENT OF INDIA
DEPARTMENT OF AGRICULTURAL RESEARCH & EDUCATION
AND
INDIAN COUNCIL OF AGRICULTURAL RESEARCH
MINISTRY OF AGRICULTURAL AND FARMERS WELFARE
KRISHI BHAVAN, NEW DELHI 110 001
Tel : 23382629, 23386711 Fax : 91-11-23384773
E-mail: dg.icar@nic.in

संदेश

खरपतवार, फसलीय एवं गैर–फसलीय दोनों क्षेत्रों की एक गंभीर समस्या है। खरपतवार जहां एक ओर फसलों से प्रतिस्पर्धा करके पानी, पोषक तत्वों तथा सूर्य प्रकाश से उन्हें वंचित करके उनकी बढ़वार को अवरोधित करते हैं वहीं दूसरी ओर जैव विविधता को भी नुकसान पहुंचाते हैं। खरपतवारों के कारण किसानों को फसलीय क्षेत्रों में लगभग 33 से 35 प्रतिशत तक का नुकसान उठाना पड़ता है।

वर्ष 2022 तक किसानों की आय को दोगुना करने के संकल्प को साकार रूप देने के लिए कृषि उत्पादन को बढ़ाना जरूरी है और इसके लिए भाकृअनुप–खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर द्वारा खरपतवारों के प्रबंधन एवं नियंत्रण हेतु नवीनतम अनुसंधान किए जा रहे हैं। अनुसंधान उपरान्त नवीनतम तकनीकों को किसानों तक उनकी ही भाषा में पहुँचाना अति महत्वपूर्ण है जिससे कि तकनीकों का हस्तांतरण यथाशीघ्र हो सके और आगामी वर्षों में किसानों की आय को बढ़ाने में यह सहायक हो।

इस दिशा में ''तृण संदेश'' पत्रिका का प्रकाशन एक सराहनीय प्रयास है। इस वर्ष इसके पंद्रहवें अंक का प्रकाशन किया जा रहा है।

पत्रिका की सफलता के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

दिनांक : 26 जून, 2020

(त्रिलोचन महापात्र)
महानिदेशक, भा.कृ.अनु.प.

भाकृअनुप
ICAR

डॉ. सुरेश कुमार चौधरी
उप महानिदेशक (प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन)

Dr. Suresh Kumar Chaudhari
Deputy Director General
(Natural Resource Management)

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन–II
पूसा, नई दिल्ली 110012, भारत

INDIAN COUNCIL OF AGRICULTURAL RESEARCH
KRISHI ANUSANDHAN BHAVAN-II,
PUSA, NEW DELHI 110012, INDIA

भाकृअनुप
ICAR

संदेश

भा.कृ.अनु.प.–खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर अनुसंधान के साथ–साथ फसलीय एवं गैर फसलीय क्षेत्रों में खरपतवारों से हो रहे नुकसान से किसानों एवं समाज को जागृत करने एवं उनके नियंत्रण हेतु नवीनतम अनुसंधान कर देश के कृषि उत्पादन को बढ़ाने में एक अहम् भूमिका निभा रहा है।

कृषि के क्षेत्र में किए जा रहे नवीनतम अनुसंधानों की उपयोगिता एवं सार्थकता तभी है जब वे किसानों की पहुँच में तथा समझ में आ सके। इस हेतु हिन्दी भाषा से अच्छा विकल्प कोई और राष्ट्रव्यापी भाषा नहीं हो सकती। हिन्दी एक सरल, सुसंस्कृत एवं वैज्ञानिक भाषा है इसका उपयोग वैज्ञानिक लेखन में अधिक से अधिक होना चाहिए।

तृण संदेश पत्रिका का इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। मैं ''तृण संदेश'' के पंद्रहवे वार्षिक अंक के सफल प्रकाशन की कामना करता हूँ एवं इस अवसर पर संपादक मण्डल को विशेष बधाई देता हूँ।

दिनांक: 08 जून, 2020

(सुरेश कुमार चौधरी)

भाकृअनुप
ICAR

श्रीमती सीमा चौपड़ा
निदेशक, राजभाषा
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि भवन, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद मार्ग,
नई दिल्ली-110 001

भाकृअनुप
ICAR

संदेश

भाषा के माध्यम से विचारों का संप्रेषण अत्यधिक प्रभावी रूप से संभव है। भाषा परस्पर जुड़ाव का कार्य करती है। भाषा को बहते नीर की संज्ञा दी जाती है और हिंदी भाषा इस गुण से अलंकृत है।

हिंदी अपनी उदातत शैली के कारण निरंतर आगे बढ़ रही है। अपनी ठोस वैज्ञानिकता के साथ–साथ सरलता, सुगम्यता, समन्वय आदि अनेकानेक विशेषताओं के कारण यह जन मानस की चहेती भाषा बनती जा रही है। भाषा और साहित्य एक दूसरे के परिपूरक माने जा सकते है और दोनों का अस्तित्व एक–दूसरे पर निर्भर होता है। वैज्ञानिक ज्ञान जब पुस्तक आदि किसी स्वरूप में प्रस्तुत किया जाता है तो यह ज्ञान का साहित्य माना जाता है। इसी कड़ी में भा.कृ.अनु.प.–खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर द्वारा प्रकाशित ''तृण संदेश'' पत्रिका खरपतवारों के संबंध में हुए नये शोध को किसानों तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है।

इस अवसर पर मैं संपादक मंडल को बधाई देती हूँ तथा ''तृण संदेश'' पत्रिका के पंद्रहवें अंक के सफल प्रकाशन की कामना करती हूँ।

सीमा चौपड़ा 01.6.2020

दिनांकः 01 जून, 2020

(सीमा चौपड़ा)
निदेशक (राजभाषा)

भाकृअनुप
ICAR

निदेशक की कलम से...

भारतीय कृषि सतत् एक नये युग की तरफ अग्रसर है। आज हमारा देश, वैज्ञानिकों के द्वारा किए गए नित नवीन अनुसंधान, उन्नत तकनीक, कृषकों की मेहनत तथा सरकार के सफल प्रयासों से फसलों की पैदावार में आत्मनिर्भर हो सका है। देश की बढ़ती जनसंख्या एवं सीमित प्राकृतिक संसाधनों में सघन कृषि प्रणालियों द्वारा आज हमारा कुल अनाज उत्पादन वर्ष 2019–20 (दूसरा अग्रिम अनुमान) में 291.95 मिलियन टन रहा है जो कि विगत वर्ष की तुलना में 6.7 मिलियन टन अधिक है।

भारत के संदर्भ में कृषि–क्षेत्र का अर्थव्यवस्था के साथ गहरा संबंध है। भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का स्थान अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है, इस दृष्टि से भारत आज विश्व में सातवाँ सबसे बड़ा देश हैं, देश की जनसंख्या विश्व में दूसरे स्थान पर हैं। भारत के बारे में आज ऐसा कहा जाता है कि यह विश्व की सबसे तेजी से बढ़ने वाली अर्थव्यवस्था वाला देश हैं। इसकी वृद्धि दर विश्व के अन्य देशों से अधिक हैं। भारत उन विकासशील देशों में से एक है जिसकी जनसंख्या का एक बड़ा भाग कृषि पर निर्भर है। इसी कारण दुनिया के मानचित्र पर भारत को कृषि प्रधान देश माना गया है। जहां प्राकृतिक संसाधनों की कोई कमी नहीं है, देश की लगभग 60 प्रतिशत जनसंख्या अपनी आजीविका हेतु कृषि पर निर्भर है। भारत की खाद्यान्न आवश्यकता की पूर्ति कृषि द्वारा ही पूरी हो पाती है, साथ ही अनेक प्रमुख उद्योगों जैसे सूती वस्त्र उद्योग, जूट उद्योग, चीनी उद्योग, चाय उद्योग, सिगरेट उद्योग और तम्बाकू उद्योग, आदि के लिए कच्चा माल भी कृषि द्वारा उपलब्ध होता है। राष्ट्रीय आय का कृषि एक मुख्य स्त्रोत है। जो कि वर्तमान में देश की कुल सकल घरेलु उत्पाद में लगभग 17 प्रतिशत हिस्सेदारी रखता है।

खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर खरपतवार प्रबंधन के विभिन्न आयामों पर कार्य करने वाला विश्व का एक अग्रणीय संस्थान है, निदेशालय द्वारा नवीन अनुसंधान करने के साथ–साथ उपयुक्त तकनीक के लाभ से किसानों को जागरूक भी कराया जाता है। किसानों को खरपतवारों के प्रबंधन की उचित जानकारी प्रदान करने के साथ–साथ कृषकों के खेतों में प्रदर्शनों एवं गांवो में प्रक्षेत्र दिवस एवं किसान गोष्ठियों का आयोजन कर वैज्ञानिक तकनीकों से कृषकों को अवगत भी कराया जा रहा है। जो कि किसानों की आय को वर्ष 2022 तक दुगुना करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। निदेशालय द्वारा राजभाषा के प्रचार–प्रसार को बढ़ाने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाते हुए संस्थान का वार्षिक प्रतिवेदन द्विभाषी रूप में प्रकाशित किया जाता है। साथ ही साथ कृषकों, स्वयं सेवी संस्थाओं, राज्य कृषि विभाग के अधिकारियों एवं विषय विशेषज्ञों को प्रशिक्षण सामग्री के रूप में फसल विशेष में उन्नत खरपतवार प्रबंधन विषय पर हिन्दी में प्रकाशित विस्तार पत्रक भी दिये जाते हैं। जिससे हिन्दी का प्रचार–प्रसार तो बढ़ता ही है वही किसानों को सरल भाषा में वैज्ञानिक लेखन को पढ़ने का मौका मिलता है, जो आज की महत्वपूर्ण आवश्यकता है। निदेशालय की राजभाषा वार्षिक पत्रिका "तृण संदेश" के पंद्रहवे अंक में खरपतवार प्रबंधन के साथ–साथ विभिन्न फसलों की वैज्ञानिक विधि द्वारा खेती से संबंधित उपयोगी जानकारी संग्रहित है जो पत्रिका को उच्च स्तरीय बनाती है और पाठकों को लाभान्वित करती है। संस्थान में हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन के क्षेत्र में अनेक उत्तम प्रयास लगातार किये जा रहे हैं जो कि हर्ष का विषय है। इस अवसर पर मैं संपादक मंडल को पत्रिका के सफल प्रकाशन हेतु अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

दिनांक : 15 जुलाई, 2020

पी. के. सिंह
(निदेशक)

खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

DWR

अनुक्रमणिका

क्र.	विवरण	पृष्ठ संख्या

खण्ड ''अ''

1. **सीधी बुवाई वाले धान (डी.एस.आर.) में खरपतवार प्रबंधन** 1
   पी.के. सिंह एवं एस.के. पारे
2. **खरपतवारनाशी छिडकाव में संचालन संबंधी सुरक्षा और उचित पद्धति का चयन** 4
   चेतन सी.आर., जी.आर. डोंगरे, सुभाष चन्दर, दिवाकर घोष एवं दीपक पवार
3. **कृषकों की आय दोगुनी करने की दिशा में उन्नत खरपतवार प्रबंधन तकनीकी का संभावित योगदान** 6
   के.के. बर्मन, पी.के. सिंह, दिबाकर रॉय एवं हिमांशु महावर
4. **गैर रासायनिक खेती में खरपतवार प्रबंधन** 10
   वर्षा गुप्ता, दीप सिंह सासोडे, एकता जोशी एवं अंकिता वर्मा
5. **ग्रीष्मकालीन सब्जियों में खरपतवार नियंत्रण** 14
   एम.एस. रघुवंशी, आर.ए. मराठे, अमृता दरिपा, लालचंद मालव, जी.आर. डोंगरे, एच.एल. खरबीकर एवं सुदिप्तो चटराज
6. **फसल उत्पादन पर विभिन्न खरपतवार प्रबंधन प्रक्रियाओं का प्रभाव** 17
   वर्षा गुप्ता, एकता जोशी, दीप सिंह सासोडे एवं अंकिता वर्मा
7. **जयंती वेदा : एक उपेक्षित महत्वपूर्ण औषधीय खरपतवार** 20
   एम. एस. रघुवंशी, राजीव मराठे, सुदिप्तो चटराज, अमृता दरिपा, लालचंद मालव, एच.एल. खरबीकर, जी. आर. डोंगरे, संदीप धगट
8. **उन्नत तकनीकी प्रयोग से कृषि क्षेत्र में कम लागत में ज्यादा आय** 22
   पी.के. सिंह
9. **खरपतवारों के औषधीय उपयोग** 26
   इति राठी एवं संतोष कुमार
10. **कृषि वानिकी में खरपतवार : समस्या तथा समाधान** 28
    दिशांत डोंगरे, के.के. जैन एवं अर्पन चौकसे

खण्ड ''ब''

11. **नैनो टेक्नोलोजी की वर्तमान कृषि में आवश्यकता एवं उपयोग** 31
    पी.के. सिंह
12. **कीटों के प्रबंधन की यांत्रिक विधियाँ एक उत्तम साधन** 33
    राजेश आर्वे, अभिषेक शुक्ला, अमित कुमार शर्मा, योगेश तिवारी एवं सोपान सालुंके

क्र.	विवरण	पृष्ठ संख्या
13.	**मक्का की फसल में फॉल आर्मी वर्म का प्रकोप एवं प्रबंधन** प्रमोद कुमार गुप्ता एवं योगिता घरडे	35
14.	**स्वास्थ्य सुरक्षा एवं पोषण के लिए गृहवाटिका** योगिता घरडे एवं प्रमोद कुमार गुप्ता	39
15.	**जैविक खेती का आर्थिक महत्व** संतोष कुमार, अखिलेश कुमार पटेल, एस.के. पारे, इति राठी एवं एकता खत्री	43
16.	**हाइड्रोपोनिक्सः खाद्य सुरक्षा की दिशा में एक कदम** विकास वर्मा, मालापति, सुभाष एवं संजय	46
17.	**मृदा सूक्ष्मजीवों का पोषक तत्व प्रबंधन में महत्व** धर्मेन्द्र सिंह यशोना, मनोज कुमार तरवरिया एवं सतीश भागवतराव आहेर	50
18.	**पान उत्पादन तकनीक** प्रमोद कुमार गुप्ता एवं योगिता घरडे	54
19.	**स्वच्छ दुग्ध उत्पादन तकनीक का महत्व** सुरेश चन्द कांटवा एवं संदीप चौहान	59
20.	**ट्रांसजेनिक फसल-जैवसुरक्षा और भारत में विनियम** निशी मिश्रा, प्रकाश एन. तिवारी, विनोद कुमार साहू, सुषमा नेमा, कीर्ति तंतवाय एवं एल.पी.एस. राजपूत	61
21.	**अरहर फसल उत्पादन की वैज्ञानिक तकनीक** दीप सिंह सासोड़े, एकता जोशी, वर्षा गुप्ता, नीलम सिंह एवं नम्रता चौहान,	64
22.	**केंचुआ खाद- जैविक सोनाः कृषि के लिए वरदान** राहुल कुमार, आर.के.गुप्ता, एवं सोनिया सिंह एवं अजय	67
23.	**मूँगफली उत्पादन की वैज्ञानिक तकनीक** दीप सिंह सासोड़े, एकता जोशी, वर्षा गुप्ता, नीलम सिंह एवं नम्रता चौहान,	71
24.	**मसूर की उन्नत खेती** सुरेश कुमार तिवारी एवं मुकेश कुमार मीणा	73
25.	**चना उत्पादन की वैज्ञानिक तकनीक** दीप सिंह सासोड़े, एकता जोशी, वर्षा गुप्ता, नीलम सिंह एवं नम्रता चौहान	75
26.	**भारत में बीटी कॉटन** प्रकाश एन.तिवारी, निशी मिश्रा, विनोद कुमार साहू, कीर्ति तंतवाय, सुषमा नेमा एवं एल.पी.एस. राजपूत	77
27.	**विलायती बबूल : आजीविका का एक साधन** अंकिता वर्मा, वर्षा गुप्ता, दीप सिंह सासोडे, एकता जोशी एवं बी.एस. कसाना	79

क्र.	विवरण	पृष्ठ संख्या
28.	**भारतीय गर्म एवं शुष्क क्षेत्र के पादप आनुवंशिक संसाधनों में उपलब्ध विविधता** करतार सिंह, नीलम शेखावत, दमाराम, मनोज चौधरी, लक्ष्मण सिंह राजपूत, धर्मेन्द्र चौधरी हनुमान राम एवं सुभाष चन्द्र	81
29.	**टमाटर की फसल में कीट एवं रोग प्रबन्धन** विश्वास वैभव, मनोज चौधरी, अभिषेक यादव, करतार सिंह, दमा राम, लक्ष्मण सिंह राजपूत, धर्मेन्द्र चौधरी, हनुमान राम एवं सुभाष चन्द्र	84
30.	**मक्का उत्पादन की वैज्ञानिक तकनीक** दीप सिंह सासोड़े, एकता जोशी, वर्षा गुप्ता, नीलम सिंह एवं नम्रता चौहान	88
31.	**पलवार का कृषि में उपयोग एवं लाभ** एकता खत्री, वी.के. चौधरी, एस. के. पारे, संतोष कुमार एवं इति राठी	92
32.	**रामतिल-आदिवासी बाहुल्य क्षेत्रों की प्रमुख तिलहनी फसल** निशा सप्रे, रजनी बिसेन एवं आनंद पाण्डे	96
	खण्ड ''स''	
33.	**वर्षा जल संचयन आज की आवश्यकता** जी. आर. डोंगरे एवं सुशील कुमार	100
34.	**कृषि में ड्रोन का महत्व** संदीप धगट एवं मुकेश कुमार मीणा	103
35.	**इनोवेशन (नवाचार) आज की आवश्यकता** जया सिंह एवं मुकेश कुमार मीणा	105
36.	**डिजिटल एग्रीकल्चर : तकनीक से आसान हो रही किसानों की जिंदगी** अभय त्रिपाठी	109
37.	**कोरोना वायरस से बचाव हेतु निदेशालय में विकसित स्मार्ट हैण्ड सैनेटाईजर डिस्पेंसर मशीन** चेतन सी.आर., जी.आर. डोंगरे, ए.के. चतुर्वेदी, संदीप पटेल, दिबाकर घोष एवं सुभाषचन्द्र	111
38.	**प्लास्टिक वेस्ट** अखिलेश पटेल, श्रृद्धा पटेल, संतोश कुशवाहा एवं संदीप धगट	113
39.	**कल हो ना हो** गणपत लाल चपलोत, उदयपुर	115
40.	**कार्मिक सूची**	116

❀❀❀

।। सरस्वती-वंदना ।।

वीणावादिनी
वर दे, वीणावादिनी वर दे !
प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत मंत्र नव
भारत में भर दे!

काट अंध-उर के बंधन-स्तर
बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर;
कलुष-वेद तम हर, प्रकाश भर,
जगमग जग कर दे !

नव गति, नव लय, ताल-छंद्र नव
नवल कंठ, नव जलद-मंद्र रव,
नव नभ के विहग वृंद को,
नव पर, नव स्वर दे।
वर दे, वीणावादिनी वर दे !

ॐ सरस्वती मया दृष्ट्वा, वीणा पुस्तक धारणीम् !
हंस वाहिनी समायुक्ता मां विघा दान करोतु में ॐ।।

Om Saraswati Maya Drishtwa, Veena Pustak Dharnim,
Hans Vahini Samayuktaa Maa Vidya Daan Karotu Me ...

खण्ड-"अ"

सीधी-बुवाई वाले धान (डी.एस.आर.) में खरपतवार प्रबंधन

पी.के. सिंह एवं एस.के. पारे

भा.कृ.अनु.प.-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

धान हमारे देश की सबसे महत्वपूर्ण खाद्यान्न फसल है और देश की खाद्यान्न सुरक्षा में इसका महत्व सर्वोपरि है। भारत में लगभग 44 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र पर धान की खेती की जा रही है। तथा कुल उत्पादन 116.18 मिलियन टन है। धान के क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत विश्व में प्रथम स्थान पर है, लेकिन उत्पादकता की दृष्टि से भारत का स्थान काफी पीछे है। वर्तमान में विश्व की उत्पादकता (धान) 4430 किलोग्राम/हैक्टेयर है जबकि भारत में 2665 किग्रा. /हैक्टेयर है।

धान उत्पादकता के लिए मुख्यतः रोपाई विधि अधिक प्रचलित है। रोपाई विधि में जल की काफी अधिक मात्रा की आवश्यकता पड़ती है। एक अनुमान के अनुसार रोपाई विधि से 1 किलोग्राम धान उत्पादन के लिए 3000-5000 लीटर पानी की आवश्यकता होती है, क्योंकि इस विधि में पहले पौध तैयार करने में पानी लगता है और फिर मुख्य खेत में गारा (पडलिंग) करना पड़ता है। पडलिंग में काफी पानी लगता है। भारत में उगाये जाने वाले धान का 61.6 प्रतिशत क्षेत्र सिंचित हैं और देश में उपलब्ध सिंचाई जल का लगभग 60 प्रतिशत हिस्सा अकेले धान उत्पादन में उपयोग होता है।

धान उगाने वाले राज्यों मुख्यतः पश्चिम बंगाल, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश और आंध्र प्रदेश में भूमिगत-जल स्तर में गिरावट आ रही है। जिसके परिणामस्वरूप जल को भूमि से निकालने में अधिक ऊर्जा और धन की आवश्यकता होती है। इसके अलावा, जलवायु परिवर्तनों के कारण भी भविष्य में धान उत्पादन के लिए जल की उपलब्धता में कमी की संभावना है। साथ ही परंपरागत विधि से धान उगाने पर मीथेन गैस भी अधिक मात्रा में उत्सर्जित होती है। परम्परागत विधि से नर्सरी तैयार करने और फिर इसकी रोपाई करने में श्रमिकों की अधिक संख्या में आवश्यकता होती है।

उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखकर धान उत्पादन की कुछ वैज्ञानिक विधियों को अपनाने की आवश्यकता है। जिसमें प्रति इकाई जल से धान का अधिकाधिक उत्पादन हो, कम श्रमिक लगे, पर्यावरण- प्रिय हो और साथ ही धान उत्पादन में वृद्धि हो। इस दिशा में धान की सीधी बुवाई विधि काफी फायदेमंद सिद्ध हुई है। यह धान की कम लागत वाली और कम पानी उपलब्ध होने की परिस्थिति में धान उत्पादन की एक विधि है। जिसमें बिना पडलिंग किये शुष्क भूमि में बीज की सीधी बुवाई की जाती है। यद्यपि सीधी बुवाई से धान में समय एवं धन की बचत होती है और समय पर खेत अगली फसल के लिए खाली हो जाता है। परंतु इस विधि से धान उत्पादन में कुछ अवरोधक है, जिसमें खरपतवार प्रमुख है। धान में कई प्रकार के चौड़ी व संकरी पत्तियों वाले खरपतवार उग आते हैं, जो फसल में दिए गए पानी और पोषक तत्वों में से अधिकांश भाग का अवशोषण कर लेते है। जिसके फलस्वरूप धान की गुणवत्ता और पैदावार में भारी कमी आ जाती है। परम्परागत विधि से रोपित धान में प्रथम 30 से 45 दिनों तक तथा सीधी बुवाई के 15-45 दिन सबसे महत्वपूर्ण क्रांतिक समय माना जाता है। यदि इस अवस्था पर खरपतवारों का नियंत्रण नहीं किया जाता है तो रोपाई किये गये धान में 10-40 प्रतिशत तक व सीधी बुवाई वाले धान की पैदावार में 50 प्रतिशत से भी अधिक कमी आ जाती है। तथा सीधी बुवाई में कभी-कभी पूरी फसल ही खरपतवारों के कारण नष्ट हो जाती है।

सीधी बुवाई धान में उगने वाले प्रमुख खरपतवार

सकरी पत्ती (घास कुल) के खरपतवार

1. *इकाइनोक्लोआ कोलोना* (संवा)
2. *इकाइनोक्लोआ क्रुसगैली* (संवाबट्टा)
3. *पास्पेलम डिस्टिकम*
4. *डायनेब्रा रेट्रोफ्लेक्सा* (वाइपर घास)
5. *डिजिटैरिया सैंगुनालिस* (चुनवैया घास)
6. *साइनोडॉन डेक्टाइलोन* (दूबघास)
7. *सिटेरिया ग्लूका* (बनरा घास)

सेजिज (मोथा कुल) के खरपतवार

1. *साईप्रस डाइफोरमिस*
2. *साईप्रस इरिया* (गुंदला)
3. *साईप्रस रोटंडस* (मोथा)

चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार

1. *कोमेलिना बेन्घालेंसिस* (कनकौआ)
2. *लुडविजीया पार्वीफ्लोरा*
3. *डाइजेरा आरवेंसिस* (कोन्दरा)
4. *एक्लिप्टा प्रोस्ट्रेटा* (जलभंगरा)
5. *युफोरबिया हिरटा* (दूधी)
6. *फाइलेंथस निरूरी* (हजारदाना)
7. *ट्राइएन्थेमा पारचुलाकास्ट्रम* (पत्थर चट्टा)/सांटी)
8. *फाइजैलिस मिनिमा* (पचकोटा)

9. *एजीरेटम कोनीज्वाइड्स* (महकुआ)
10. *अल्टरनेंथरा सिसेलिस*
11. *कोरकोरम एकुटैंगुलस* (जंगली जूट)

धान में पाये जाने वाले खरपतवारों में संवा एवं संवाबट्टा सबसे ज्यादा हानिकारक है। ये धान के पौधों से मिलते–जुलते है। अतः धान के खेत में इन खरपतवारों को पहचानना काफी मुश्किल होता है।

खरपतवार प्रतिस्पर्धा की क्रांतिक अवस्थायें– फसलों में खरपतवार प्रतिस्पर्धा की क्रांतिक अवस्थायें फसल की वृद्धि पर निर्भर करती है। इन अवस्थाओं पर समुचित खरपतवार प्रबंधन से सबसे ज्यादा लाभ होता है। धान में खरपतवार–प्रतिस्पर्धा की क्रांतिक अवस्थायें तालिका–1 में दी गई है।

तालिका–1 विभिन्न परिस्थितियों में धान में खरपतवार–प्रतिस्पर्धा की क्रांतिक अवस्थायें

क.	फसल	क्रांतिक अवस्थायें
1.	ऊपरी भूमि में धान की सीधी बुवाई	बुआई से 6 सप्ताह तक
2.	निचली भूमि में धान की सीधी बुवाई	बुवाई के पहले 6 सप्ताह तक
3.	निचली भूमि में धान की रोपाई	रोपाई के 30–45 दिनों तक

खरपतवार प्रबंधन की विधियाँ– अच्छी फसल स्वंय खरपतवारों का नियंत्रण करती है। सस्य क्रियाओं से खरपतवारों की रोकथाम करके अच्छी फसल ले सकते हैं, लेकिन पारम्परिक विधियों से (निराई–गुड़ाई) खरपतवार नियंत्रण करने पर लागत तथा समय अधिक लगता है। इसके साथ–साथ इन विधियों का प्रयोग करना कभी–कभी असंभव होता है। धान के लिए निम्नलिखित विधियों को अपनाया जा सकता है जो इस प्रकार है :

ग्रीष्म कालीन जुताई – खरपतवार नियंत्रण की इस विधि में गर्मी के मौसम (मई–जून) में खेत की गहरी जुताई करके छोड़ देते है। जिसमें मृदा में दबे हुए खरपतवारों के बीज एवं अन्य प्रजनक भाग मृदा सतह पर आकर तीव्र तापमान एवं गर्मी के प्रभाव से नष्ट हो जाते है। खरपतवारों की रोकथाम के साथ–साथ ही इस विधि से अन्य हानिकारक जीवों एवं रोगाणुओं का भी नियंत्रण हो जाता है।

बीज क्यारी तकनीकी (स्टेल सीड बैड)– यह खरपतवार रोकथाम की पुरानी विधि है जिसमें बुवाई से पहले खेत की सिंचाई करते हैं और 15–20 दिनों के लिए खेत को वैसा ही छोड़ देते हैं। जिससे बहुत से खरपतवार उग आते हैं। इन खरपतवारों को जुताई करके या पैराक्वाट (1 कि.ग्रा./है.) का छिड़काव करके नष्ट कर देते हैं। इसके बाद फसल बोई जाती है।

खरपतवार रहित शुद्ध बीज– खरपतवार रहित शुद्ध, साफ–सुथरे एवं मानक बीज की बुआई करने से धान की फसल में खरपतवारों को कम किया जा सकता है।

बुआई की विधि, समय एवं बीज की मात्रा– धान की बुआई मशीन द्वारा पंक्तियों में करना खरपतवार नियंत्रण के हिसाब से सही होता है। धान में बुआई 20 सेमी. X 10 सेमी. की दूरी पर एवं समय पर करने से खरपतवारों का प्रकोप कम हो जाता है।

उर्वरक प्रबंधक– नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटाश की संस्तुत मात्रा का प्रयोग करना चाहिए। फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा धान की सीधी बुवाई में अंतिम जुताई से पहले प्रयोग करें एवं नाइट्रोजन की एक तिहाई मात्रा क्रमशः बुवाई के 20 दिन पश्चात, कल्ले निकलने की अवस्था तथा बची हुई एक तिहाई मात्रा गभोट अवस्था आरंभ होने पर प्रयोग करना चाहिए।

निराई–गुड़ाई– फसल अवधि के दौरान निराई–गुड़ाई करके खरपतवारों का नियंत्रण किया जा सकता है। धान बुवाई के 20–25 दिन के अंतराल पर दो बार हाथ द्वारा निराई–गुड़ाई करके खरपतवारों का नियंत्रण करना एक अच्छा तरीका हैं, हालांकि प्रयोगिक एवं आर्थिक रूप से यह लाभप्रद नहीं है क्योंकि श्रमिकों की कमी भी हो रही है साथ की मजदूरी भी बढ़ती जा रही है ।

फसल अवशेषों का मल्व के रूप में प्रयोग– सीधी बुवाई वाले धान की बुवाई से पहले वाली फसल के अवशेष जो आर्थिक रूप से अधिक महत्वपूर्ण नहीं होते, उनका प्रयोग खरपतवारों में नियंत्रण के लिए किया जा सकता है। ये फसल अवशेष मृदा की सतह को ढक लेते हैं जिससे भूमि की ऊपरी सतह पर स्थित खरपतवारों के बीजों के अंकुरण में बाधा उत्पन्न होती है। इस प्रकार फसल के जीवन काल में फसल अवशेष खरपतवार प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

सेसबेनिया सह–कल्चर (ब्राउन मेन्योरिंग)– सीधी बुवाई वाले धान में खरपतवार नियंत्रण की यह उपयुक्त विधि है। इस विधि में धान की बुआई के साथ ही ढैंचा (सेसबेनिया) की बुआई की जाती है। जब ढैंचा के पौधे 25–30 दिन की हो जाये तब 500 ग्राम 2, 4–डी या 25 ग्रा. प्रति हे./ बिसपाईरीबैक सोडियम का छिड़काव करके ढैंचा पौधों को नष्ट कर देते हैं। जिससे धान की फसल में स्थित चौड़ी पत्ती एवं मोथा कुल के बहुत से खरपतवार भी नष्ट हो जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशा में सुधार होता है।

रासायनिक विधि द्वारा खरपतवारों का प्रबंधन– संस्तुत शाकनाशियों का प्रयोग कर कम खर्च, श्रम एवं समय में खरपतवारो का प्रबंधन किया जा सकता है। शाकनाशियों की मात्रा और प्रयोग विधि का विवरण तालिका–2 में दिया गया है।

तालिका–2 सीधी बुवाई धान में उपयोग किये जाने वाले प्रमुख शाकनाशी

शाकनाशी	सक्रिय तत्व की मात्रा (ग्रा./है.)	प्रयोग का समय	टिप्पणी
पेन्डीमेथेलिन	1000–1500	बुवाई के 0–3 दिन तक	लगभग सभी संकरी पत्ती वाले खरपतवार, कुछ चौड़ी पत्ती वाले नाश करती है। इसकी उचित क्रिया के लिए भूमि में पर्याप्त नमी होना चाहिए।
आक्सॉडारजाईल	80–100	बुवाई के 0–3 दिन तक	लगभग सभी खरपतवारों का नाश करती है । इसके छिड़काव के समय भूमि में पर्याप्त नमी होना चाहिए।
बिसपाईरीबैक सोडियम	20–25	बुवाई के 25–30 दिन तक	लगभग सभी खरपतवारों, संकरी पत्ती वाले, चौडी पत्ती वाले एवं वार्षिक सैजेज का नाश करती है। *इकाइनोक्लोवा स्पेसीज* का बेहतर नियंत्रण करती है।
पाइराजोसल्फूरोन ईथाइल	20–25	बुवाई के 0–7 दिन तक	चौड़ी पत्ती एवं मोथा कुल वाले खरपतवारों के प्रभावी नियंत्रण हेतु उपयुक्त है।
प्रेटिलाक्लोर + सेफनर	500–750	बुवाई के 3–5 दिन तक	सभी प्रकार के घास जाति व कुछ चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के प्रभावी नियंत्रण के लिए उपयुक्त है।
पेंडिमेथेलिन एवं उसके पश्चात बिसपाईरीबैक सोडियम	750 एवं 25	बुवाई के 0–3 दिन तक तथा बुवाई के 25–30 दिन तक	व्यापक स्तर पर खरपतवार नियंत्रण के लिए उपयुक्त।
पेनोक्सुलम	26.7	15–20 दिन तक	संकरी पत्ती एवं कुछ चौड़ी पत्ती के खरपतवारों का नियंत्रण।
पाइरोजासल्फूरोन एवं उसके पश्चात बिसपाईबैक सोडियम	20–25 एवं 25	बुवाई के 0–7 दिन तक एवं बुवाई के 20–25 दिन तक	लगभग सभी घास कुल, चौड़ी पत्ती वाले एवं मोथा कुल के खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण।
प्रेटिलाक्लोर+ पायराजोसल्फ्यूरॉन	615	बुवाई के 0–6 दिन तक प्रयोग करें	संकरी पत्ती एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों पर प्रभावी नियंत्रण ।
इथाक्सी सल्फ्यूरॉन	20	बुवाई के 15–20 दिन में प्रयोग करें	संकरी पत्ती के खरपतवारों के नष्ट करने में प्रभावी।
साइहेलोफॉप + पेनाक्सुलम	125	बुवाई के 25 दिन पर प्रयोग करें	संकरी पत्ती एवं चौडी पत्ती वाले खरपतवारों के प्रभावी नियंत्रण हेतु।
अजिमसल्फ्यूरॉन	35	बुवाई के 20 दिन पर प्रयोग करें	संकरी पत्ती, कुछ चौड़ी पत्ती एवं मोथा कुल वाले खरपतवारों के प्रभावी नियंत्रण हेतु।
फेनाक्जाप्राप+ पेनाक्सुलम	60+26.7	बुवाई के 20 दिन पर प्रयोग करें	संकरी पत्ती, कुछ चौड़ी पत्ती एवं मोथा कुल वाले खरपतवारों के प्रभावी नियंत्रण हेतु।
फेनाक्जाप्राप + बेंटाजोन	60+960	बुवाई के 20 दिन पर प्रयोग करें	संकरी पत्ती, कुछ चौड़ी पत्ती एवं मोथा कुल वाले खरपतवारों के प्रभावी नियंत्रण हेतु।
ट्राईफमोन + इथाक्सी सल्फ्यूरान	40+20	बुवाई के 20 दिन पर प्रयोग करें	संकरी पत्ती कुछ चौड़ी पत्ती एवं मोथा कुल वाले खरपतवारों के प्रभावी नियंत्रण हेतु।

शाकनाशियों के प्रयोग में सावधानियाँ

1. संस्तुत शाकनाशियों की उचित मात्रा का उचित समय पर प्रयोग करना चाहिए।
2. छिड़काव यंत्र को छिड़काव करने से पहले पूर्ण रूप से साफ कर लेना चाहिए।
3. छिड़काव में संस्तुत मात्रा में स्वच्छ पानी का प्रयोग करें।
4. पूरे खेत में एक समान छिड़काव करना चाहिए।
5. छिड़काव करने के लिए फ्लैट फैन नोजल का उपयोग करना चाहिए।
6. शाकनाशी का छिड़काव करने वाले व्यक्ति का शरीर छिड़काव करते समय पूरा ढका होना चाहिए।
7. छिड़काव के समय मौसम साफ होना चाहिए एवं छिड़काव हवा के विपरित दिशा में नहीं करना चाहिए।
8. छिड़काव के समय धूम्रपान व किसी खाने वाली चीज का सेवन नहीं करना चाहिए।
9. छिड़काव के बाद स्प्रे यंत्र को अच्छी तरह से साफ कर लेना चाहिए।
10. छिड़काव के बाद स्नान कर लेना चाहिए तथा शाकनाशी के खाली डिब्बों को जमीन में दबा देना चाहिए।

एकीकृत खरपतवार प्रबंधन

सीधी–बुवाई द्वारा धान में खरपतवार नियंत्रण की विभिन्न विधियाँ है जो पहले ही बताई गई हैं। अधिकतर कृषि विशेषज्ञों का विचार है कि खरपतवारों के नियंत्रण के लिए एकीकृत खरपतवार प्रबंधन अपनाया जाना चाहिए क्योंकि खरपतवार नियंत्रण की सभी विधियां अलग–अलग परिस्थिति में समान रूप से प्रभावी नहीं होती। अतः सभी उपलब्ध विधियों का परिस्थिति अनुसार प्रयोग करते हुए खरपतवारों की संख्या का लाभदायक आर्थिक स्तर पर प्रबंधन करना एकीकृत खरपतवार प्रबंधन कहलाता है।

खरपतवारनाशी छिड़काव में संचालन संबंधी सुरक्षा और उचित पद्धति का चयन

चेतन सी.आर, जी.आर. डोंगरे
सुभाष चन्द्र, दिबाकर घोष, दीपक पवार
भा.कृ.अनु.प.–खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

खरपतवार किसानों के लिए चिरस्थाई समस्या है, जो विश्वभर में कृषि उत्पादन के लिए गंभीर जैविक बाधा है। यदि खरपतवारों का उचित प्रबंधन न किया जाये तो इनके द्वारा लगभग 37 प्रतिशत कृषि उत्पादन में नुकसान हो सकता है। बेहतर छिड़काव की पद्धतियां एवं यांत्रिक निराई उपकरणों का प्रयोग करके ज्यादा पैदावार और खरपतवार नियंत्रण में लगने वाली लागत को एक तिहाई तक कम कर सकते हैं। खरपतवारनाशी एक प्रकार के रसायन होते हैं, जिन्हें फसलीय और गैर–फसलीय स्थितियों में अवांछित पौधों को मारने या नियंत्रित करने के लिए बनाया गया है, खरपतवारनाशी की खरपतवार को नियंत्रण करने में सहजता, कुशलता और प्रभावशीलता की वजह से कृषि में खरपतवार नियंत्रण की रासायनिक विधि अधिक लोकप्रिय हो गई है। कृषि में खरपतवारनाशियों का उपयोग फसल की बुवाई से पहले, खरपतवार आने से पहले और खरपतवार आने के बाद, फसल और खरपतवार की स्थिति के आधार पर होता है। खरपतवारनाशियों को विभिन्न प्रकार के छिड़काव यंत्रों से छिड़क सकते हैं जैसे कि बूम स्प्रेयर, एरियल स्प्रेयर, ब्लेंकेट वाईपर, रोप विक एप्लीकेटर, वीड सीर्कस, बैकपेक स्प्रेयर्स और ग्रेन्युल्स का बिखेरना इत्यादि लेकिन फसलों में उपयोग किये जाने वाले खरपतवारनाशी अधिकांशतः तरल रूप में छिड़के जाते हैं। फसल में खरपतवारनाशी कम दबाव वाले कृषि स्प्रेयर के द्वारा छिड़के जाते हैं। खरपतवारनाशियों के सफलतापूर्वक उपयोग के लिये उन्हें सटीक और समान रूप से छिड़का जाना चाहिये। भारत में खरपतवारनाशी की हानि उनके अनुचित और अप्रभावी तरीकों से छिड़काव करने की वजह से होती है। इससे गैर–लक्षित पौधों को नुकसान पहुंचता है तथा इसकी प्रभावशीलता में कमी आती है इसके साथ मानव और जानवरों के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इसलिये छिड़काव के दौरान छिड़काव की प्रभावी पद्धति और उचित सुरक्षित उपायों का ध्यान रखना आवश्यक है।

प्रभावी खरपतवार नियंत्रण के लिये खरपतवारनाशी के छिड़काव का सही तरीका

प्रभावी खरपतवारनाशी छिड़काव के लिये निम्नलिखित प्रक्रिया नीचे दी गई हैः–

- छिड़काव प्रक्रिया को शुरू करने से पहले खरपतवारनाशी के साथ आये लेबल को पढ़े। लेबल में प्रति हैक्टेयर या एकड़ में उपयोग किये जाने वाले रसायन, पानी की मात्रा और नोजल के उपयोग के बारे में लिखा होता है। नोजल का आकार और प्रकार, उपयोग किये जाने वाले खरपतवारनाशी पर निर्भर करता है।
- नोजल के चयन के दौरान स्प्रे स्वाथ, दो नोजल के बीच का अंतराल, नोजल की ऊंचाई, नोजल से प्रवाह की दर, ऑपरेटिंग दबाव और परिचालन गति दर के बारे में पता चल जायेगा।
- सामान्यतः बुवाई से पहले और खरपतवार आने से पहले छिड़काव के लिए फ्लड जैट नोजल और खरपतवारों के उगने के बाद छिड़काव के लिये फलैट फेन नोजल का उपयोग करना चाहिए। हालाकि व्यापक/बड़े क्षेत्र में छिड़काव के लिये बूम स्प्रेयर और स्पॉट/छोटे क्षेत्र में छिड़काव के लिये सिंगल नोजल के उपयोग की सिफारिश की गई है।
- सबसे अधिक इस्तेमाल होने वाले नोजल का कोण 80 डिग्री और 110 डिग्री होता है। मल्टीनोजल बूम स्प्रेयर में नोजल बूम को 50 सेमी. की दूरी पर रखें । यूनिफार्म/एक समान छिड़काव के लिये बूम की उंचाई स्प्रे लक्ष्य से लगभग 50 सेमी. (80 डिग्री के लिए और 70 सेमी. (110 डिग्री के लिए) बनाये रखना चाहिए।
- स्प्रे स्वाथ लगभग 30 प्रतिशत ओवरलेप होना चाहिए।

विभिन्न प्रकार के स्प्रेयर बाजार में उपलब्ध हैं, लेकिन किसी भी स्प्रेयर का चयन करने से पूर्व निम्नलिखित बिन्दुओं का ध्यान रखना चाहिए:–

- खरपतवारनाशी के छिड़काव की आवृत्ति।
- घुला देने वाले द्रव्य की उपलब्धता (पानी, तेल, कैरोसीन आदि)।
- मजदूर की उपलब्धता (मानव या पशु शक्ति)।
- छिड़काव करने का क्षेत्र/भूमि/खेत।
- क्षेत्र/भूमि/खेत की विशेषता (बड़े क्षेत्र के लिए मशीन उपकरण, छोटे क्षेत्रों के लिए हाथ से संचालित उपकरण)।
- उपकरण का टिकाऊपन।
- उपकरण की लागत।
- उपकरण के मरम्मत केन्द्र और संचालन लागत की उपलब्धता एवं बड़े और छोटे क्षेत्रफल के अनुसार मशीन या हस्त चलित स्प्रेयर की आवश्यकता।

भारत में कुछ व्यवसायिक रूप में उपलब्ध स्प्रेयर

खेत में स्प्रे शुरू करने से पहले निम्नलिखित बिन्दुओं का ध्यान रखना चाहिये:–

- स्प्रे पैटर्न ऐसा होना चाहिए कि छिड़काव समान रूप से हो तथा अपव्यय न हो। स्प्रे के लिये साफ पानी का उपयोग एक अच्छी आदत है और अच्छे पानी में ही रसायन को मिलायें।
- चालक को सुरक्षात्मक उत्पाद पहनना चाहिये जैसे कि पतलून, गम बूट, हाथ के दस्ताने, श्वसन मुखौटा, चश्मा और हेलमेट/टोपी। इन सबसे चालक का शरीर पूरी तरह से ढका होना चाहिये और छिड़काव के दौरान रसायन चालक के शरीर पर नही गिरना चाहिये।
- खरपतवारनाशी के स्पॉट एप्लीकेशन के लिये हमेशा स्प्रे हूड का इस्तेमाल करें।
- किसी क्षेत्र के लिये ज्ञात मात्रा में रसायन का उपयोग करें (खरपतवारनाशी लेबल में उल्लेखित अनुसार) और पानी की ज्ञात मात्रा में मिश्रित करें (बफर घोल)। प्रति छिड़काव के लिये आवश्यक स्प्रे टैंक की संख्या के अनुसार तैयार बफर घोल को समान रूप से विभाजित करें। इसके पश्चात् एक टैंक में विभाजित बफर घोल को अच्छी तरह से स्वच्छ पानी से मिलायें।

उदाहरण– एक हैक्टेयर में आवश्यक स्प्रे की मात्रा 400 लीटर है, नेपसेक स्प्रेयर की क्षमता 16 लीटर है। एक हैक्टेयर में आवश्यक टैंक संख्या 25 है। अब 25 लीटर पानी में एक हैक्टेयर के लिये हर्बीसाइड की सिफारिश की गई मात्रा को निकालकर बफर घोल से भरें टैंक में मिश्रित करें।

इस बफर घोल को 25 बराबर भागों में विभाजित करें अर्थात् एक लीटर प्रति टैंक और इसे साफ पानी से भरें अर्थात् एक लीटर प्रति टैंक में मिश्रित करें।

अन्य महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर भी ध्यान रखना चाहिये:–

- चालक के लिये स्प्रे ऑपरेशन आरामदायक होना चाहिये।
- एक समान छिड़काव के लिये स्प्रे के दौरान पर्याप्त स्प्रेयिंग दबाव बनाये रखना चाहिये।
- नोजल की स्थिति हमेशा अनुशंसित ऊंचाई और नियत स्थिति पर होना चाहिये। यह स्प्रे के दौरान बदलना नहीं चाहिये अन्यथा एक समान स्प्रे नहीं हो पायेगा और रसायनों की अल्पमात्रा और अधिक मात्रा का छिड़काव हो सकता है।
- बिना सुरक्षात्मक उत्पादों के पहने स्प्रे न करें और जब तेज हवा और बारिश हो उस परिस्थिति में भी स्प्रे नहीं करना चाहिये। हमेशा सावधानी रखें कि लक्षित क्षेत्र पर ही रसायनों का छिड़काव हो।
- छिड़काव के दौरान या छिड़काव के उपरांत बिना हाथ धोये न तो कुछ खायें–पियें और न ही धुम्रपान करें।
- छिड़काव के बाद कम से कम 4–5 घंटे तक खेत में सिंचाई न करें। अन्यथा रसायन सिंचाई के पानी के साथ घुल जायेगा और खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण नहीं हो पायेगा।
- खरपतारनाशी की खाली बोतलों को इधर–उधर फेंकने के बजाय इसे खेत की बन्ड पर मिट्टी मे दफना देना चाहिये।
- छिड़काव के उपरांत हाथों को साबुन से अच्छी तरह धोना चाहिये।
- स्प्रेयर और चालक के सुरक्षात्मक उत्पादों को अच्छी तरह से धोंये और इन्हें सुरक्षित स्थान पर रखें।

कृषकों की आय दोगुनी करने की दिशा में उन्नत खरपतवार प्रबंधन तकनीकियों का संभावित योगदान

के.के. बर्मन, पी.के. सिंह, दिबाकर रॉय एवं हिमांशु महावर

भा.कृ.अनु.प.–खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

वर्ष 2050 तक भारत की जनसंख्या 170 करोड़ तक पहुंचने की उम्मीद है, जिससे यह दुनिया में सबसे अधिक अबादी वाला देश बन जाएगा। इस विशाल जनसंख्या को भोजन उपलब्ध कराने के लिए देश के खाद्य उत्पादन में 70 प्रतिशत की वृद्धि होनी चाहिए। जबकि तेजी से शहरीकरण, सड़क निर्माण, औद्योगीकरण आदि के कारण कृषि कार्य के लिए उपलब्ध भूमि लगातार कम हो रही है। अर्थात्, हमें भूमि के प्रति इकाई क्षेत्र से अधिक खाद्यान्न का उत्पादन करना होगा। दूसरी ओर, अन्य देशो की तुलना में कृषि से कम आय के कारण किसान, विशेष रूप से युवा पीढ़ी खेती में रूचि खो रहे हैं। इस जटिल स्थिति का सामना करने के लिए कई कदम उठाए जाने की आवश्यकता है। कम निवेश पर अपेक्षाकृत अधिक उत्पादन एक ऐसा ही कदम है। आधुनिक खरपतवार प्रबंधन तकनीकियाँ इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान कर सकती है।

कृषि उत्पादन में प्रमुख जैविक बाधाओं में से खरपतवार को सबसे अधिक हानिकारक माना जाता है। कोई भी फसल कीड़े या बीमारियों से संक्रमित हो या नही, लेकिन वहां हर फसल के मौसम में खरपतवार जरूर दिखाई देगा। फसल पौधों की तुलना में अधिकांश खरपतवारों की पोषक तत्व जमा करने की क्षमता आम तौर पर अधिक होती है। इस के कारण, खराब खरपतवार प्रबंधन से पानी और उर्वरकों जैसे महंगे इनपुट, जो वास्तव में फसलीय पौधों के लिए हैं, खरपतवारों के विकास के लिए ज्यादा उपयोग में आयेंगे। खरपतवारों की उपस्थिति फसलों के लिए पानी के तनाव को भी बढ़ाती है। गन्ने में, खरपतवार की उपस्थिति में सिंचाई करने से गन्ने की पैदावार 1.3 टन/हैक्टेयर प्राप्त हुई, जबकि खरपतवार मुक्त भूखंडों में 10–28 टन/हैक्टेयर हुई। उचित खरपतवार नियंत्रण द्वारा फसल उत्पादन के लिए मिट्टी में पानी की उपलब्धता को बढ़ाया जा सकता हैं। फसल पर पानी के तनाव का प्रभाव क्या होगा, यह तनाव की अवधि और गंभीरता के अलावा, तनाव की अवधि के दौरान फसल विकास के चरण और मौजूद खरपतवार के प्रकार पर निर्भर करता है। खरपतवारों की उपस्थिति से फसल के पौधों में पानी के तनाव के लक्षण बहुत तेजी से उत्पन्न होते हैं। इससे पता चलता है कि खरतपवार, फसल के लिए पानी की उपलब्धता को कम करते हैं। इसका मतलब है, समय पर खरपतवारों के कुशल प्रबंधन द्वारा इनपुट उपयोग–दक्षता बढ़ा के अपेक्षाकृत कम पोषक तत्वों और सिंचाई के तहत भी फसल की उच्च उत्पादकता बनाए रखना संभव है। खरपतवार न सिर्फ संसाधनों, अर्थात् पोषक तत्व, पानी, प्रकाश और स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं, बल्कि कीड़े और रोगाणु को भी आश्रय देते हैं, जिससे न केवल फसल की पैदावार, बल्कि इसकी गुणवत्ता भी कम होती है। उदाहरण के लिए, सोयाबीन की रासायनिक संरचना खरपतवारों की प्रतियोगिता से काफी प्रभावित होती है। खरपतवार के बढ़ते प्रतिस्पर्धा से सोयाबीन में प्रोटीन की मात्रा में वृद्धि होती है, लेकिन तेल की मात्रा घट जाती है। फसल एवं खरपतवारों के दाने लगभग एक ही समय परिपक्व होते हैं, ऐसे खरपतवारों के बीज अक्सर कटाई गहाई के दौरान फसल उत्पाद को प्रदूषित करते हैं। उदाहरण के लिए, *लेप्टोक्लोआ* एवं सवाँ घास धान के साथ ही परिपक्व होते हैं। खरपतवार के बीज की उपस्थिति उत्पाद की गुणवत्ता तथा बाजार भाव को प्रभावित कर सकती हैं। ऐसे खरपतवारों के बीजों से छुटकारा पाने के लिए प्रसंस्करण की आवश्यकता होती है, परिणामस्वरूप उत्पादन लागत में वृद्धि होती हैं।

फसल–नींदा प्रतिस्पर्धा का क्रांतिक समय

असमय निराई और फसल की कमजोर संरचना को खेत में खरपतवार के प्रभुत्व के लिए दो प्रमुख कारक माने जाते हैं। ज्यादातार फसलों की शुरूआती वृद्धि दर काफी धीमी होती है एवं उनमें खरपतवारों से प्रतिस्पर्धा करने की क्षमता भी कम होती है। ऐसे क्रांतिक समय में फसलों को खरपतवार के प्रकोप से बचाना अति आवश्यक होता है, क्योंकि इस समय खरपतवार द्वारा प्रतिस्पर्धा से फसल की वृद्धि में अपूरणीय क्षति होती है, जो अंत में फसल की उत्पादन को प्रभावित करता है। यह बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए कि समय पर निराई के कोई विकल्प नहीं हैं।

खरपतवार प्रबंधन विधियाँ

फसल में खरपतवार के प्रकोप एवं उत्पादन पर उसके दुष्प्रभाव को कम करने के लिए किसान पारम्परिक तौर पर हाथ से निराई करते आ रहे हैं। परन्तु परंपरागत खरपतवार प्रबंधन विधि (हाथ से निंदाई) वर्तमान परिवेश में काफी खर्चीली एवं समय लेने वाली होने के कारण परेशानी का कारण बनती जा रही है। समय के साथ खरपतवार प्रबंधन की कई सारी विधियों का उद्भव हुआ है जो पारम्परिक विधि से सस्ती और ज्यादा प्रभावशाली है। खरपतवार प्रबंधन विधियों को मूलभूत चार प्रकारों में बाँटा जा सकता है :

सुरक्षात्मक विधि

खरपतवार से सुरक्षा उसके नियंत्रण से बेहतर है और यह अधिक लागत प्रभावी उपाय भी है। हालांकि, विस्तार कर्मी तथा किसानों द्वारा शायद ही कभी इन तरीकों की सराहना की जाती है। हमें हमेशा उस पुरानी कहावत को ध्यान में रखना चाहिए कि खेत में खरपतवारों के एक साल के बीजारोपण से सात साल की निराई–गुड़ाई करने की आवश्यकता पड़ती है। यही कारण है कि सबसे पहले हमें सावधानी बरतनी चाहिए ताकि खरपतवार के बीज हमारे खेत में प्रवेश ना करें। सुरक्षात्मक विधि सरल है, इस पद्धति को अपनाने से फसलों में खरपतवारों का प्रकोप कम होता है। खरपतवारों के स्थायी एवं दीर्घकालिक प्रबंधन के लिए सुरक्षात्मक विधि आवश्यक है। इसके लिए निम्नलिखित उपाय किए जा सकते हैं।

- खरपतवार मुक्त बीज/पौध का प्रयोग करें।
- पूर्ण रूप से सड़ी हुई गोबर व कम्पोस्ट खाद का प्रयोग करें अन्यथा इससे ज्यादा मात्रा में खरपतवारों के बीजों के खेत में आने की संभावना रहती है।
- एक खेत से दूसरे खेत में प्रयोग करने से पहले कृषि यंत्रों की मिट्टी साफ कर लें।
- खरपतवार ग्रसित क्षेत्र की मिट्टी दूसरे खेत में डालने से बचें।
- नर्सरी को खरपतवार मुक्त रखें।
- खेत के आस–पास की मेड़ो, पानी के स्त्रोत व नालियों को खरपतवार मुक्त रखें।
- जानवरों को खरपतवार प्रभावित क्षेत्र से नियंत्रित क्षेत्र में जाने से रोकें।

कल्चरल विधि

कुछ कृषि पद्धतियों में हेरफेर करने से फसल की वृद्धि पर अच्छा प्रभाव तथा खरपतवारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जैसे कि फसल चक्र में परिवर्तन, ग्रीष्मकालीन जुताई, मिश्रित/दोहरी खेती, फसल की प्रतिस्पर्धी किस्मों का उपयोग, हरी खाद प्रबंधन आदि कुछ ऐसे ही समय–परीक्षणित विधि है। अक्सर इस तरह की विधि के लिए अतिरिक्त निवेश की आवश्यकता नहीं होती है। छिड़काव करने के बजाय रासायनिक खाद/उर्वरकों को जड़ के पास देकर पोषक तत्वों के नुकसान को कम करने की अच्छी गुंजाइश है। इसी तरह, ड्रिप सिंचाई से पानी के उपयोग–क्षमता को बढ़ाया जा सकता है। इस तरह के पोषक और जल प्रबंधन के सरल तरीके खरपतवारों के संक्रमण को काफी कम करते हैं। मुख्य फसल पंक्तियों के बीच तेजी से बढ़ती दूसरी फसल की उपस्थिति भी खरपतवार के विकास को काफी हद तक दबा देती है।

यांत्रिक विधि

पंक्ति में बोई गई फसलों के लिए यांत्रिक निराई विधि बहुत प्रभावी और उपयुक्त है। हाथ से निराई की तुलना में यांत्रिक विधि लगभग 80–90 प्रतिशत समय बचाती है। समय की बचत के अलावा, यह किसान के परिश्रम को भी कम करती है। इसलिए चौड़ी अंतर–पंक्तियों वाली फसलों (कपास, मक्का, ज्वार, बाजरा, गन्ना आदि) में जहाँ मशीनों को स्वतंत्र रूप से संचालित किया जा सकता है, श्रम, लागत और खर्च को कम करने के लिए यांत्रिक निराई की जा सकती है। वर्तमान में, हाथ से चलने वाले साधारण पहिए वाली–हो से लेकर उन्न्त कम्प्यूटर निर्देशित–हो तक कई यांत्रिक निराई उपकरण उपलब्ध है। फसलों की निंदाई के लिए प्रयुक्त होने वाले कुछ यांत्रिक उपकरणों का विवरण इस प्रकार है–

व्हील हैंड–हो

यह व्यापक रूप में अपनाया गया यंत्र है जो फसल पंक्तियों के मध्य खरपतवार नियंत्रण हेतु उपयोग किया जाता है। यह एक या दो पहियों वाले एक लंबे हैंडल का यंत्र है। पहियों का व्यास इसकी बनावट के अनुसार होता है। इस यंत्र के फ्रेम में मिट्टी में कार्य करने वाले विभिन्न प्रकार के पुर्जे जैसे–सीधे ब्लेड, प्रतिवर्ती ब्लेड, स्वीप, वी–ब्लेड आदि लगाने हेतु प्रावधान है। व्हील को बार बार धकेलने एवं खींचने की प्रक्रिया द्वारा चलित किया जाता है जिससे मिट्टी में कार्य कने वाले पुर्जे जमीन में धँसकर खरपतवार को काटते या जड़ से उखाड़ते हैं।

कोनो वीडर

इस यंत्र में दो रोटर होते है एवं इसकी सतह पर लंबाई में चौरस दाँतेदार स्ट्रिप्स जुड़ी होती है। कोनो वीडर दबाव प्रक्रिया से चालित किया जाता है। रोटर से खरपतवार को जड़ से उखाड़ने में मदद मिलती है। कोनो वीडर का प्रयोग पंक्तियुक्त धान की फसल में कुशलतापूर्वक खरपतवार हटाने के लिए किया जाता है। यह असानी से चलाया जा सकता है तथा यह पोखर मिट्टी में नही धँसता । इस यंत्र की कार्य क्षमता लगभग 0.18 हैक्टेयर प्रतिदिन है।

ड्राईलैंड पेग वीडर

यह एक हस्तचलित यंत्र है जो फसल पंक्तियों की बीच के खरपतवार को नष्ट करता है। इसमें एक रोलर होता है जिसमें लोहे की रॉड द्वारा फिट की गई दो डिस्क लगी होती है। रॉड पर छोटे समचतुर्भुज आकार के हुक जुड़े होते है। रोलर असेम्बली के पीछे हैंडल के रॉड पर भट आकार के ब्लेड लगे होते है। इस यंत्र को बार–बार धकेलने एवं खींचने की प्रक्रिया द्वारा चालित किया जाता है। समचतुर्भुजी आकारी हुक मिट्टी में गड़ाकर घुमाव प्रक्रिया द्वारा मिट्टी को बारीक करते है और भट आकारीय ब्लेड जमीन में घुसकर खरपतवार की जड़ों को काट देते हैं। इसका प्रयोग सब्जी, फलों के बागो में तथा अंगूर उद्यानो में खरपतवार हटाने के लिए किया जाता है। यह भूमि की सख्त मिट्टी की परत को तोड़कर उसे

उपजाऊ बनाने में भी सहायक हैं। इसकी कार्य क्षमता लगभग 0.05 हेक्टेयर प्रतिदिन होती है।

स्वचलित रोटरी पावर वीडर

यह वीडर एक डीजल इंजन चलित यंत्र है। रोटरी वीडिंग अटेचमेंट द्वारा खरपतवार नष्ट करने की प्रक्रिया की जाती है। रोटरी वीडर की डिस्क पर एक–दूसरे की विपरीत दिशा में घुमावदार ब्लेड लगे होते हैं। इन ब्लेड के घूमने से मिट्टी एवं घास आदि कटकर मिश्रित हो जाते हैं। जिन फसलों में पंक्तियों की बीच की दूरी 400 मि.मी. से ज्यादा है, जैसे–गन्ना, मक्का, कपास, टमाटर, बैंगन और दलहन उनमें खरपतवार नियंत्रण हेतु इस यंत्र का प्रयोग किया जाता है। इसकी कार्य क्षमता 0.10–0.12 हैक्टेयर प्रति घंटा है।

एक सामान्य धारणा है कि यांत्रिक निराई, फसल पंक्तियों में उगने वाले खरपतवारों को अनियंत्रित छोड़ देती है। हालांकि, हाल के वर्षों में कई उन्नत किस्म में एप्लाइंस का विकास हुआ है जैसे कि फिंगर वीडर, ब्रश वीडर, टॉर्सन वीडर, मिनी राइडर्स और कम्प्यूटर–विजन–गाइडेड हो जो फसल पंक्तियों में पड़े खरपतवारों (इंट्रा–रो वीड्स) का उत्कृष्ट नियंत्रण प्रदान करते हैं।

हालांकि, यांत्रिक तरीकों की कुछ अड़चनें हैं, जैसे इसकी प्रभावशीलता मौसम और मिट्टी की स्थिति पर अत्याधिक निर्भर है, साधारण सस्ते वीडर फसल पंक्तियों में पड़े खरपतवारों पर कम प्रभावकारी है, इस विधि के लिए कुशलता की जरूरत है, और उन्नत उपकरणों के लिए उच्च लागत की भी आवश्यकता होती है।

रासायनिक तरीके

रासायनिक विधि से खरपतवार नियंत्रण कम समय और कम लागत में संभव है और फसल की उपज पर अनुकूल प्रभाव भी पड़ता है। उदाहरण के लिए, गेहूँ में लगभग रू. 3000 का शाकनाशी रसायनों की मिश्रण का छिड़काव या अनुक्रमिक अनुप्रयोग लंबे समय तक हैक्टेयर क्षेत्र में खरपतवार नियंत्रण के लिए पर्याप्त होगा। जबकि, औसत रू. 3000 प्रति दिन मजदूरी के हिसाब से गेहूं में एक बार मैन्यूअल निराई की लागत लगभग रू. 6000–7500 प्रति हैक्टेयर होगी। जब फसल पंक्तियों में ना बोई गई हो तो खरपतवार नियंत्रण बहुत ही कठिन कार्य हो जाता है, समय अधिक लगता है एवं कुल निराई खर्च भी अधिक आता है। कभी–कभी मजदूर ना मिलने की दशा में खरपतवार नियंत्रण अधूरा रह जाता है या समय पर नहीं हो पाता है। इतना ही नही वर्षा ऋतु में कई बार मौसम की विषमताएँ और अधिक वर्षा के कारण भी ऐसा हो जाता है। ऐसी परिस्थितियों में अच्छी उपज पाने के लिए खरपतवार नाशक रसायनों का उपयोग करना आवश्यक हो जाता है। खरपतवार अनुसंधान निदेशालय के अधीनस्त ए.आई.सी.आर.पी खरपतवार प्रबंधन के माध्यम से देश भर में किए गए शोध कार्यों में पाया गया कि शाकनाशी के उपयोग से किसानों को पारम्परिक विधि की तुलना में काफी अधिक उपज मिली।

विभिन्न फसल और फसल–प्रणालियों में विविध किस्म के खरपतवारों को नियंत्रित करने हेतु तरह–तरह के शाकनाशी रसायनों की बढ़ती उपलब्धता से कृषि समुदाय में रासायनिक खरपतवार नियंत्रण प्रणाली व्यापक स्वीकार्यता प्राप्त कर रही है। हालांकि, रासायनिक विधि का पूरा लाभ प्राप्त करने के लिए अभी भी देश को लंबा रास्ता तय करना है। उचित ज्ञान की कमी के कारण, भारतीय किसान सामान्य रूप से रसायनिक छिड़काव विधि पर कम ध्यान देते है। अधिकांश किसान शाकनाशी रसायन का भी कीटनाशकों/फफूंदनाशकों की तरह छिड़काव करते हैं। लेकिन अन्य कीटनाशकों के विपरीत, इसकी उच्च प्रभावकारिता प्राप्त करने के लिए रसायन छिड़काव विधि अधिक महत्वपूर्ण है। शाकनाशी रसायनों का प्रयोग करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए–

- शाकनाशी रसायनों का प्रयोग उचित मात्रा में ही करना चाहिए। यदि संस्तुति दर से अधिक शाकनाशी का प्रयोग किया जाता है तो फसल को भी क्षति पहुँच सकती है।
- सही प्रकार के स्प्रेयर, नोजल और छिड़काव के लिए उपयुक्त दबाव के बारे में किसान को अधिक सावधान रहना चाहिए, और स्प्रेयर को ठीक से कैलिब्रेट किया जाना चाहिए। खरपतवार प्रबंधन के लिए सस्तुंत शाकनाशी की यदि सही मात्रा तथा उसका उचित विधि से प्रयोग नही किया गया तो पैदावार कम होने की हमेशा संभावना बनी रहती है। किसानों के खेत में अक्सर कुछ ऐसी जगह दिखाई पड़ती है जहां खरपतवार अनियंत्रित रह गया और कहीं कहीं फसल पौधों में फाइटोटॉक्सिसिटी का लक्षण दिखाई देता है। ऐसे होने के पीछे का कारण गलत छिड़काव पद्धति है।
- शाकनाशी रसायनों को उचित समय पर छिड़कना चाहिए। अगर छिड़काव समय से पहले या बाद में किया जाता है तो इसकी सही प्रभावकारिता नहीं मिलेगी और फसल हानि की संभावना भी रहती है।
- शाकनाशी रसायनों का घोल तैयार करने के लिए पानी की सही मात्रा का उपयोग करना चाहिए।
- खेत में लगातार एक ही रसायन का छिड़काव ना करें बल्कि बदल–बदल कर करें अन्यथा खरपतवारों में बार–बार उपयोग में लाने वाले शाकनाशी के प्रति प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न हो सकती है।
- छिड़काव के समय मृदा में पर्याप्त नमी होना चाहिए। इससे शाकनाशी की प्रभावकारिता बढ़ती है।
- छिड़काव के समय मौसम साफ होना चाहिए। कई पोस्ट इर्मर्जेंस शाकनाशी रसायनों की कार्य–प्रदर्शन तापमान,

आर्द्रता और सौर विकिरण के उच्च स्तर से बढ़ी है। विशेष कर, अगर अगले 2–4 घंटो के भीतर बारिश की संभावना है तो शाकनाशी रसायनों का छिड़काव ना करें।

- स्प्रे बहाव से बचने के लिए तेज हवा की स्थिति में रसायनों का छिड़काव ना करें।
- शाकनाशी रसायनों को सर्वदा ठंडे, शुष्क एवं अंधेरे स्थान पर रखें तथा ध्यान रखें कि बच्चे एवं पशु इसके सम्पर्क में ना आवें।
- छिड़काव करते समय ध्यान रखिए कि रसायन शरीर पर ना पड़े। इसके लिए विशेष पोशाक दस्ताने एवं चश्में का प्रयोग करें। दस्ताने उपलब्ध ना होने पर हाथ में पॉलीथीन लपेट लें तथा चेहरे पर गमछा बांध लें।
- छिड़काव के पश्चात् खाली डिब्बों को नष्ट कर मिट्टी में दबा दें। इन डिब्बों का प्रयोग खाद्य पदार्थों को रखने के लिए कतई ना करें।
- छिड़काव समाप्त होने के बाद रसायन छिड़कने वाले व्यक्तियों को साबुन से अच्छी तरह हाथ व मुंह अवश्य धोना चाहिए।

एकीकृत खरपतवार प्रबंधन

एकीकृत प्रबंधन कार्यक्रम सुरक्षात्मक, कल्चरल, यांत्रिक और रासायनिक खरपतवार प्रबंधन विधियों के संयोजन पर आधारित है। खरपतवार प्रबंधन में यह पाया गया है कि कोई भी सिर्फ एक विधि आर्थिक अथवा नियंत्रण की दृष्टि से ज्यादा कारगर नहीं है। खरपतवार की सैकड़ो प्रजातियाँ, उनके विविध जीवन चक्रों तथा जीवित रहने के कई रणनीतियों के कारण एक एकल खरपतवार नियंत्रण उपाय संभव नहीं है। इसके अलावा, किसी एक तरीके से नियंत्रित करने पर खरपतवारों को उस प्रथा के अनुकूल होने का मौका प्रदान करता है। अतः आवश्यकता है कि विभिन्न विधियों के समन्वय से एकीकृत खरपतवार नियंत्रण पद्धति को अपनाया जाए जिससे खर्च एवं समय दोनों की बचत हो तथा नींदा का नियंत्रण सही समय पर उचित तरीके से हो सकें। संक्षेप में, एकीकृत प्रबंधन कार्यक्रम का विकास कुछ सामान्य सिद्धांतों पर आधारित है जो किसी भी खेत में उपयोग किए जा सकते हैं– (1) खेत में खरपतवारों का प्रवेश और प्रसार को सीमित करना अर्थात् शुरू होने से पहले खरपतवार समस्याओं को रोकना, (2) फसल को खरपतवारों से मुकाबला करने में मदद करना, और (3) उन विधियों का उपयोग करना जो खरपतवारों को असंतुलित कर दे यानि खरपतवारों को नियंत्रण विधि के अनुकूल नहीं होने दे।

उचित खरपतवार प्रबंधन से आर्थिक लाभ

यदि खरपतवारों को अनियंत्रित छोड़ दिया जाए तो पैदावार में औसतन 34 प्रतिशत तक कमी आती है। इसलिए, खरपतवार प्रबंधन हमेशा फसल उत्पादन का प्रमुख और महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है। हालांकि, किसानों द्वारा किए जा रहे असामयिक और अनुचित खरपतवार प्रबंधन अभी भी ज्यादा उत्पादन प्राप्त करने की दिशा में एक बड़ी अड़चन है। परंपरागत रूप से किसान हाथ से निराई करते थे, लेकिन यह अत्याधिक श्रम और समय लेने वाला होता है। उपर से, तुलनात्मक रूप से कुछ अधिक एवं स्थायी उपार्जन हेतु ग्रामीण मजदूरों का शहरों की ओर पलायन तथा मनरेगा आदि जैसे कई सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के तहत रोजगार के अवसरों के कारण यह अक्सर देखा जाता है कि बुवाई/रोपण, निराई, कटाई जैसे कृषि कार्यों के महत्वपूर्ण समय के दौरान मजदूरों के लिए मांग आपूर्ति की तुलना में बहुत अधिक होती है। यह ना केवल निराई की लागत को बढ़ाता है, बल्कि निराई प्रक्रिया सम्पूर्ण होने में भी देरी होती है। कई बार निराई का कार्य खरपतवार–फसल प्रतियोगिता के चरम समय आने के पहले पूरा नहीं हो पाता है। नतीजतन, बहुत खर्च के बावजूद, पारंपरिक पद्धति से खरपतवार के प्रभाव को कम करने का प्रयास असफल हो जाता है। खरपतवार अनुसंधान निदेशालय के अंतर्गत एक वैज्ञानिक अध्ययन के तहत देश भर में किए गए 1581 ऑन–फार्म परीक्षणों के आंकड़ो के आधार पर यह देखा गया कि किसानों द्वारा किये जा रहे अनुचित खरपतवार प्रबंधन से खरीफ और रबी सीजन की फसलों में औसतन 26.2 प्रतिशत और 21.8 प्रतिशत उपज का नुकसान होता है। सबसे ज्यादा नुकसान मूंगफली (35.8 प्रतिशत) में, तत्पश्चात् सोयाबीन (31.4 प्रतिशत), मूंग (30.8 प्रतिशत), बाजरा (26.7 प्रतिशत), मक्का (25.3 प्रतिशत), ज्वार (25.1 प्रतिशत), तिल (23.7 प्रतिशत), सरसों (21.4 प्रतिशत), सीधी बुवाई धान (21.4 प्रतिशत), गेहूं (18.6 प्रतिशत) और रोपित धान (13.8 प्रतिशत) में देखा गया है। उत्पादन के तहत कुल क्षेत्र और एमएसपी के आधार पर यह नुकसान प्रति आर्थिक वर्ष लगभग 11 बिलियन अमरीकी डॉलर के बराबर है जिसमें सबसे अधिक नुकसान धान (अमरीकी डालर 4420 मिलियन) के बाद गेहूं (अमरीकी डालर 3376 मिलियन) और सोयाबीन (अमरीकी डालर1559 मिलियन) में होता है।

निष्कर्ष

खरपतवार कृषि उत्पादन में प्रमुख हानिकारक अवरोध है। वे पोषक तत्व, पानी, प्रकाश और स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा के साथ–साथ कीड़े और रोगाणु को भी आश्रय देता है। इससे ना केवल फसल की कम पैदावार, बल्कि इसकी गुणवत्ता भी कम होती है। पारम्परिक खरपतवार प्रबंधन ना केवल खर्चीले होते हैं, बल्कि विविध कारणों से अक्सर सही अर्थात क्रांतिक समय के अंदर खरपतवार के सटीक नियंत्रण संभव नहीं हो पाते हैं और किसान को उचित उत्पादन नहीं मिल पाता है। जबकि सुरक्षात्मक, कल्चरल, यांत्रिक एवं शाकनाशी रसायनो का विवेकपूर्ण उपयोग करके न केवल कम खर्च में और उचित समय पर खरपतवार नियंत्रण कर सकते हैं, बल्कि अधिक एवं उच्च गुणवत्ता के उत्पादन भी प्राप्त कर सकते है। सारांश में यह कहा जा सकता है की कृषि आय की वृद्धि करने के लिए किसानों को पारम्परिक (मैन्युअल) विधि को छोड़ कर आधुनिक एवं उन्नत एकीकृत खरपतवार प्रबंधन को अपनाना होगा।

गैर रासायनिक खेती में खरपतवार प्रबंधन

वर्षा गुप्ता, दीप सिंह सासोडे, एकता जोशी एवं अंकिता वर्मा
राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

गैर रासायनिक खेती में खरपतवार प्रबंधन तकनीकों की विस्तृत विवेचना से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि खरपतवार क्या है ? खरपतवार वह पौधा है जो किसी भी परिस्थिति में कृषि को लाभ की अपेक्षा हानि अधिक पहुँचाता हैं। खरपतवार फसलों से पोषक तत्वों, प्रकाश, जल एवं स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करके पोषक तत्वों के अधिकांश भाग को शोषित कर लेते हैं जिससे फसल की वृद्धि धीमी गति से होती है और पैदावार घट जाती है। खरपतवार फसलों के लिए हानिकारक कीटों के लिए पराश्रयी पौधों के रूप में कार्य करते हैं। इसके अतिरिक्त फसल की कटाई के समय खरपतवारों के बीज भी साथ में आ जाते हैं और उत्पाद की गुणवत्ता को भी प्रभावित करते हैं। अतः उपयुक्त समय पर खरपतवार प्रबंधन अतिआवश्यक है। खरपतवारों की रोकथाम से न केवल फसलों की पैदावार बढ़ाई जा सकती है, बल्कि उसमें निहित पोषक तत्वों की मात्रा एवं फसलों की गुणवत्ता में भी वृद्धि की जा सकती है।

खरपतवारों से हानियाँ

खरपतवार निम्न प्रकार से फसलों, पशुओं एवं मनुष्यों के लिये हानिकारक हो सकते है।

1. खरपतवार भूमि में डाली गई खाद की क्षमता को कम कर देते हैं जिससे उपज में कमी आ जाती है।
2. यदि खरपतवार नियंत्रण के लिये कोई उपाय नहीं किये गये है तो खरपतवार फसल के पौधों के साथ प्रतिस्पर्धा करके अलग–अलग फसलों की उपज में 5% से 50% तक कमी कर सकते हैं।
3. खरपतवार के बीजों का अंकुरण जल्दी होता है अतः इसके पौधे फसलों के पौधों की तुलना में अधिक तेजी से वृद्धि करते हैं जिसके कारण खरपतवार पौधों के साथ पोषक तत्वों, नमी, प्रकाश एवं स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं।
4. कुछ खरपतवार कीटों को पनाहगाह देते हैं और कुछ रोगजनकों के लिए मेजबान पौधों के रूप में काम करते हैं जिससे कीटों को संख्या बढ़ाने में सहायता मिलती है। जैसे सफेद मक्खी, बीविल, एफिड आदि के लिए जंगली जई, जंगली सरसों, बारहमासी घास, गाजरघास तथा गेहूँ के गेरुई रोग के लिए गेहूँ का मामा।
5. खरपतवार के नियंत्रण के उपायों के रूप में मजदूरों, उपकरण और प्रबंधन की आवश्यकता होती है जिससे फसल उत्पादन की लागत बढ़ जाती है।
6. कुछ खरपतवार हानिकारक रसायन उत्सर्जित करते हैं जो मनुष्यों, फसलों एवं मिट्टी में उपस्थित सूक्ष्म जीवों पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं। जैसे – गाजरघास के संपर्क में आने से मनुष्यों की त्वचा में एलर्जी हो जाती है।
7. कुछ खरपतवार ऐसे होते हैं जिनका उपयोग दुधारू पशुओं द्वारा करने पर दूध में एक अवांछनीय गंध आ जाती है। जैसे – गाजरघास एवं धतूरा।
8. खरपतवार सिंचाई के लिए प्रयोग किये गये पानी के प्रवाह में बाधा पहुंचाते हैं जिससे सिंचाई की आवश्यकता बढ़ जाती है।
9. फसल कटाई के समय परिपक्व खरपतवार के बीज भी साथ में आ जाते हैं जिससे ये उत्पाद की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं।

खेत में खरपतवारों के प्रभाव को कम करने के लिए जो भी कृषि क्रियाऐं जैसे – सस्य क्रियाएँ, यान्त्रिक क्रियाएँ, बचावकारी क्रियाएँ एवं जैविक क्रियाएँ आदि इस प्रकार से प्रयोग में लायी जाये कि भूमि की उत्पादक एवं उर्वरा शक्ति प्रभावित न हो और मानव सहित सभी जीव जन्तुओं, पशु–पक्षियों व वांछित पेड़–पौधों को किसी भी प्रकार का नुकसान न हो, और पर्यावरण भी सुरक्षित रहे, फसलों को सफलतापूर्वक उगाना ही गैर रासायनिक खरपतवार प्रबंधन कहलाता है।

गैर रासायनिक खेती में खरपतवारों के द्वारा होने वाले दुष्प्रभावों को रोकने के लिए जो विधियाँ अपनाई जाती हैं वे निम्नलिखित हैं :

1. सस्य क्रियाएँ
2. यांत्रिक क्रियाएँ
3. बचावकारी क्रियाएँ
4. जैविक क्रियाएँ

1. सस्य क्रियाएँ

इस विधि में फसलों के पौधों को स्वस्थ एवं रोगमुक्त रखा जाता हैं जिससे फसलों के पौधे खरपतवारों से अच्छी तरह से संघर्ष कर खरपतवारों की वृद्धि एवं विकास को रोक सकें। ये विधियाँ निम्नलिखित हैं :

(क) किस्म का चुनाव

गैर रासायनिक खेती में खरपतवार नियंत्रण हेतु ऐसी किस्मों का चुनाव करना चाहिए जो शीघ्र उगने वाली होती हो एवं अधिक क्षेत्र घेरती हो, ऐसी किस्म खरपतवारों की वृद्धि को

कम कर देती हैं। शीघ्र वृद्धि करने वाली फसलों में खरपतवारों से प्रतिस्पर्धा करने की शक्ति अधिक होती है।

(ख) बुवाई का समय

बुवाई के समय में परिवर्तन करके खरपतवारों के प्रकोप को कम किया जा सकता है। जैसे – गेहूँ की देर से बुवाई करने पर गेहूँ का मामा, बथुआ एवं जंगली जई इत्यादि खरपतवारों का प्रकोप कम हो जाता है। इसी प्रकार किसी खरपतवार विशेष को नष्ट करने के लिए फसल की बुवाई के 15 दिन पहले खेत में पलेवा कर देना चाहिये जिससे खरपतवार उग आते हैं, और इन उगे हुए खरपतवारों को जुताई करके नष्ट कर देना चाहिये तत्पश्चात् फसल की बुवाई करना लाभकारी होता है। इस विधि को स्टेल सीड बैड विधि कहते हैं।

(ग) बीज दर एवं पंक्ति से पंक्ति की दूरी

बीज दर फसल एवं फसल किस्म पर निर्भर करती है। बीज दर अधिक रखने से पौधों की संख्या बढ़ जाती है, जो कि भूमि के ऊपर आच्छादन का कार्य करती है। पंक्ति से पंक्ति की दूरी जितनी कम होगी उतनी ही इससे बाद में उगने वाले खरपतवारों के पौधों को पर्याप्त मात्रा में प्रकाश उपलब्ध न होने की वजह से वृद्धि करने में बाधा उत्पन्न होगी।

(घ) भूमिगत टपक सिंचाई

भूमिगत टपक सिंचाई का प्रयोग खासतौर से फल वृक्षों एवं सब्जी फसलों में किया जाता है। इस विधि में पानी सीधा जड़ों में पहुँचता है। शेष क्षेत्र में जल की कमी होने के कारण खरपतवारों को पनपने का मौका ही नहीं मिल पाता है, और वे अपनी वृद्धि एवं विकास नहीं कर पाते हैं। इसके अलावा फसल पौधों के आस–पास उगे खरपतवारों को आसानी से उखाड़ कर नष्ट किया जा सकता है।

(ड़) प्रतिस्पर्धी फसले उगाना

प्रतिस्पर्धी फसलों में निम्नलिखित विशेषताएँ होनी चाहिएः

- फसलों का अंकुरण एवं वृद्धि तेज गति से होनी चाहिये।
- फसल की जड़ें मृदा की ऊपरी एवं निचली दोनों सतहों से पोषक तत्वों को अवशोषित करने की क्षमता रखती हों।
- यदि फसल हरे चारे वाली है तो प्रत्येक कटाई के पश्चात् तीव्र वृद्धि करने वाली होनी चाहिये। जैसे– बरसीम।
- यदि वह हरी पत्तेदार सब्जी है तो वह प्रत्येक कटाई के बाद जल्दी से वृद्धि करने वाली होनी चाहिये। जैसे– पालक।
- फसल रोगरोधी व अल्पकालीन होनी चाहिये।
- कम उपजाऊ भूमि में भी सफलतापूर्वक उगने वाली एवं मौसम की प्रतिकूल अवस्थाओं से प्रतिस्पर्धा करने वाली होनी चाहिये।

(च) सजीव आच्छादन फसलें

सजीव आच्छादन का प्राथमिक उद्देश्य मृदा की संरचना में सुधार, उर्वरा शक्ति में वृद्धि, कीट एवं रोग समस्याओं को कम करना होता है। यह खरपतवार नियंत्रण के लिये अतिरिक्त लाभ के रूप में सहायक होती हैं। ऐसी फसलें जिनका विकास तेज गति से होता है, और भूमि की सतह को सघनता से आच्छादित कर लेती हैं उन्हें **सजीव आच्छादन** फसलें कहते हैं। ऐसी फसलें खरपतवारों की वृद्धि को दबा देती हैं जिससे खरपतवारों को पनपने का मौका नहीं मिल पाता है। जैसे– लोबिया, बरसीम, रिजका, सोयाबीन, उर्द, पालक इत्यादि आच्छादित फसलें है।

(छ) फसल चक्र

किसी खेत में एक ही प्रकार की फसल को उगाते रहने से उस खेत में खरपतवारों का दबाव बढ़ जाता है और उसके उगने व वृद्धि करने की दशायें अनुकूल हो जाती हैं जैसे– गेहूँ के खेत में गेहूँ का मामा तथा जंगली जई आदि। अतः फसल चक्र में परिवर्तन करके फसल उगाने से इन खरपतवारों की अंकुरण क्षमता एवं वृद्धि भिन्न फसल के लिए उपयोग की जाने वाली कर्षण क्रियाओं (भूपरिष्करण, बुवाई का समय, फसल प्रतियोगिता आदि) के कारण नष्ट हो जाती है और इन खरपतवारों का नियंत्रण हो जाता है। जैसे– बहुवर्षीय खरपतवारों के नियंत्रण के लिए धान–बरसीम फसल चक्र अच्छा रहता है।

(ज) अन्तरवर्ती खेती

अन्तरवर्ती खेती में मुख्य फसल की दो कतारों के बीच ऐसी फसलें लगाते है जो खरपतवारों की वृद्धि को दबा देती है। अतः अन्तरवर्ती फसलों के लिए ऐसी फसलों का चुनाव करना चाहिए जिनसे खरपतवारों की रोकथाम हो सके, और मुख्य फसल से पोषक तत्वों के लिए प्रतियोगिता न करें। खाद्यान्न फसलों के साथ दलहनी फसलों की अन्तरवर्ती खेती लाभदायक होती है। जैसे– मक्का या ज्वार के साथ उर्द, मूँगफली या सोयाबीन की अन्तरवर्ती खेती खरपतवारों के अंकुरण एवं उनके विकास को रोक देती है तथा मुख्य फसल को प्रभावित नहीं करती हैं।

2. यांत्रिक क्रियाएँ

यह विधि एकवर्षीय तथा बहुवर्षीय खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए बहुत प्रभावी है। इस विधि में खरपतवारों का नियंत्रण हस्तचालित यन्त्रों से व हाथ से या जल इत्यादि से किया जाता है। ये विधियाँ निम्न प्रकार हैं :

(क) भूपरिष्करण

भूपरिष्करण या जुताई खरपतवारों के बीजों के अंकुरण में सहायक होती है। जिससे खरपतवारों को आसानी से नियंत्रित किया जा सकता है।

- पहले जमीन से जुताई करके जमीन में दबे हुए खरपतवार के बीजों को निकाला जाता है और इसके बाद उन्हें अंकुरित होने दिया जाता है तत्पश्चात् जुताई करके इन खरपतवारों को नष्ट कर देते हैं।
- गर्मियों में जुताई करने से बहुवर्षीय खरपतवार जड़ सहित भूमि की सतह पर आ जाते हैं, और सूर्य की तेज रोशनी में सूखकर मर जाते हैं।
- जुताई करने से खरपतवार उखड़ जाते हैं या मिट्टी में गहराई पर दब कर नष्ट हो जाते हैं। जिससे खेत में जब फसल की बुवाई की जाती तो अंकुरण के समय खरपतवार नहीं उगते हैं।

(ख) खरपतवारों को हाथ से उखाड़ना

यह विधि छोटे क्षेत्रों के लिए उपयुक्त होती है। जब खरपतवारों की वृद्धि इतनी हो जाए कि उन्हे हाथ से पकड़ा जा सके तब इन्हें उखाड़ कर इनका उपयोग आच्छादन के रूप में कर लेना चाहिए। यह अवस्था बुवाई के लगभग 25–30 दिनों बाद आती है। यदि खरपतवार एलर्जी वाला है तो उसे उखाड़ कर फसल क्षेत्र से दूर मिट्टी में गहराई में दबा देना चाहिये। ज्यादातर इन खरपतवारों से सिंचित क्षेत्रों में परेशानी होती है। इससे बचने के लिए पहली सिंचाई के बाद खरपतवारों को उखाड़ कर फेंक देना चाहिये।

(ग) हस्तचालित यंत्रो से निराई–गुड़ाई करना

हस्तचालित यन्त्रों जैसे – खुरपी, फावड़ा, व कोनोवीडर का प्रयोग करके खरपतवारों का नियंत्रण किया जा सकता है। इस विधि का प्रयोग करने के लिए फसलों की बुवाई पंक्तियों में की जानी चाहिए। फसल के प्रारम्भिक 25 से 40 दिनों तक खरपतवार नियंत्रण बहुत आवश्यक होता है। खरपतवार से होने वाले नुकसान से बचने के लिए पहली सिंचाई के बाद प्रथम निराई व आवश्यकता पड़ने पर 10–15 दिन बाद दूसरी निराई कर देनी चाहिए क्योंकि यह खरपतवारों का वृद्धि काल होता है। इस अवस्था में निराई करने से फसल की वृद्धि अच्छी हो जाती है और बाद में उगने वाले खरपतवारों को यह पनपने नहीं देती है। गहरी जड़ वाले खरपतवारों के ऊपरी भाग को बार–बार काटने से इनका प्रस्फुटन बंद हो जाता है और ये पूर्ण रूप से समाप्त हो जाते हैं। एकवर्षीय खरपतवारों को उनमें बीज बनने या फूल आने से पूर्व निकालने से नियंत्रण पाया जा सकता है।

(घ) खरपतवारों को जलमग्न करना

जिन स्थानों पर सिंचाई का प्रबंध होता है वहाँ पर खरपतवारों को 3–4 सप्ताह तक पानी में डुबोकर रखा जाता है। परिणाम स्वरूप खरपतवारों के लिए प्रकाश एवं ऑक्सीजन की कमी हो जाती है और ये शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। बहुवर्षीय छोटे खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए यह विधि अधिक सार्थक है किन्तु इस विधि का उपयोग तभी करना चाहिये जब खेत खाली हों।

(ङ) जैविक आच्छादन

जैविक आच्छादन के रूप में कम्पोस्ट खाद, भूसा, पुआल, सूखी घास, सूखी पत्तियां, फसल अवशेष इत्यादि का उपयोग किया जाता है। जो खरपतवार के बीजों को अंकुरित होने में तथा वृद्धि करने में बाधा डालता है, क्योंकि यह प्रकाश एवं वायु संचार को रोक देता है। इनके द्वारा प्रभावी खरपतवार नियंत्रण होता है, जैविक आच्छादन के लिए पुआल का उपयोग बहुत ही प्रभावी होता है। जैविक आच्छादन (पलवार) मृदा में खरपतवार नियंत्रण के अतिरिक्त निम्नलिखित प्रभाव डालता है।

- मृदा में पोषक तत्वों को बढ़ाता है और मृदा संरचना में सुधार करता है।
- मृदा में कार्बनिक पदार्थ को बढ़ाता है।
- मृदा की सतह पर सूक्ष्म जीवों की संख्या में वृद्धि करता है।
- खरपतवार की वृद्धि कम होती है क्योंकि यह मृदा में पहुँचने वाली प्रकाश की मात्रा व ऑक्सीजन को रोक देता है।
- तेज बारिश एवं हवा में मृदा क्षरण को कम करता है।
- मृदा में वाष्पीकरण द्वारा होने वाले जल की हानि को कम करता है, जिससे मृदा में नमी बनी रहती है।

3. बचावकारी उपाय

एक कहावत के अनुसार उपचार से बचाव भला "प्रीवेन्शन इज़ बेटर देन क्योर" अतः वे सभी उपाय जिनके द्वारा खरपतवारों के बीजों को उन स्थानों पर पहुँचने या फैलने से रोका जाये जहाँ वे पहले से मौजूद नहीं हैं बचावकारी उपाय कहलाते है। इसके लिए उन सभी परिस्थितियों को जानना जरूरी है, जिनसे खरपतवार एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचते हैं। अतः खरपतवार के बीजों के फैलाव को रोकने के लिए दो उपाय मुख्य रूप से करने चाहिये।

(अ) स्वच्छता

इसके अंतर्गत खेत में नए खरपतवारों के प्रवेश को रोकने के साथ–साथ खेतों में पहले से उपलब्ध खरपतवारों द्वारा अधिक मात्रा में बीजों को पैदा करने से रोका जाता है। स्वच्छता के उपाय निम्नलिखित हैं :

- खेत की मेड़ और सिंचाई नालियों को खरपतवार मुक्त रखना चाहिये।
- रोपाई वाली फसलों में खरपतवारों को पौधशाला में ही अलग कर देना चाहिये।
- बुवाई के लिए खरपतवार रहित साफ–सुथरे बीजों का उपयोग करना चाहिये।
- फसल कटाई के समय फसल बीजों के साथ खरपतवारों के बीजों को जाने से रोकना चाहिये।

- खेत के चारों ओर ऐसी हेज लगानी चाहिये जो हवा के द्वारा फैलने वाले खरपतवार के बीजों को खेत में न आने दें।
- जिस खेत में खरपतवार का प्रकोप हो उसकी मिट्टी दूसरे खेत में नहीं ले जानी चाहिये।
- कृषि कार्य में प्रयुक्त होने वाले उपकरणों को उपयोग में लाने से पूर्व एवं पश्चात् साफ कर लेना चाहिये।
- पशुओं को खरपतवार मुक्त चारा खिलाना चाहिये।
- अच्छी तरह पकी हुई गोबर की खाद एवं कम्पोस्ट का ही प्रयोग करना चाहिये। ताकि गोबर की खाद एवं कम्पोस्ट में उपस्थित खरपतवार के बीजों की अंकुरण क्षमता समाप्त हो जाये।

(ब) सिंचाई एवं जल निकास नालियों के क्षेत्रफल में कमी

सिंचाई एवं जल निकास नालियों में सबसे ज्यादा खरपतवार पनपते हैं तथा यहीं से इनका फैलाव खेतों तक होता है। अतः सिंचाई एवं जल निकास नालियों का क्षेत्रफल कम करके खरपतवारों की संख्या में कमी लाई जा सकती है।

4. जैविक क्रियाएँ

जैविक खरपतवार प्रबंधन का अर्थ है जीवों का उपयोग कर खरपतवारों का प्रबंधन करना। जैविक विधि एक प्रभावी पर्यावरणीय रूप से सुरक्षित, तकनीकी रूप से उपयुक्त, आर्थिक रूप से व्यवहार्य और सामाजिक रूप से स्वीकार्य तकनीकी है। इसके अंतर्गत कीटों, निमेटोड, फन्जाई, वैक्टीरिया, पशुओं और प्रतिस्पर्धी पौधों को खरपतवार युक्त क्षेत्रों में पहुँचा दिया जाता है। प्रत्येक जैविक नियंत्रण एजेन्ट एक विशिष्ट खरपतवार प्रजातियों को लक्षित करता है। पशुओं द्वारा खरपतवारों की चराई करवाना, ''जैविक खरपतवार नियंत्रण'' के अंतर्गत ही आता है, लेकिन विशिष्ट खरपतवारों को लक्षित करने के लिये चराई हमेशा प्रभावी नहीं होती है।

गैर रासायनिक जैविक प्रबंधन हेतु सुझाव

किसी भी समस्या के निदान के लिये केवल एक ही तरीके पर निर्भर नहीं रहना चाहिये बल्कि सस्ते एवं आसानी से उपलब्ध सभी साधनों का समन्वय किया जाना चाहिए। जैसे सस्य क्रियायें, यांत्रिक क्रियायें, जैविक क्रियायें तथा बीजोपचार व अवरोधी किस्मों का प्रयोग इत्यादि।

- गर्मी में गहरी जुताई करके फसलों एवं खरपतवारों के अवशेष को नष्ट कर देना चाहिए जिससे कीट/रोग के अवशेष उन्हीं के साथ नष्ट हो जायें और उनकी वृद्धि पर नियंत्रण पाया जा सके।
- सही बीज व उचित बीज दर का प्रयोग करना चाहिए तथा बुवाई समय से व पौधों से पौधों की दूरी वांछित होनी चाहिये।
- बुवाई से पहले बीजों के अंकुरण की जांच अवश्य कर लेनी चाहिये।
- फसल में जैव विविधता (मिश्रित खेती) होनी चाहिये तथा समुचित फसल चक्र अपनाना चाहिये।
- संतुलित, पर्याप्त व पकी हुई गोबर की खाद, वर्मीकम्पोस्ट एवं अच्छे पोषक तत्व वाली जैविक उर्वरकों का पर्याप्त मात्रा में उपयोग किया जाना चाहिये।
- जंगली घास व खरपतवार कीटों का प्रजनन स्थान होता है अतः इन्हे खेत और मेढ़ों से निराई–गुडाई करके समय से नष्ट कर देना चाहिये ताकि कीटों को अंडा देने से रोका जा सके।
- रोगग्रस्त पौधों या उनके भागों को नष्ट कर देना चाहिए।
- किसानों के प्रशिक्षण का उचित प्रबंध होना चाहिये, ताकि किसान समस्याओं को पहचानने और उससे सम्बंधित उस अवस्था को जानने की क्षमता रख सकें, जिस पर कीटों एवं रोगों का नियंत्रण आवश्यक होता है।
- फसलों का सर्वेक्षण नियमित रूप से करना चाहिये, ताकि किसानों को विभिन्न कीटों एवं रोगों आदि की स्थिति के बारे में ज्ञान होता रहे।
- यलो ट्रैप/प्रकाश ट्रैप/फेरोमैन ट्रैप का उपयोग करके नाशीजीव के प्रौढ़ को नष्ट कर सकते हैं।
- नाशीजीव के प्राकृतिक शत्रुओं की संख्या में वृद्धि करने के लिये उन्हें बाहर से लाकर खेतों में छोड़ देना चाहिये।

पूरे राष्ट्र की आशा है, हिंदी अपनी भाषा है

ग्रीष्मकालीन सब्जियों में खरपतवार नियंत्रण

एम.एस. रघुवंशी[1], आर.ए. मराठे[1], अमृता दरिपा[1], लालचंद मालव[1]
जी.आर. डोंगरे[2], एच.एल. खरबीकर[1] एवं एस. चटराज[1]
1. भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो, नागपूर (महाराष्ट्र)
2. भा.कृ.अनु.प.–खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

भारत एक विशाल देश है जहाँ 6.5 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में लगभग 60 प्रकार से भी अधिक सब्जियों की खेती की जाती है जिससे लगभग 880 लाख टन सब्जियां उपलब्ध हो पा रही हैं। जो विश्व में सब्जी उत्पादक क्षेत्रों में भारतवर्ष का दूसरा स्थान दिलाकर गौरान्वित करती है। इन सब्जियों में दलहनी सब्जियाँ (राजमा, मटर, लोबिया इत्यादि) जड या कंद वाली सब्जियाँ (मूली, गाजर, शलजम, चुकन्दर, लहसुन, घुईया आदि) कंदवर्गीय सब्जियाँ जैसे लौकी, परवल, खीरा, करेला व पत्ती वाली सब्जियाँ जैसे पालक, मैथी, चौराई आदि। इन सब्जियों के अलावा अन्य सब्जियां जैसे टमाटर, बैंगन, मिर्च, शिमला मिर्च, प्याज, पत्ता गोभी, फूल गोभी, गांठ गोभी, ब्रोकली आदि की सर्वप्रथम पौध तैयार की जाती है फिर इनका मुख्य खेत में रोपण किया जाता है। अर्थव्यवस्था में बागवानी एक महत्वपूर्ण घटक हैं। इनके महत्व एवं उपयोग के बढ़ते स्तर को देखे तो इनके क्षेत्रफल एवं उत्पादन में उल्लेखनीय प्रगति हुई।

सब्जियों के उत्पादन लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि इनके क्षेत्रफल, उत्पादकता एवं उत्पाद की गुणवत्ता में वृद्धि हो। इनकी उत्पादकता एवं गुणवत्ता में सबसे बड़े बाधक कई प्रकार के शत्रु कीट होते है। जिनमें खरपतवार एक महत्वपूर्ण कारक है। जो कि सब्जी की फसलों की उत्पादकता में अर्थपूर्ण कमी लाते है वहीं अन्य कीड़ो/रोगों को आश्रय भी देते है। और यह भी देखा गया है कि सब्जियों को उगाने हेतु उन्हें कम लागत पद्धति के जरिये एवं कम महत्व देने वाला व्यवसाय मानते हैं। जिसके कारण सिंचाई एवं पूरी तरह से सड़ी न होने वाले गोबर की खाद को उपयोग कर खरपतवारों में वृद्धि करते है जिससे चौड़ी पत्ती एवं घास कुल के खरपतवारों का जोर बढ़ता जाता है जो कि सब्जी उत्पादन के सबसे बड़े शत्रु के रूप में उभरते हैं एवं अन्य भयंकर कीड़ों एवं रोगों को आश्रय देते हैं फसलों में प्रमुख कीट समस्याओं को पूरी तरह काबू में रखना है, तो खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण बहुत ही जरूरी है जिससे उत्पादन का प्रतिशत बढ़ जाता है एवं सब्जी उत्पादन अधिक लाभ का व्यवसाय बन जाता है।

खरपतवारों से हानि

खरपतवारों को यदि समय रहते नियंत्रण या काबू नहीं किया गया तो ये उत्पादन के साथ–साथ सब्जियों की गुणवत्ता को भारी क्षति पहुँचाते हैं। खरपतवार सघनता एवं इनसे ग्रसित होने एवं लंबे समय तक सब्जी की फसलों से प्रतियोगिता कर उनकी क्षमता को पूरी तरह से नष्ट कर देते हैं। अनुसंधानों से यह ज्ञात होता है कि खरपतवार सब्जी की फसलों में 15–55 प्रतिशत तक का नुकसान पहुँचाते हैं। खरपतवारों द्वारा औसतन आलू की फसल में 6–82%, मटर में 25–35%, गाजर में 70–80%, प्याज में 60–70%, टमाटर में 42–70% एवं फूलगोभी में 50–60% तक की उपज में हानि दर्ज की गई है।

खरपतवारों पर पलने वाले कीड़े–मकोड़े एवं रोग

जैसा कि आप भलिभांति जानते है कि आप यदि सब्जियां मार्केट से खरीदते है तो आप सब्जियों को कभी कभी कीड़ो, इल्लियों एवं रोगों से ग्रसित पाते हैं। जिनके नियंत्रण हेतु किसान कीटनाशको, फफूंदनाशकों का छिड़काव करते हैं जो कि मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त खतरनाक साबित होते है। कीटों/रोगों को आश्रय देने में जैसे की अकरी नामक खरपतवार (*वीसीया स्टाइवा*) एवं (*हेलीक्वेरपा आरमागीरा*) को आश्रय देता है ऐसे ही *सोलेनम नायग्रम* भटे के कीड़ों, बथुआ, एफीड्स को आश्रय देता है *लेन्टाना* नामक खरपतवार सफेद फफूंदी (व्हाईटफ्लाई) जो कि येलो वीन मोसीक वायरस को संक्रमित करती है तो आज यदि इन खरपतवारों का प्रभावशील नियंत्रण किया जाये तो इसके साथ साथ कई कीडों एवं रोगों से सब्जियों को बचाया जा सकता है।

फसल खरपतवारों में प्रतियोगिता एवं उनका क्रांतिक समय

ऐसी बहुत सारी सब्जियां होती है जिनकी प्रारंभिक वृद्धि काफी धीमी होती है और कई सब्जियों में खरपतवारों से प्रतियोगिता करने की क्षमता नहीं होती है। ऐसी स्थिति में हमें फसलों के किस समय खरतपवार नियंत्रण करना चाहिए उसे हम क्रांतिक समय कहते है जिस समय इनका अधिकतम नियंत्रण हो जाये फिर आपकी फसल संभल जाती है। विभिन्न फसलों में क्रांतिक समय भी अलग–अलग होता है जिसे निम्न तालिका में दिखाया गया है।

सब्जी का नाम	दिन	वृद्धि का समय
प्याज / लहसुन	30–75	बल्ब निकलते समय
फूल गोभी / पत्ता गोभी	30–45	फूल निकलते समय
टमाटर	30–45	20–30 से.मी. लंबाई ¼पौधे की½
गाजर	15–20	7–10 से. मी. लंबाई ¼पौधे की½
ककड़ी	25–30	जब तक फैलने लगे।
आलू / मूली	25–30	–

प्रमुख खरपतवारों में :– *कनवालवुलस आरवेनसिस* (हिरनखुरी), *चिनोपोडियम स्पी* (बथुआ), *टेरेक्सेकम स्पी* (डिपमल), *बायडेन्स पिलोसा, केप्सेलिस बुरसा, एम्ब्रोसिया स्पी* (खिमचू) *आरटेमेसिया स्पी, स्टेलेरिया* (चिंकवीड) *मेडिया, प्लान्टिगो स्पी* (जंगली ईसबगोल), *डिजीटेरिया स्पी* (चुनवैया घास), आदि।

खरपतवारों के रोकथाम की विधियाँ

1. निवारक विधि (प्रिवेन्टिव मेथड)

1. साफ एवं प्रमाणित बीजों का प्रयोग करें।
2. अच्छी सड़ी गोबर खाद / कम्पोस्ट खाद का प्रयोग करें।
3. कृषि यंत्रों की समय समय पर साफ–सफाई करें।
4. सिंचाई की नलियों की सफाई एवं देखरेख करें।
5. नर्सरी की देखरेख क्योंकि साथ में खरपतवारों के बीजों / कटे टूटे खरपतवार के भागों को अलग करना।
6. पशुओं का आवागमन / भ्रमण पर रोक रखें।

2. सस्य विधि (ऐग्रोनामीक मेथड)

1. **स्टेल सीड बेड** :– इस विधि के अंतर्गत जहां सब्जियां 2–3 सप्ताह बाद 7 से 10 दिन पर उगे छोटे–छोटे खरपतवारों का शाकनाशी द्वारा नियंत्रण करना चाहिए जिससे तैयार की गई भूमि को नुकसान न हो।
2. **फसल चक्र** :– सब्जियों के उगाने के स्थानों में उचित फसल चक्र अपना कर खरपतवारों के प्रभाव को काफी कम किया जा सकता है। लेकिन इसका प्रभाव 2–3 वर्ष में पता लगता है जिसे आम किसान भाई काफी दूर–दूर तक का वास्ता नहीं रखते है वे वर्तमान की ही सोचते हैं।
3. **मलचिंग करना (बिछावन) (सूखी पत्तियाँ या अवशेष)** :– कई प्रकार के मल्च जैसे प्लास्टिक मल्च, सूखा भूसा, फसलों के अवशेषों का सफलता पूर्वक उपयोग करने से खरपतवार नियंत्रण के साथ–साथ भूमि में व्याप्त नमी का भी उचित उपयोग फसल द्वारा किया जा सकता है। मोथा जैसे खरपतवारों जो कि प्लास्टिक मल्च भी छेद देते हैं इसको निंदाई द्वारा भी अलग किया जा सकता है।
4. **भूमि सूर्यीकरण** :– भूमि मे जहां सब्जियां या उनकी नर्सरी तैयार करना है वहां भूमि का सूर्यीकरण काफी लाभदायक सिद्ध हुआ है। ऐसा अनुभव किया गया है कि पॉलीथिन की परत बिछाने से भूमि के तापमान में महत्वपूर्ण वृद्धि होती है जिससे खरपतवार तथा मिट्टी में पाये जाने वाले हानिकारक जीवों का प्रभावी नियंत्रण होता है हमारे केन्द्र द्वारा इस पर किये अध्ययन से यह पता चला कि 4–6 सप्ताह तक मृदा सूर्यीकरण से बहुतायत खरपतवारों का पूर्ण नियंत्रण होता है। कुछ खरपतवार जैसे मोथा, दूबघास, कांस जिनका प्रजनन कंद / गांठों से होता है उन पर इस सूर्यीकरण का प्रभाव कम पड़ता है।
5. **हाथ से निराई–गुड़ाई** :– हाथ से निराई–गुड़ाई का फायदा यह है कि फसल खरपतवार रहित तो हो जाती है और उखाड़ा गया खरपतवार गाय, बैल तथा भैंसों के लिए चारा सानी में मिलाकर देते हैं परन्तु यह एक बहुत ही थकाने वाली एवं समय लेने वाली विधि है। कम से कम 20–30 लेवर एक हैक्टेयर के लिए लगते हैं।
6. **रासायनिक विधि** :– शाकनाशी रसायनों द्वारा खरपतवार नियंत्रण में प्रति हैक्टेयर कम लागत लगती है तथा समय की भी भारी बचत होती है। जिससे खरपतवारों का प्रांरभिक अवस्था में ही प्रभावी नियंत्रण हो जाता है। इससे कीड़ों एवं रोगों की संभावना कम हो जाती है।

रसायनों का फसलवार प्रयोग एवं मात्रा निम्न तालिका में दी गई है

खरपतवारनाशी	मात्रा	समय	फसलें
पेन्डीमिथालिन	0.75–1.0	रोपाई के पहले	प्याज, लहसुन, पालक, आलू, टमाटर, बैंगन, मिर्च में
फ्लूक्लोरेलिन	1.0–1.5	बुआई के पूर्व छिड़काव	टमाटर, बैंगन, आलू भिण्ड़ी, हरी सब्जी, दलहनी सब्जियां, लहसुन में
आक्सीफ्लूरोफेन	0.20–0.30	3 दिन बाद	बीज द्वारा एवं रोपण प्याज में, आलू में
ब्यूटाक्लोर	2.0	अंकुरण पूर्व	टमाटर एवं ककड़ी आदि में
मेट्रीब्यूजीन	0.2–0.35	अंकुरण पूर्व	आलू एवं प्याज में
मेटोलाक्लोर	1.0	अंकुरण पूर्व	–
ऐलाक्लोर	1.0	अंकुरण पूर्व	–

7. **यांत्रिक विधि** :– निराई गुड़ाई हेतु दस्ती (फिंगर हो) एक प्रमुख यंत्र है जो एक साधारण एवं कम कीमत पर मिलता है। इसके अलावा (व्हील हो वीडर) एक प्रमुख यंत्र है। उन्हें नर्सरी एवं पौधरोपण के बाद प्रभावी रूप से उपयोग करते हैं।

एकीकृत खरपतवार नियंत्रण :– खरपतवार नियंत्रण के विभिन्न तरीकों को साथ–साथ प्रयोग करने से न केवल एक विधि पर निर्भरता कम हो जाती है बल्कि खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण भी हो जाता है। इससे एक फायदा यह है कि शाकनाशी की मात्रा भी कम उपयोग होती है और पर्यावरण पर होने वाले दुष्परिणामों से बचा जा सकता है और शाकनाशी अवशेषों का खतरा भी नहीं रहता है। यह एक वैकल्पिक विधियों का संगत प्रयोग है जो हर तरह से खरा उतरता है। जिसमें अंकुरण के समय शाकनाशी छिड़कने के बाद एक निराई–गुड़ाई जरूरी कर देना चाहिए।

सावधानियाँ :– जहां आप सब्जियों की फसल उगाते हैं वहां पर विशिष्ट सावधानियाँ रखने की जरूरत है। जैसे–

1. छिड़काव करते समय प्राथमिक क्रिया से डिब्बे खोलना, घोल तैयार करना, उसका छिड़काव, छिड़काव–यंत्र से व डस्टर से जहां जरूरत है वहां भुरकाव सावधानी पूर्वक करना चाहिए।
2. छिड़काव करते समय उपयुक्त वस्त्र पहनें।
3. छिड़काव सुबह शाम जब हवा न चलें तब करें एवं हवा के विपरीत दिशा में छिड़काव न करें।
4. छिड़काव पश्चात् यंत्रों की साफ सफाई अवश्य करें।
5. फूल आते समय व फल बनते समय ऐसे रसायनों का छिड़काव न करें। जो मधुमक्खियों के लिए हानिकारक हो।
6. एक ही रसायन का बार–बार फसलों पर छिड़काव न करें बल्कि बदल–बदल कर करें, वरना लगातार उपयोग करने से खरपतवारों में प्रतिरोधक क्षमता आ सकती है।
7. शाकनाशी का छिड़काव कुशलतापूर्वक करना चाहिए ताकि रसायन खरपतवारों के पौधों पर ही पड़े।

जो स्थान है नारी के माथे पर बिंदी का,

वही स्थान है भाषाओं मे हिंदी का।

भाषा की समृद्धि स्वतंत्रता का बीज है।

–लोकमान्य तिलक

फसल उत्पादन पर विभिन्न खरपतवार प्रबंधन प्रक्रियाओं का प्रभाव

वर्षा गुप्ता, एकता जोशी, दीप सिंह सासोडे, अंकिता वर्मा एवं बी. एस. कसाना
राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

खरपतवार अवांछनीय, अनुपयुक्त व हानिकारक पौधे होते हैं। यह मुख्यत सी$_4$ पौधे होते हैं जो कि फसलों की अपेक्षा शीघ्र वृद्धि करते हैं। ये असामान्य व जल्द वृद्धि करने के कारण सभी प्रकार की फसलों जैसे– दलहन, तिलहन, रेशेदार, शर्करा, औषधीय व साग सब्जी वाली फसलों के साथ पोषक तत्व, नमी, प्रकाश व स्थान इत्यादि के लिये प्रतिस्पर्धा करके फसल की वृद्धि, उपज एवं गुणों में कमी कर देते हैं। जिसके परिणाम स्वरूप फसलों की वृद्धि एवं उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

विश्व में कृषि का मुख्य उद्देश्य तेज गति से निरंतर बढ़ती हुई जनसंख्या के लिये खाद्यान्य की पूर्ति करना है। जबकि सर्वाधिक फसलों को नुकसान खरपतवारों द्वारा ही होता है। आज भी भारतीय कृषक पादप सुरक्षा के विभिन्न उपाय, उन्नत किस्म के बीज व उपयुक्त उर्वरक तथा नियमित सिंचाई को वैज्ञानिक विधि से अपनाकर कृषि से अधिकाधिक उत्पादन प्राप्त करने के अपने उद्देश्य में पूर्णतः सफल नहीं हो पा रहा है। इसका मुख्य कारण उन्नतशील साधनों को अपनाने के साथ–साथ खरपतवारों के नियंत्रण पर पूर्ण ध्यान न देना है। अतः यदि किसान को अपनी फसल से भरपूर उपज प्राप्त करनी है तो उसे फसल के शत्रु खरपतवारों पर नियंत्रण पाने के महत्व को समझ कर उनको नष्ट करना होगा।

खरपतवार नियंत्रण के लिये बहुत सी प्रक्रियाएँ अपनायी जाती हैं जैसे नींदानाशी का प्रयोग, होइगं, भूपरिष्करण प्रक्रियाऐं, हाथ से उखाड़ना, शुद्ध बीज का प्रयोग, बीज दर, मल्चिंग, अन्तःफसलीकरण, खरपतवार से प्रतिस्पर्धा करने वाली प्रजातियों की बुवाई, मिश्रित फसलीकरण, बुवाई का समय, बुवाई की विधि एवं खादों के प्रयोग की विधि।

आधुनिक कृषि में इन सभी कृषि विधियों का मिला–जुला प्रयोग समन्वित खरपतवार प्रबंधन कहलाता है।

फसल खरपतवार प्रतिस्पर्धा

इसमें कोई दो राय नहीं है कि खरपतवारों की उपस्थिति फसल की उपज को कम कर देती है। किन्तु किसान जो अपनी पूर्ण शक्ति व साधन फसल की अधिकतम उपज प्राप्त करने के लिये लगा देता है, ये अवांछनीय पौधे इस उद्देश्य को पूरा नहीं होने देते। खरपतवारों से हुई हानि किसी अन्य कारण जैसे रोग व्याधि, कीड़े–मकोड़े आदि से हुई हानि की अपेक्षा अधिक होती है। एक अनुमान के अनुसार हमारे देश में विभिन्न व्याधियों से जितना नुकसान होता है उसका लगभग एक तिहाई नुकसान केवल खरपतवारों द्वारा ही हो जाता है। आमतौर पर विभिन्न फसलों की पैदावार में खरपतवारों द्वारा 10 से 85 प्रतिशत तक नुकसान हो जाता है। लेकिन कभी–कभी यह नुकसान शत–प्रतिशत तक भी हो जाता है। खरपतवार प्रबंधन में ध्यान देने योग्य बात यह है कि खरपतवारों का प्रबंधन सही समय पर करें। क्रांतिक फसल विकास अवधि (सी सी जी पी) के समय खरपतवारों की फसल से प्रतिस्पर्धा सर्वाधिक नुकसान पहुँचाती है जो कि प्रत्येक फसल की अलग–अलग होती है।

विभिन्न फसलों में फसल खरपतवार प्रतिस्पर्धा का क्रांतिक समय एवं खरपतवारों द्वारा उपज में कमी

फसल	क्रांतिक फसल की विकास अवस्था (बुवाई के पश्चात्)	उपज में कमी (%)
खाद्यान्न फसलें		
धान	30 –45	15 –40
गेहूँ	30 –45	20 –40
मक्का	15 –45	40 –60
ज्वार	15 –45	15 –40
बाजरा	30 –45	15 –60
दलहनी फसलें		
अरहर	15 –60	20 –40
मूँग	15 –30	25 –50
उड़द	15 –30	30 –50
लोबिया	30 –60	15 –25
चना	30 –60	15 –25
मटर	30 –45	20 –30
मसूर	30 –60	20 –30
सोयाबीन	20 –45	40 –60
तिलहनी फसलें		
मूँगफली	40 –60	40 –50
सूरजमुखी	30 –45	30 –60
अरण्डी	30 –50	30 –35
कुसुम	15 –45	15 –40
तिल	15 –45	15 –40
सरसों	15 –40	15 –30
अलसी	20 –45	30 –40
व्यवसायिक फसलें		
गन्ना	30 –120	20 –30
आलू	20 –40	30 –60

कपास	15 –60	40 –50
जूट	30 –45	50 –80
साग–सब्जियों वाली फसलें		
फूल गोभी	30 –45	50 –60
पत्ता गोभी	30 –45	50 –60
भिण्डी	15 –30	40 –50
टमाटर	30 –45	40 –70
प्याज	30 –75	60 –70

खरपतवार प्रबंधन की विभिन्न प्रक्रियाऐं

खरपतवार प्रबंधन भिन्न–भिन्न फसलों में भिन्न–भिन्न प्रक्रियाओं द्वारा किया जाता है। जिसमें नींदानाशियों जैसे एट्राजिन, डाइयूरॉन, पेराक्वॉट, सीमाजिन, पेन्डीमेथालीन, 2,4–डी इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रत्यक्ष विधियाँ, सस्य क्रियाएँ, जैव–नियंत्रण उपाय भी अपनाए जाते हैं। प्रत्यक्ष विधियों के अंतर्गत हाथों से खरपतवार निकालना, हँसिया, खुरपी, कुदाल आदि का प्रयोग, मशीन से खरपतवार निकालना, जैसे रोटरी, होइंग इत्यादि। सस्य क्रियाओं के अंतर्गत पलवार, अंतःफसल खरपतवार प्रतियोगी किस्मों का चुनाव, शुद्ध बीज, बीज दर, खादों का प्रयोग, मिश्रित फसल, फसल चक्र, बुवाई विधि आदि निहित हैं। खरपतवारों की रोकथाम निम्नलिखित विधियों द्वारा की जाती है।

1. **सस्य विधियाँ** : इस विधि में वे सभी क्रियाऐं शामिल हैं जिनके द्वारा खेतों में खरपतवारों के प्रयोगों को रोका जा सकता है। जैसे – अच्छी सड़ी गोबर खाद एवं कम्पोस्ट खाद का प्रयोग, प्रमाणित बीजों का प्रयोग, सिंचाई की नालियों की सफाई, खेत की तैयारी एवं बुवाई के लिये प्रयोग में आने वाले यंत्रों की अच्छी तरह सफाई करना इत्यादि।
2. **यांत्रिक विधियाँ** : खरपतवार नियंत्रण हेतु यह एक सरल व प्रभावी विधि है। फसल की प्रारंभिक अवस्था में 15 से 45 दिन के मध्य फसलों को खरपतवारों से मुक्त रखना आवश्यक है। इसके लिये दो निराई–गुड़ाई के साथ खरपतवारों को प्रभावी ढंग से नियंत्रित किया जा सकता है। पहली निराई–गुडाई बुवाई के 20–25 दिन बाद व दूसरी 45 दिन बाद करने से खरपतवारों को प्रभावी ढंग से नियंत्रित किया जा सकता है।
3. **रासायनिक विधियाँ** : वर्तमान समय में सर्वाधिक रासायनों का प्रयोग ही किया जा रहा है। खरपतवारों के नियंत्रण हेतु खरपतवारनाशी व शाकनाशी का प्रयोग सर्वाधिक होता है। जो सकरी पत्ती व चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार के लिये भिन्न–भिन्न होते हैं।

विभिन्न फसलों के खरपतवारनाशी एवं उनके प्रयोग की विधि

फसल	खरपतवारनाशी	मात्रा (ग्राम/है.)	प्रयोग का समय	प्रयोग की विधि
धान	ब्यूटाक्लोर	1000–1500	बोने के बाद अंकुरण के पूर्व (पीई)	500–600 लीटर पानी में दवा की आवश्यक मात्रा को घोलकर छिड़काव करें।
	पेंडीमेथिलिन	1000–1250	तदैव	
	एनिलोफॉस	300–400	तदैव	
	प्रेटिलाक्लोर	750–1000	तदैव	
	2, 4–डी	750–1000	रोपाई के 20–25 दिन बाद (पीओई)	
	क्लोरीम्यूरॉन+ मेट्सल्फूरॉन	4	रोपाई के 20–25 दिन बाद (पीओई)	
	फिनाक्साप्राप इथाईल	70	रोपाई के 25–30 दिन बाद (पीओई)	
	पइराजो सल्फयूरॉन	25	रोपाई के 15 दिन बाद (पीओई)	
ज्वार, बाजरा, मक्का	एट्राजीन	1000	बुवाई के तुरंत बाद (पीई)	
	2,4–डी	750	बुवाई के 25–30 दिन बाद (पीओई)	
	मेट्रीब्यूजिन	175–210	बुवाई के 30–35 दिन बाद (पीओई)	आइसोप्रोट्यूरान/ प्रतिरोधी फेलेरिस माइनर के नियंत्रण के लिए प्रभावशाली साथ ही साथ चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों की रोकथाम के लिए भी उपयुक्त। प्रयोग के समय अत्यधिक सावधानी बरतनी चाहिए अन्यथा फसल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
	मेट्सल्फ्युरान मिथाइल	4–6	बुवाई के 25–30 दिन बाद	चौड़ी पत्ती एवं मोथा कुल के खरपतवारों की रोकथाम के लिए प्रयोग करें। घास कुल पर प्रभावी नियंत्रण नहीं होता है।
	सल्फोसल्फ्युरान	25	तदैव	आइसोप्रोटयूरान प्रतिरोधी फेलेरिस माइनर के लिए कारगर। घास कुल के विशेष रूप से जंगली जई के लिए अत्यधिक प्रभावशाली। कुछ हद तक चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों को भी नियंत्रित करता है, अंतरवर्ती या मिलवा फसलों के लिए उपयुक्त नहीं।
दलहनी एवं तिलहनी फसलें	पेंडीमेथालीन	1000	बुवाई के तुरंत बाद (पीई)	
	एलाक्लोर	1500–2000	तदैव	
	फ्लूक्लोरेलिन	1000–1500	बुवाई के पूर्व भूमि में छिड़काव अच्छी तरह मिला दें	
	ट्राइफ्लूरेलिन	1000–1500	तदैव	

कपास	डाययूरान	750–1000	बुवाई के पूर्व भूमि में छिड़काव अच्छी तरह मिला दें	
आलू	मेट्रीब्यूजिन	500	तदैव	
सोयाबीन	एलाक्लोर	1500–2000	बुवाई के 3 दिन के अंदर	
	क्लोरीम्यूरॉन	8–12	बुवाई के 15–20 दिन बाद	
	फिनाक्साप्राप	80–100	बुवाई से 20–25 दिन बाद	
	इमेजेथापायर	100	बुवाई के 15–20 दिन बाद	
	मेटलाक्लोर	1000–1500	बुवाई के 3 दिन के अंदर	
	पेंडीमेथिलीन	1000–1250	बुवाई से पहले या बुवाई के 3 दिन के अंदर	
	क्यूजालोफॉप इथाईल	40–50	बुवाई के 15–20 दिन बाद	
गेहूँ	2, 4–डी	500–1000	बुवाई के 30–35 दिन बाद	
	आइसोप्रोटयुरॉन	750–1000	तदैव	
	पेंडीमेथालीन	1000	बुवाई के तुरंत बाद	
	क्लोडिनाफॉप प्रोपार्जिल	60	बुवाई के 30–35 दिन बाद	आइसोप्रोटयुरान प्रतिरोधी फेलेरिस माइनर के लिए कारगर
	फेनाक्साप्रॉप (पूमा सुपर 10 ई. सी.)	100–120	बुवाई के 30–35 दिन बाद	घास कुल विशेष रूप से जंगली जई के लिए अत्यधिक प्रभावशाली। गेहूँ के साथ मिलवा फसल में भी उपयुक्त। चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों का प्रकोप होने पर 2, 4–डी, नामक रसायन का प्रयोग एक सप्ताह बाद करें। सुबह जब पत्तियों पर ओस की बूंदें हो तो छिड़काव न करें।

4. **समन्वित खरपतवार प्रबंधन** : समन्वित खरपतवार प्रबंधन से तात्पर्य है कि खरपतवारों की संख्या को नियंत्रित करके अधिक पैदावार प्राप्त करने की दृष्टि से जो भी संसाधन किसान के पास उपलब्ध हो उनका सही से संयुक्त रूप से उपयोग करना।

समन्वित खरपतवार प्रबंधन एक बहुत ही उपयोगी प्रक्रिया है गरीब देशों के किसान संसाधनों की कमी व आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण एक बेहतरीन साधन के रूप में इसका उपयोग नहीं कर सकते है।

समन्वित खरपतवार प्रबंधन से लाभ

- यह विधि सर्वाधिक प्रभावशाली है। क्योंकि यदि किसी एक विधि द्वारा खरपतवार नष्ट न हो तो कम से कम दूसरी विधि से खरपतवार प्रबंधन हो सकता है। इस प्रकार यह विधि भूमि में सीड बैक स्थिति को कम करने में सहायक है।
- इस विधि के प्रयोग से बहुत सारी समस्याऐं जैसे – खरपतवारों में बदलाव, खरपतवारों में प्रतिरोधिता का विकास इत्यादि से बचा जा सकता है।
- किसी एक विधि द्वारा खरपतवार नियंत्रण करने से भविष्य में जो समस्याएं आती है उनसे बचा जा सकता है।
- समन्वित खरपतवार प्रबंधन पर्यावरण की दृष्टि से किसानों के लिये अनुकूल है। जिसमें की नींदानाशी पर पूर्ण रूप से निर्भर नहीं रहते। अतः आवश्यकतानुसार खरपतवारनाशियों का प्रयोग करना चाहिए।
- खरपतवानाशी के अवशेष मृदा व पौधों के लिये हानिकारक नहीं होते।
- समन्वित खरपतवार प्रबंधन विधि के उपयोग से शुद्ध लाभ अधिक प्राप्त किया जा सकता है।

समन्वित खरपतवार प्रबंधन की कमियाँ

लाभ की दृष्टि से एक किसान के लिए फसल चक्र को अपनाना संभव नहीं है।

- बीज दर बढ़ा देने से प्रति हैक्टेयर लागत बढ़ जाती है।
- आच्छादन बड़े पैमाने पर खेती के लिये उपयुक्त सम्भव नहीं है।
- जलवायु परिस्थितियों के कारण फसलों की बुवाई के समय में परिवर्तन करना मुश्किल है।
- बुवाई की विभिन्न विधियों को अपनाने से खेती की लागत बढ़ जाती है।
- एक अच्छी सीड बेड तैयार करने के लिये गहरी जुताई करने से खेती की लागत बढ़ जाती है।

भारत में किसान खरपतवार प्रबंधन के लिये या तो कोई भी संसाधन प्रयोग नहीं करते हैं या फिर सस्ते नींदानाशी का ही प्रयोग करते हैं। जो कि किसी भी फसल में खरपतवार नियंत्रण के लिये मुख्य स्त्रोत का कार्य करता है। इस प्रकार समन्वित खरपतवार प्रबंधन वर्तमान में स्वयं के द्वारा संचालित समन्वित खरपतवार प्रबंधन शैली है। जो किसानों को सभी प्रकार की परिस्थितियों में खरपतवार नियंत्रण के लिये प्रोत्साहित करती है।

निष्कर्ष

उचित समय पर खरपतवार प्रबंधन और उचित विधि का चयन सभी कृषि फसलों के लिये महत्वपूर्ण है। फसल की अच्छी तरह देखभाल करके खरपतवारों को समय से नष्ट करके अधिकतम उपज प्राप्त की जा सकती है। खरपतवार कृषि उपज में अधिकतम नुकसान का कारण बनते है। अतः इस उपज को कम करने वाले प्रमुख कारक के रूप में शामिल किया जाना चाहिये। खरपतवारों की वजह से फसल की उपज में जो कमी आती है वह पोषक तत्वों की कमी व सिंचाई की कमी के आगे कुछ भी नहीं है। अतः किसान अपने कृषि व खरपतवार नियंत्रण के ज्ञान को बढ़ाकर कब कैसे व कितना मुनाफा प्राप्त करना है, इसे अपना सकता है व अपने कृषि जीवन को उज्जवल कर सकता है।

जयंती वेदा : एक उपेक्षित महत्वपूर्ण औषधीय खरपतवार

एम. एस. रघुवंशी[1], राजीव मराठे[1], सुदिप्तो चटराज[1], अमृता दरिपा[1], लालचंद मालव[1]
एच.एल. खरबीकर[1], जी. आर. डोंगरे[2], संदीप धगट[2]
1. भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो, नागपूर (महाराष्ट्र)
2. भा.कृ.अनु.प.-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

प्राचीन साहित्य के अध्ययनों से संकेत मिलते है कि पौधो पर आधारित दवाओं का उपयोग लंबे समय से विभिन्न बीमारियों में किया जाता रहा है। प्रकृति ने सभी जीवित प्राणियों हेतु प्रचुर मात्रा में पौधों की संपत्ति प्रदान की है, जिनके पास बहुत ही महत्वपूर्ण औषधीय गुण होते हैं। कई पौधों के आवश्यक मूल्यों को लंबे समय से प्रकाशित किया जाता रहा है। इन्हीं पौधो में एक पौधा जयंती वेदा– *ट्राइडाक्स* है जिसे आमतौर पर कोट–बुटन के नाम से भी जाना जाता है, डेजी परिवार में तीन–दाँतेदार किरण वाले पीले–सफेद या पीले फूलों एवं एक जड़ी बूटी वाला वार्षिक या बारहमासी प्रजाति का पौधा है जिसमें 75 सेंटीमीटर तक लंबे तने होते हैं जो उनके सिरों पर उभरे हुए होते हैं। उपजी पत्तियां नोड्स पर नई जड़ें पैदा करती हैं। यह एक व्यापक खरपतवार और कीट पौधे के रूप में उष्णकटिबंधीय अमेरिका का मूल निवासी है, लेकिन इसे दुनिया भर में उष्णकटिबंधीय, उपोष्णकटिबंधीय और हल्के शीतोष्ण आदि क्षेत्रों में बहुतायत रुप में खेतों, घास के मैदानों, अशांत क्षेत्रों, लॉन और सड़कों पर पाया जा सकता है। पत्तियां दांतेदार और आम तौर पर तीर के आकार की होती हैं। इसका फल कड़े बालों से ढका एक कठोर अर्क होता है और एक सिरे पर एक पंखदार, प्लमलाइक सफेद पेपस होता है। यह इनमें से कई सूखे बीजों का उत्पादन करता है। जो कि हवा द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर विचरण करते हैं ।

पारिस्थितिक खतरा : यह यह प्राकृतिक रूप से अशांत जमीन का एक खरपतवार है जैसे कि रेतीले रिपेरियन गलियारे वाली मिट्टी इसके लिये अनुकूल मानी जाती है । यह व्यापक खरपतवार, इसके रेंगने वाले तनों और बीजों के विपुल उत्पादन के द्वारा स्वतंत्र रूप से जो हवा द्वारा भी फैलता है।

परंपरागत रूप से, *ट्राइडाक्स प्रोकम्बन्स* का उपयोग भारत में घाव भरने के लिए किया जाता है और एक थक्कारोधी, एंटिफंगल और कीट विकर्षक के रूप में किया जाता है। जिसके वांछित, पत्तियों से निकाला गया रस सीधे घावों पर लगाया जाता है। इसकी पत्ती के अर्क का उपयोग लोक दवाओं में संक्रामक त्वचा रोगों के लिए किया गया था। इसका उपयोग यकृत विकारों, हेपेटोप्रोटेक्शन, गैस्ट्राइटिस और नाराजगी के लिए आयुर्वेदिक चिकित्सा में किया जाता है। *ट्राइडैक्स प्रमोम्बेंस* का उपयोग भारत के कुछ हिस्सों में स्थानीय उपचारकर्ताओं द्वारा फोड़े, फुंसियों और कट के उपचार के रूप में भी किया जाता है।

फ्लावोनॉइड प्रोकुम्बेनेटिन को *ट्राइडाक्स प्रोकुम्बेन्स* के हवाई हिस्सों से अलग किया गया है। पौधे से अलग किए गए अन्य रासायनिक यौगिकों में एल्काइल एस्टर, स्टेरोल्स, पेंटासाइक्लिक ट्राइटरपेन, फैटी एसिड, और पॉलीसेकेराइड शामिल हैं।

औषधीय उपयोग– इस पौधे के पत्ते एंटीसेप्टिक, हेमोस्टेटिक और परजीवी हैं एवं इनका उपयोग ब्रोन्कियल कैटरर, पेचिश और दस्त के खिलाफ एक उपचार के रूप में किया जाता है। इसकी पत्ती का 2:1 के अनुपात में सिसरियम के साथ संयुक्त रुप से पाउडर बनाया जाता है जो कि मधुमेह के इलाज के लिए मुख्य रूप से उपयोग में लाया जाता है। बवासीर की सूजन को कम करने और रक्तस्राव को रोकने के लिए पत्तियों का एक महीन पेस्ट बाहरी रूप से लगाया जाता है। पत्ती को ऊपरी तौर पर घावों और छालों पर लगाया जाता है। यशोदा एवं इनके सदस्यों (2018) के प्रकाशित लेख में दर्शाया गया है कि कई रोगजनक बैक्टीरिया पेनिसिलिन, मैक्रोलाइड्स और अमीनोग्लाइकोसाइड्स सहित आमतौर पर इस्तेमाल किए जाने वाले कई एंटीबायोटिक दवाओं के लिए प्रतिरोधी होते जा रहे हैं। इस बावत 50 रोगियों के घावों के स्वाब के नमूने एकत्रित कर उन पर ट्राइडैक्स के पत्तों की क्रूड एक्सट्रैक्ट को इस्तेमाल किया गया तथा नियंत्रण के रूप में सेफलोस्पोरिन, एमोक्सिसिलिन और स्ट्रेप्टोमाइसिन की तुलना की गई थी। यह सिफारिश की गई घावों के तेजी से उपचार के लिए एंटीबायोटिक दवाओं का एक विकल्प *ट्राइडैक्स प्रोकम्बन्स* के फाइटोबायोटिक्स हैं।

अतः अंत में इस पौधे के बारे में यह जानकारी प्राप्त होती है कि संभवतः यह एक खरपतवार है जो साधारणतया सडक के किनारे, दूब–लान और मकानों के कोनों पर, खेतों के किनारे आदि स्थानों में पाया जाता है तथा इसके कृषि–पारिस्थितिक तंत्र पर कई प्रभाव हैं। इसके साथ ही इसके जबरदस्त औषधीय गुण भी है जिसका कि उपयोग कई बीमारियों को ठीक करने हेतु होता हैं। इसका उपयोग बढ़ने पर इसे क्षेत्र से नियंत्रण करने में सुविधा मिलेगी और इससे हम खरपतवार की समस्या को बेहतर तरीके से हल कर सकेंगे।

भारत माँ के भाल पर सजी स्वर्णिम बिन्दी हूँ,

मैं भारत की बेटी, आपकी अपनी हिन्दी हूँ।

जात–पात बंधन को तोड़े, हिंदी सारे देश को जोड़े।

उन्नत तकनीकी प्रयोग से कृषि क्षेत्र में कम लागत में ज्यादा आय

पी.के. सिंह
भा.कृ.अनु.प.–खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

कृषि क्षेत्र को लाभकारी सौदा बनाने और किसानों की आय को दोगुनी करने के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए परम्परागत खेती के साथ–साथ नवीनतम एवं आधुनिक तकनीकी का उपयोग किया जाना आवश्यक है। जिसके लिए एक कार्य योजना के तहत नई तकनीक और उन्नत जानकारियों के अलावा आधुनिक प्रौद्योगिकी से अपने कृषि उत्पादन की वृद्धि एवं उचित मूल्य प्राप्त करन के प्रयास करने होंगे।

समय एवं आवश्यकता अनुरूप कृषि की उत्पादकता बढ़ाने के लिए नई प्रौद्योगिकी का उपयोग करना बहुत जरूरी है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की एक अध्ययन रिपोर्ट के अनुसार देश में केवल 18.5 प्रतिशत खेतीहर मजदूर हैं और इनमें से मात्र 0.5 प्रतिशत ही तकनीकी रूप से प्रशिक्षित हैं अतः नवीनतम प्रौद्योगिकी प्रयोग के लिए इस अन्तर को कम किया जाना चाहिए।

कृषि देश का सर्वाधिक रोजगार मुहैया कराने वाला क्षेत्र है। परन्तु इसमें ज्यादातर लोग परम्परागत खेती में ही कुशल हैं, एवं आधुनिक खेती के लिए वे पूर्णतया प्रशिक्षित नहीं हैं। जैसे मिट्टी की जांच, सूक्ष्म सिंचाई, उन्नत बीज, बीज उपचार, संतुलित उर्वरक, कीटनाशक, खरपतवार प्रबंधन और कृषि उपकरणों के प्रयोग की जानकारी के साथ–साथ फसलों की कटाई के बाद उपज को बाजार तक पहुंचाने और फसल का उचित मूल्य प्राप्त करने की आवश्यकता है जिसको व्यापक स्तर की मुहिम का रूप दिया जाना चाहिए।

खेतों पर उन्नत यंत्रों का प्रयोग

आज के दौर में खेती को उन्नत बनाने में जितनी अहमियत उन्नत खाद, बीज, सिंचाई, समय प्रबंधन व खरपतवार प्रबंधन की है, उतनी ही आधुनिक कृषि यंत्रों की भी है। यंत्रों की सहायता से हम सुविधापूर्वक समय की बचत एवं लागत में कमी के साथ भूमि की जुताई, बीज उपचार, पौध लगाना, फसल बुवाई, रखरखाव और फसल काटना, रसायनों का छिड़काव आदि कार्यों को कर सकते हैं। इनके प्रयोग से किसान अपनी खेती को आसान बनाकर खेती की लागत में काफी कमी ला सकते हैं और खेती में होने वाले जोखिम को भी घटा सकते हैं। किसान के पास कृषि श्रमिकों की कमी होने पर भी यंत्रों द्वारा अधिक भूमि पर खेती कर सकता है। कृषि में उन्नत यंत्रों के प्रयोग द्वारा अधिक उत्पादन के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार है–

सीड ड्रिल द्वारा बुआई

आमतौर पर सीड ड्रिल का प्रयोग बड़े क्षेत्र में बुवाई करने के लिए ही किया जाता है। जिसमें मशीन के द्वारा बुवाई निश्चित अन्तराल के साथ पंक्ति में की जाती है। इसमें बीज बोने के साथ–साथ रासायनिक खादों का प्रयोग, बीज उपचार व बीज ढकने का कार्य एक ही बार में किया जाता है। इस प्रकार मशीन से बुवाई करने से किसानों को निम्नलिखित लाभ हैं :

- सीड ड्रिल से धान की सीधी बुवाई एक नई तकनीक है तथा वर्षा सिंचित क्षेत्रों में जहां पानी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध नहीं है, धान की सीधी बुवाई सीड ड्रिल से सुविधापूर्वक की जा सकती है।
- सीड ड्रिल से बुवाई करने से फसल अवशेष भूमि पर छोड़ दिए जाने से पानी और हवा से मिट्टी अपरदन व पोषक तत्वों की लिचिंग में कमी, मिट्टी की जल धारण क्षमता व कार्बनिक पदार्थ में वृद्धि और माइक्रोबियल गतिविधियों में सुधार होता है। इसके अलावा श्रम, ईंधन व परिचालन लागत में सीधे बचत होती है।
- जानवर और पक्षियों द्वारा होने वाले नुकसान से उत्पादन कम होता है। सीड ड्रिल का प्रयोग करने से इस समस्या के समाधान के साथ अधिक उत्पादन लिया जा सकता है।
- सीड ड्रिल द्वारा बुवाई पंक्ति में की जाती है जिसमें फसल की सफाई, निराई–गुराई व खरपतवार प्रबंधन सुविधापूर्वक किया जा सकता है।
- छिड़काव विधि में किसान अपनी उपज का एक भाग बीज के रूप में इस्तेमाल करता है। सीड ड्रिल का प्रयोग करने से बीज की मात्रा कम हो जाती है जिससे किसान अधिक क्षेत्रफल पर उत्तम बीज की बुवाई कर अधिक लाभ प्राप्त कर सकता है।
- सीड ड्रिल द्वारा बीज एवं खाद की बुवाई एक निश्चित गहराई में समान रूप से होती है जिससे फसल का जमाव एक समान होता है।

संरक्षित कृषि

संरक्षित कृषि एक आधुनिक एवं वैज्ञानिक पद्धति है यह 3 सिद्धांतों पर आधारित होती है।

1. पूर्ववर्ती फसल अवशेष को जलाना नहीं है।
2. शून्य या कम से कम कर्षण क्रिया (टिलेज)।
3. फसल चक्र में वर्ष भर में एक दलहनी, तिलहनी, बागवानी एवं कृषि वानिकी फसल का समावेश।

यह पद्धति फसल उत्पादन में लगने वाले संसाधन, संरक्षण टिकाऊ फसल उत्पादन स्तर एवं पर्यावरण संरक्षण में भी सहायक है। एक लीटर डीजल के जलने से 2.6 किलो ग्राम कार्बनडाईआक्साइड का उत्सर्जन होता है और संरक्षित कृषि में कार्बन डाई आक्साइड के उत्सर्जन में लगभग 135 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर की कमी आती है। इस पद्धति में पूर्ववर्ती फसल की कटाई पश्चात् तत्काल बिना जुताई या न्यूनतम् जुताई किए उक्त फसल के अवशेषों के साथ नई फसल की बुआई की जाती है और हैप्पी सीडर यंत्र संरक्षित कृषि प्रक्रिया में मुख्य रूप से प्रयोग में लाया जाता है। यह पद्धति श्रम, समय, ऊर्जा की बचत के साथ–साथ पर्यावरण संरक्षण में अत्याधिक योगदान के साथ फसल उत्पादन में 10–12 प्रतिशत वृद्धि में सहायक है।

पौधों की सिंचाई की उच्च तकनीक

देश के विभिन्न भागों में वर्षा कम होने तथा कभी–कभी बिल्कुल न होने पर किसानों को सूखे का सामना करना पड़ता है। अतः व्यावसायिक/नगदी फसलों को उगाने के लिए किसान वर्षा पर निर्भर नहीं कर सकते जो कि एक प्राकृतिक साधन है। साथ ही अन्य शुष्क क्षेत्रों में पानी की काफी कमी होती है। जिससे वहाँ के किसानों को अपने खेतों में सिंचाई

करने के लिए पर्याप्त जल उपलब्ध नहीं हो पाता, परंतु सिंचाई की आधुनिक तकनीकी अपनाकर किसान उचित जल प्रबंधन कर सकते हैं। कुछ आधुनिक सिंचाई विधियाँ निम्न प्रकार हैं–

बौछारी सिंचाई (स्प्रींकलर)

इस विधि में स्त्रोत में पानी को वांछित दबाव के साथ खेत तक ले जाया जाता हैं और स्वचालित छिड़काव यंत्र द्वारा पूरे खेत में बौछार द्वारा वर्षा की बूंदों की तरह छिड़काव जाता है। इसके निम्नलिखित लाभ हैं–

- बौछारी विधि से असमतल क्षेत्रों पर भी अच्छी तरह से सिंचाई की जा सकती है। ऊँची–नीची अधिक ढलान वाली दशा के लिए भी यह प्रणाली उपयुक्त है।
- बौछारी विधि से समस्त क्षेत्र पर फसल उगाई जा सकती है जिससे किसान अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकता है।
- सतही विधि से कुल पानी का 31–46 प्रतिशत ही फसलों को उपलब्ध हो पाता है जबकि बौछारी विधि में यह 82 प्रतिशत तक फसलों को उपलब्ध होता है।
- जिन फसलों को सर्दी के दिनों में पाला आदि से काफी नुकसान होता है वहाँ बौछारी विधि अपनाकर कम पानी के प्रयोग द्वारा फसलों को पाला प्रकोप से बचाया जा सकता है।
- इस विधि में उर्वरकों को पानी के साथ मिलाकर फसलों में दिया जा सकता है जिससे उर्वरक पानी के साथ पौधों के नीचे नहीं जा पाता है और रेतीली भूमि में बौछारी सिंचाई करने से मृदा कटाव भी नहीं होता है।
- इस विधि द्वारा भूमि की भौतिक दशा व संरचना में भी सुधार होता है।

टपक सिंचाई (ड्रिप इरीगेसन)

इस विधि में प्रयुक्त यंत्र जिन्हें एमीटर या एप्लीकेटर कहते हैं द्वारा जल धीरे–धीरे लगातार बूँद–बूँद करके पौधों

तक प्लास्टिक की पतली नालियों के माध्यम से पहुंचाया जाता है। यह विधि जल की अत्यंत कमी वाले स्थानों पर प्रयोग की जाती हैं। इस विधि के निम्नलिखित लाभ हैं–

- सिंचाई की अन्य विधियों की अपेक्षा 50 प्रतिशत तक पानी की बचत जिससे किसान दो गुने क्षेत्रफल पर सिंचाई कर सकता है।
- पौधों को पानी समान रूप से मिलता है। अतः सम्पूर्ण क्षेत्र में उपज में वृद्धि होती है।
- किसान फसलों की सिंचाई सुविधापूर्वक कर सकता है जिससे मजदूरों का खर्च बचाया जा सकता है।
- इस विधि में नालियां बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। अतः फसलों के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र में वृद्धि हो जाती है।
- इस विधि से पानी देने पर उर्वरक/पोषक तत्वों की लिचिंग में कमी आती है तथा पौधों को उर्वरक सीधे जड़ों में पहुंचाया जा सकता है। जिससे उर्वरक उपयोग दक्षता में वृद्धि होती है।
- नालियों में उगे खरपतवार पानी का अवशोषण नहीं कर पाते। जिस कारण खरपतवार बहुत कम मात्रा में उगते हैं और मृदा कटाव भी नहीं होता है।
- बीज अंकुरण प्रतिशत में वृद्धि होती है।

आधुनिक परिवहन

कृषि उत्पादों को हम आधुनिक परिवहन के माध्यम से सुरक्षित और कुशल तरीके से एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचा सकते हैं। खेती में उपयोग आने वाले सामान तथा उपज को उपभोक्ता तक कम समय में पहुंचाने में ट्रैक्टर, ट्रक, रेलगाड़ी और समुद्री जहाजों का प्रयोग कर रहे हैं। किसानों का कृषि उत्पाद समय पर उपभोक्ताओं के पास पहुंच सकता है। आधुनिक परिवहन प्रणाली के निम्नलिखित लाभ हैं–

- आधुनिक परिवहन के माध्यम से डेयरी से जुड़े किसान ग्रामीण क्षेत्रों से दूध शहरों में पहुंचा कर अधिक लाभ कमा रहे हैं।
- किसान अपने उत्पाद दूर बड़े–बड़े बाजारों (एक देश से दूसरे देश) में भी बेच सकते हैं।
- आधुनिक परिवहन प्रौद्योगिकी से किसानों के खेत पर उर्वरक और उपकरण आसानी से प्रयुक्त हो सकते हैं।
- कृषि उत्पाद खेत से बाजार में सुविधापूर्वक और समय से पहुंचते हैं। इस प्रकार किसानों का उत्पाद सुरक्षित रहता है और किसानों का आर्थिक नुकसान भी नहीं होता हैं।
- किसान व्यापार से संबंधित जानकारी प्राप्त करते हुए अपने उत्पाद का विक्रय/विपणन स्वयं कर सकता है।
- किसानों के द्वारा परिवहन का प्रयोग करने से मध्यस्थ की भूमिका समाप्त होने से अधिक लाभ प्राप्त होगा।

शीतलन सुविधाएं

भारत फल उत्पादन में प्रथम स्थान पर तथा सब्जी उत्पादन में दूसरे स्थान पर है। लेकिन किसानों के पास उत्पादों के उचित रखरखाव के पर्याप्त साधन न होने के कारण उत्पादन का कुछ भाग उपभोक्ता तक पहुंचने से पूर्व ही नष्ट हो जाता है और उसकी गुणवत्ता में भी काफी कमी आती है। जिससे किसानों को फलों, सब्जियों व अन्य उत्पादों के विपणन में समस्या आती है, और उचित मूल्य प्राप्त नहीं हो पाता है। अतः इस समस्या के समाधान के लिए शुलभ कोल्ड स्टोरेज या प्रशीतन का विशेष महत्व है। किसी उत्पाद या पदार्थ को उसके वातावरण के ताप के नीचे तक ठण्डा करने की प्रक्रिया को प्रशीतन कहते हैं। विगत वर्षों में इन यांत्रिक विधियों का विस्तार बर्फ बनने से लेकर खाद्य एवं पेय पदार्थों को शीतल रखने तथा अधिक समय तक इन्हें संरक्षित रखने हेतु किया गया परंतु अब इनका प्रयोग बहुत बड़े व्यवसायिक पैमाने पर किया जाने लगा है। ये सुविधाएँ किसान टमाटर, शाक–सब्जी, डेयरी उत्पाद, फल, फूल आदि उत्पादों को अधिक समय तक ताजा रखने और समय पर बाजार में उपलब्ध कराने के लिए उपयोग कर रहे हैं जिससे उत्पाद वितरण तक ताजे रहेंगें और उनका स्वाद भी अच्छा रहेगा। इस प्रकार किसानों के उत्पादों को सुरक्षित और गुणवत्ता युक्त बनाना संभव हो गया है। यह किसान और उपभोक्ताओं दोनों के लिए फायदेमंद हैं। किसानों के पास अधिक मांग होने पर किसान उपभोक्ताओं को ताजा उत्पाद देने के साथ बिना मौसम के भी शाक–सब्जी व फल उपलब्ध करा सकते हैं और अधिक मुनाफा कमा सकते हैं।

ई–कृषि

ई–कृषि को इंटरनेट और संबंधित तकनीक के प्रयोग पर आधारित कृषि मूल्य श्रृंखला के रूप में परिभाषित किया जाता है। इसमें सूचना और संचार तकनीक के पहले से अस्तित्व में या नये उभरते तरीकों का अनुप्रयोग और नवीनतम समाधानों का विकास, डिजाईन और धारणाओं का विकास शामिल है। ई–कृषि के अनुप्रयोग में वे सभी कृषि और ढांचागत परियोजनाएं शामिल हैं जिसमें सूचना और संचार तकनीक द्वारा लोगों के सशक्तीकरण की क्षमता मौजूद होती है। संचार और सूचना तकनीक के माध्यम से किसान मांग आधारित कृषि संबंधित सूचना प्राप्त कर सकते हैं, ताकि वे अपने उत्पादों के मूल्य, खेती के विभिन्न तरीकों, जुताई के विभिन्न विधियों, फसल सुरक्षा, खरपतवार प्रबंधन और उत्पादों के सही दामों पर सक्षम खरीददारों से सीधा संबंध स्थापित कर सकें। किसानों को विभिन्न सूचनाओं और प्राथमिक वस्तुओं को

उपलब्ध कराने वाली कंपनियों, (जिन्हें इनपुट कंपनियां कहते हैं जैसे बीज, उर्वरक, फसल रक्षा रसायन, खेती संबंधी मशीनरी, माल ढुलाई, वेयर हाउसिंग, मौसम संबंधी आंकड़े उपलब्ध कराने वाली संस्थाएं) आदि के माध्यम से विभिन्न प्रकार से लाभ प्राप्त कर सकते हैं। मण्डियों को आनलाईन करने के फैसले के अच्छे परिणाम निकलकर सामने आये हैं जिनसे बिचौलियों से छुटकारा मिला है और साथ ही आनलाईन बिक्री होने से किसानों को सीधा फायदा मिला है। ई–कृषि के माध्यम से किसान अपना उत्पाद बाजार में घर बैठे बेच सकते हैं और बेचे गये उत्पाद का मूल्य सीधा अपने बैंक खाते में प्राप्त कर सकते हैं। ई–कृषि से किसानों का डाटा भी आनलाईन रहेगा जिससे उपभोक्ता सीधे किसान से उत्पाद प्राप्त कर सकते हैं और जिससे किसानों को उचित मूल्य मिलेगा तथा उपभोक्ताओं को भी फायदा होगा। ई–कृषि से किसानों को निम्नलिखित लाभ हैं –

- मौसम के पूर्वानुमान और आपदाओं की समय पर जानकारी।
- बेहतर और सहज कृषि–पद्धतियों की जानकारी।
- कृषि जोखिम में कमी और आय में वृद्धि।
- बेहतर जागरूकता और नई जानकारी।
- फसल बीमा योजना जैसी सरल और किसान हितैषी सरकारी विनियामक उपायों की जानकारी।
- सस्ती वित्तीय सहायता की जानकारी।

मोबाइल ऐप

मोबाईल ऐप के माध्यम से हमें प्रतिदिन बाजार में फसलों के मूल्यों और मौसम जैसे– तापमान, वर्षा और आर्द्रता आदि की जानकारी मिलती है। जिसके कारण मौसम के पूर्वानुमान के आधार पर कृषि उद्योग को मौसम की मार से भी बचा सकते हैं। मोबाईन ऐप के माध्यम से किसान भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थानों, राज्य कृषि विश्वविद्यालयों से कृषि से संबंधित जानकारी भी प्राप्त कर सकते हैं। कृषि से संबंधित ऐप से निम्न जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

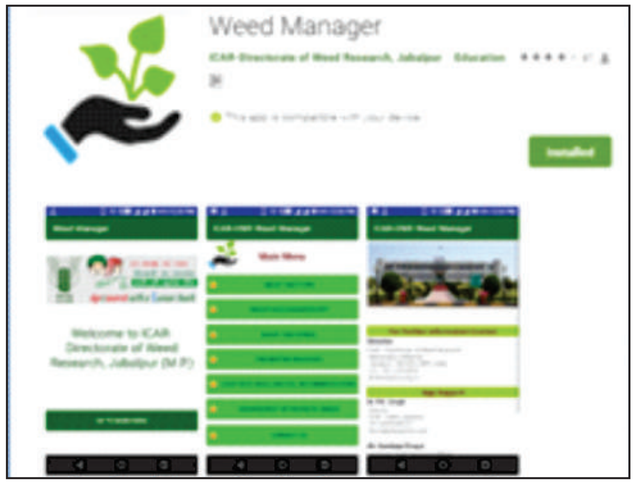

- मोबाईल ऐप के माध्यम से फसलों के बोने का सही समय।
- फसलों में सिंचाई की संख्या और समय ज्ञात कर सकते हैं।
- फसलों में खरपतवार प्रबंधन की उचित जानकारी एवं उनका प्रयोग।
- फसलों में कीट एवं रोग नियंत्रण के लिए उचित दवाओं का प्रयोग।
- मौसम की जानकारी।
- उत्पाद विशेष की बाजार में मांग की जानकारी।

निष्कर्ष

आज के बदलते परिवेश के परिपेक्ष्य में भारत के किसानों को अपने पुराने तरीकों को बदलकर उसमें आधुनिक तकनीकों को स्थान देना होगा क्योंकि इसके द्वारा कम लागत व कम समय में उच्च उत्पादन के साथ उच्च गुणवत्ता प्राप्त की जा सकती है। कृषि में आधुनिक तकनीक से फसलों में सुधार, अधिक उत्पादन के साथ कीट व खरपतवारों पर सुरक्षित और प्रभावी तरीकों से नियंत्रण रख सकते हैं। कृषि में तकनीकी स्थानांतरण से मृदा और जल संरक्षण सुधार के उपायों द्वारा कृषि की उत्पादन क्षमता बढ़ी है तथा लागत घटी है। अतः कृषि उद्योग को उन्नत बनाने के लिए किसानों को उपरोक्त तरीकों को अपनाकर अधिक लाभ प्राप्त करना चाहिए।

खरपतवारों के औषधीय उपयोग

इति राठी एवं संतोष कुमार
भा.कृ.अनु.प.–खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

खरपतवारों को किसी भी ऐसे पौधे या वनस्पति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो कि फसल उत्पादन के उद्देश्यों में हस्तक्षेप करते हैं, जैसे कि फसल उगाना, पशुओं को चराना या वन रोपण करना। ये फसलों के साथ में प्रतियोगिता करते हैं और उनकी पैदावार 37% कम करते हैं। खरपतवार कृषि के लिए एक गंभीर समस्या हैं। इस समस्या को कुछ हद तक दूर करने के लिए इन खरपतवारों को फेंकने एवं नष्ट करने की बजाय इनका उपयोग किया जा सकता है।

खरपतवारों को आमतौर पर अभिशाप के तौर पर लिया जाता है, पर कुछ खरपतवार न केवल अच्छे होते हैं बल्कि इनका प्रयोग औषधि के रूप में कई रोगों के उपचार और दवाईयों के तौर पर किया जाता है। यह स्वास्थ्य रक्षक देशी दवाइयों के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। अनेकों अनुसंधानों के परिणाम से सिद्ध कर चुके हैं कि अनेक खरपतवारों में आश्चर्यजनक चिकित्सीय गुण होते हैं और इनके ये गुण हमारी पारंपरिक चिकित्सा पद्धति तथा आधुनिक चिकित्सा पद्धति, दोनों ने ही स्वीकार किये हुए हैं।

ज्यादातर औषधी के लिए उपयोग में लाए जाने वाली खरपतवार एस्टेरसी परिवार से है। इसके बाद ऐमरेन्थेसी और पोएसी आता है। इनका ज्यादातर उपयोग पेचिस, घाव और त्वचा के रोगों के लिए किया जाना हैं। इनसे दवाईयाँ बनाने के लिए पत्तियाँ 33%, संपूर्ण पौधा 28% और जड़ 20% का उपयोग होता है।

क्र	वानस्पतिक नाम	सामान्य नाम	रोगों का इलाज
1	*एकायरेन्थस एस्पेरा* एल.	लट जीरा	जठरांत्र विकार, प्रसव पीड़ा
2	*एजीरेटम कॉन्जियॉइड्स* एल.	महकुआ	गुर्दे की पथरी, कट, घाव
3	*अल्टरनेनथेरा सेसिलिस* एल.	कठवैया चारा	पेचिश
4	*ऐमारैंथस स्पिनोसस* एल.	जंगली चौलाई	एक्जिमा, टूटी हुई हड्डिया
5	*अर्जीमोन मेक्सिकाना* एल.	सत्यानाशी	आंखों की सूजन, घाव
6	*बकोपा मोननेरी* एल.	बाह्मी	मिर्गी
7	*बिडेन पिलोसा* एल.	कुमरा	पीलिया, दांत दर्द,पेचिस, दस्त
8	*ब्लूमिया लैकेरा* एल.	कुकंदर	एक्जिमा, रिंग वर्म
9	*सेंटेला एशियाटिक* एल.	बल्लारि	पेट की बीमारी, कुष्ठ रोग, सोरायसिस
10	*कुस्क्यूटा युरोपीया* एल.	अमरबेल	जिगर टॉनिक
11	*सायनाडोन डेक्टाइलोन* एल.	दूबघास	नाक से खून आना, पेचिश
12	*साइपेरस रोटंडस* एल.	मौथा घास	मिर्गी, पेचिश
13	*यूफोर्बिया हिरटा* एल.	दूधी	दाद, आँख आना
14	*हेलियोट्रोपियम इंडिकम* एल.	हाथाजोड़ी	त्वचा के छले,मिर्गी
15	*हाइग्रोफिला औरिकुलताटा* एल.	ताल मरवाना	गुर्दे की पथरी
16	*किलिंगा मोनोसेफला रोटब* एल.	निर्विषी	मलेरिया
17	*ल्यूकस एस्पेरा* एल.	गुम्मा	गैस्ट्रिक परेशानी, आंतों के कीड़े
18	*मिमोसा पुडिका* एल.	छुईमई	दांत का दर्द, सांप का काटना
19	*मोलुगो पेंटाफिला* एल.	खेत पापड	घाव एवं त्वचा रोग
20	*ऑक्सालिस कॉर्निकुलाटा* एल.	चंगेरी	पेचिस
21	*पार्थेनियम हिस्टेरोफोरस* एल.	गाजर घास	पेचिस, मलेरिया
22	*पोर्चुलाका ओलेरासिया* एल.	नुनिया	मसूढ़ों से खून आना, मधुमेह,जलन
23	*सैकरम स्पोनटेनम* एल.	काँस	पेचिस
24	*स्कोपारिया डुलसिस* एल.	मीठी पत्ती	ज्वर, जठरशोथ
25	*सीडा कॉर्डिफोलिया* एल.	बला	फ्रैक्चर वाला हिस्सा
26	*सीडा रंबिफोलिया* एल.	अतिबला	सूजन, सिरदर्द, गठिया
27	*सोलेनम निर्जिनियनम* एल.	मकोई	ब्रोन्कियल अस्थमा, खांसी, दांत दर्द
28	*स्पेर्मेकोसी ओसिमोइडस* एल.	मदना घण्टी	दाद, एक्जिमा, दस्त, पेचिश
29	*स्पैरेन्थस इंडिकस* एल.	गोरखमुंडी	अत्यधिक पेशाब की जाँच में
30	*ट्राइडेक्स प्रोकंबेन्स* एल.	कानफूली	घाव
31	*वर्नोनिया सिनेरिया* एल.	सहदेवी	फाइलेरिया
32	*वेटिवरिया जिजानोइड्स* एल.	ख़स घास	त्वचा रोग, उल्टी

इनका प्रयोग दवाईयाँ में करने से पूर्व इनका फाइटो–रासायनिक जाँच करना आवश्यक हैं। इससे न केवल हम नए पौधों की खोज कर सकतें हैं बल्कि दुर्लभ औषधीय पौधों की मौजूदा लेकिन विलुप्त होने वाली प्रजातियों को संरक्षित किया जा सकता है।

इस लेख से लोगों को ना केवल खरपतवारों कें औषधीय गुणों के बारे में पता लगेगा बल्कि लोग इनका संरक्षण भी करेगें।

अर्जीमोन मेक्सिकाना

बकोपा मोननेरी

हेलियोट्रोपियम इंडिकम

वर्नोनिया सिनेरिया

ऑक्सालिस कॉर्निकुलाटा

स्कोपारिया डुलसिस

कृषि वानिकी में खरपतवार–समस्या तथा समाधान

दिशांत डोंगरे, के.के.जैन एवं अर्पन चौकसे
वानिकी विभाग
जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

वर्तमान में भारत कृषि वानिकी की ओर अग्रसर है। तत्कालीन प्रधानमंत्री जी ने सन् 2022 तक किसानों की आय दोगुनी करने का लक्ष्य रखा है जिसमें कृषि वानिकी की महत्वपूर्ण भूमिका है। सन 2014 में नई दिल्ली में हुए विश्व कृषि वानिकी सम्मेलन में भारत ने राष्ट्रीय कृषि वानिकी नीति को अपनाया है, जिसके तहत खेतों में फसलों के साथ–साथ वृक्षों को भी उगाने का लक्ष्य रखा गया है, जिससे किसानों की आय दोगुनी हो सकें तथा पर्यावरण को भी संरक्षित रखा जा सकें। इसके साथ ही विश्व की सबसे बड़ी समस्या जलवायु परिवर्तन का भी समाधान हो सके। इस लक्ष्य को पाने में एक बड़ी रुकावट खरपतवार है, अतः कृषि वानिकी रोपण के पूर्ण जीवन चक्र में खरपतवार नियंत्रण अत्यंत आवश्यक है, जिसके लिए यांत्रिक व रासायनिक विधियों को अपनाया जाता है। खरपतवार नियंत्रण तब तक अत्यंत आवश्यक है, जब तक कि वृक्ष व फसल इतनी बड़ी ना हो जाए कि वह स्वयं खरपतवार से प्रतिस्पर्धा कर सके। रोपण के प्रथम 3 वर्ष में खरपतवार नियंत्रण अत्यंत आवश्यक होता है। खरपतवार हमारी भूमि से पानी को भी अवशोषित कर लेते हैं, जिसका जहाँ 5 सिंचाई की आवश्यकता होती है वहां किसान को ज्यादा पानी देना पड़ता है, इसलिए समय पर खरपतवार नियंत्रण अत्यंत आवश्यक है।

कृषि वानिकी प्रणाली

राज्य	वृक्ष	सहयोगी फसल
मध्यप्रदेश	साल, जामुन	गेहूं, मक्का
उत्तर प्रदेश	सागौन, शीशम, पापुलर	मक्का, धान, सोयाबीन, मूंगफली
केरल	रबर	मसाले
असम	साल	धान, हल्दी
महाराष्ट्र	यूकेलिप्टस	अदरक, हल्दी, जौ, कपास
तमिलनाडु	बांस	जूट, गन्ना

कृषि वानिकी प्रणाली के विभिन्न प्रारूप

1) उन्नत पड़ती भूमि में स्थान बदल कर खेती करना
2) वृक्षों के साथ फसलों का कतार बध्द समन्वय
3) बहुमंजिला उद्यान
4) बहुउद्देशीय वृक्षों का कृषि भूमि पर कृषि फसलों के साथ समन्वय
5) गृह वाटिका
6) मृदा संरक्षण हेतु झाड़ियाँ रोपण
7) वायु अवरोधक तथा सहयोगी वृक्षारोपण
8) पशु चरागाह हेतु वृक्षारोपण
9) ऊर्जा रोपण
10) फलदार वृक्षों के साथ फसलों का समन्वय

खरीफ फसलों के मुख्य खरपतवार– सांवा, कोदो, वनचरी, गिनियाघास, साठी, कनकवा, कोंदरा ,भांगद, कंटीलीचौलाई, मकोय, बड़ी दुधी, हजार दाना, गाजर घास आदि।

रबी फसलों के मुख्य खरपतवार– बथुआ, कृष्णनील, हिरन खुरी आदि।

कब करें खरपतवार नियंत्रण

खरपतवारों के प्रकोप के कारण होने वाली हानि की सीमा कई बातों पर निर्भर करती है। फसलों में किसी भी अवस्था में खरपतवार नियंत्रण करना समान रूप से आर्थिक दृष्टि से लाभकारी नहीं होता है। इसीलिए प्रत्येक फसल के लिए खरपतवारों की उपस्थिति के कारण सर्वाधिक हानि होने की अवधि निर्धारित की गई है। इस अवस्था को क्रांतिक अवस्था कहते हैं। अतः समय पर खरपतवार नियंत्रण के लिए प्रत्येक फसल के लिए क्रांतिक अवस्था तथा खरपतवार नियंत्रण न करने पर होने वाली क्षति की सीमा भी दी गई है।

खेत तैयार करने की विधि

एक सफल कृषि वानिकी रोपण हेतु अच्छी तरह से खेत तैयार करना अत्यंत आवश्यक है बहुवर्षीय घासों व खरपतवारों का प्रबंधन काफी मुश्किल होता है, जब पौधे या वृक्ष लगा दिए जाते हैं खेत को तैयार करने की प्रक्रिया रोपण के करीब 1 वर्ष पहले से आरंभ हो जाती है। यांत्रिक जुताई के द्वारा सभी प्रकार के घासों, खरपतवारों को हटा देना चाहिए। जुताई के 1 या 2 सप्ताह पूर्व 'ग्लायफास्फेट' को डालना चाहिए ताकि खरपतवारों के जड़ तंत्र को खत्म किया जा सकें। वैसे तो कृषि वानिकी पद्धति हर प्रकार की भूमि में अपनाया जा सकता है किंतु कछारी या दोमट मृदा उत्तम होती है। मृदा की गहराई 1.5 से 2.0 मीटर होनी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण की विधियां

गैर रासायनिक

कृषि वानिकी रोपण हेतु खरपतवार नियंत्रण गैर रासायनिक विधि जैसे कि हरी या शुष्क पलवार, विशेष रूप से बनाई गई घास काटने की मशीन, जुताई उपकरण या हाथों से उखाड़ने द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है सर्वश्रेष्ठ परिणाम हेतु गैर रासायनिक व रासायनिक विधियों का समागम आवश्यक है।

1. यांत्रिक खरपतवार नियंत्रण

यांत्रिक खरपतवार नियंत्रण तभी सबसे ज्यादा फायदेमंद है, जब खरपतवार के पौधे छोटे होते हैं। विभिन्न उपकरणों का उपयोग करते समय सावधानी रखनी चाहिए कि पेड़ों को नुकसान ना हो तथा पौधों की कतारों में जुताई 15 सेंटीमीटर दूरी से करना चाहिए क्योंकि यह उनकी जड़ों को नुकसान पहुंचा सकता है इसमें उपयोग होने वाले सामान्य उपकरण जैसे–खुरपी, कुदाली, छटाई उपकरण, डिस्क हैरो आदि हैं।

2. जैविक पलवार (मल्चिंग)

जैविक मल्चिंग में ज्यादातर बुरादा, पेड़ों की पत्तियां, धान का पैरा, गेहूं का भूसा आदि उपयोग करते हैं। यह पलवार खरपतवार नियंत्रण के साथ–साथ नमी को भी संरक्षित करता है। यह विधि बड़े क्षेत्र में उपयोग करना कठिन होता है, क्योंकि इसमें बड़ी मात्रा में श्रमिकों की आवश्यकता होती है। जैविक पलवार में मृदा का तापमान सामान्य से कुछ ठंडा होता है। यदि मृदा में पोषक तत्वों की कमी है तो पलवार का विघटन नाइट्रोजन की कमी कर सकता है यदि इस विधि को अपनाना है, तो नाइट्रोजन उर्वरक का उपयोग अवश्य कर लेना चाहिए।

3. प्लास्टिक पलवार (मल्चिंग)

खरपतवार नियंत्रण की यह काफी प्रभावी तकनीक है, जो कि वृक्षों के कतारों के मध्य उपयोगी होती है। इस विधि में एक बार खर्च करने पर यह पूरे कृषि वानिकी रोपण के दौरान लाभप्रद होती है। इसे एकबार सही तरीके से लगाने पर यह कई सालों तक खरपतवार नियंत्रण कर सकती है। इस विधि का उपयोग बीजों के अंकुरण के समय या उससे पूर्व ही किया जाना चाहिए जब तक कि खेत खरपतवार मुक्त हो तथा पौधों को शीघ ही प्लास्टिक से बाहर निकाल लेना चाहिए नही तो ताप के कारण वह छतिग्रस्त हो जाएंगे तथा इस विधि में पौधे व उनकी जड़ों की वृद्धि ज्यादा तेजी से होती है। प्लास्टिक पलवार में पौधों की वृद्धि 25% अधिक होती है। इस तकनीक के अंतर्गत विभिन्न मोटाई की पारदर्शी पोलीथिन शीट को समतल नमी युक्त मिट्टी की ऊपरी सतह पर फसल की बोवाई के पहले 4–6 सप्ताह तक फैला कर मिट्टी की ऊपरी सतह का तापमान बाहर के तापमान की तुलना में 8–12 डिग्री सेन्टीग्रेड से भी ज्यादा होता है। इससे मिट्टी की ऊपरी सतह में जमा खरपतवारों की बीजों के अंकुरण होने की शक्ति कम या निष्क्रिय हो जाती है।

इसके अलावा कुछ हानिकारक कीड़े, सूत्रकृमि अन्य भी नष्ट हो जाते हैं। यह तकनीक पौधशाला में पौध तैयार करते समय खरपतवारों को नियंत्रित करने में बहुत ही प्रभावशाली है।

रासायनिक खरपतवार नियंत्रण–

इन रसायनों का उपयोग करते समय सुरक्षा व सावधानी रखना चाहिए ताकि खरपतवार नाशकों के असुरक्षित या अनियंत्रित उपयोग से होने वाली हानि से स्वयं, दूसरों तथा पर्यावरण को बचाया जा सके। खरपतवारनाशी रसायन द्वारा भी खरपतवारों को सफलतापूर्वक नियंत्रित किया जा सकता है। इससे प्रति हेक्टेयर लागत कम आती है तथा समय की भी बचत होती है। लेकिन इन रसायनों का प्रयोग करते समय सावधानी बरतनी आवश्यक है। खरपतवार नियंत्रण में खरपतवारनाशी रसायनों के उपयोग में एक और विशेष लाभ है। हाथ निंदाई या डोरा चलाकर निंदाई, फसल की कुछ बढ़त हो जाने पर की जाती है, और इन शस्य क्रियाओं में नींदा जड़ मूल से समाप्त होने के बजाय, उपर से टूट जाते हैं, जो बाद में फिर वृद्धि करने लगते हैं। खरपतवारनाशी रसायनों में यह स्थिति नहीं बनती क्योंकि यह फसल बोने के पूर्व या बुवाई के बाद उपयोग किये जाते हैं। जिससे खरपतवार अंकुरण अवस्था में ही समाप्त हो जाते हैं अथवा बाद में नींदा रसायन के प्रभाव से पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं।

मुख्य फसलों में रासायनिक विधि द्वारा वानिकी में कुछ फसलों को अन्तरर्वीय फसल के रूप में नियंत्रण हेतु निम्न खरपतवारनाशियों का प्रयोग किया जाता है।

फसल	रसायन नाम	व्यवसायिक नाम	प्रयोग का समय
धान (रोपाई)	प्रेटिलाक्लोर	सोफिट, रिफिट	रोपाई/बोवाई के एक से दो दिन के अंदर
मक्का	पैंडीमिथालीन	स्टाम्प, धानुटांप	बोवाई के 1 दिन बाद
गन्ना	एट्राजिन	एट्राटाफ, धानुजीन	बोवाई के 1 दिन बाद
सोयाबीन	क्लोरीमूरोन	क्लोबेन	बोवाई के 15–20 दिन अंतर
मूंगफली/भिन्डी/अरहर/मूंग/उड़द/तोरी/राई	पैंडीमिथालीन	स्टाम्प, धानुटांप	बोवाई के 1 दिन बाद

शाकनाशियों के इस्तेमाल करते समय अपनाई जानी वाली सावधानियां

- चिन्हित क्षेत्र में शाकनाशियों पर एक समान छिडकाव करने के लिए स्प्रेयर का व्यास सावधानी से नापें।
- मात्रा क्षेत्र तथा विभिन्न संरूपणों (फार्मुलेशन) में उपलब्ध सक्रिय संघटकोण के आधार पर खरपतवारनाशियों का आंकलन करके एक निश्चित तौल बना लें।
- खेत में स्प्रे करने के लगभग आधा घंटे से पहले तुले हुए शाकनाशियों को पानी में अच्छी तरह मिला लें।
- शाकनाशियों के स्प्रे के लिए फ्लैट फेन लोजन का इस्तेमाल करें।
- गैर चयनित शाकनाशियों के इस्तेमाल करते समय स्प्रेयर के नोजल पर सुरक्षात्मक शील्ड लगा कर ही पौधों पर छिड़काव करें।
- खरपतवारनाशी का छिडकाव बराबर मात्रा में करें, कहीं कम या ज्यादा न हो।
- रसायनों का प्रयोग हर साल अदल–बदल कर करें।
- खरपतवारनाशी रसायनों को बच्चों की पहुँच से दूर रखें।
- तेज हवाओं के चलने पर छिड़काव न करें क्योंकि शाकनाशी हवाओं के साथ उड़कर समीप की अन्य संवेदी फसलों को नुकसान पहुंचा सकते हैं।
- वर्षा की संभावना होने पर शाकनाशियों का छिड़काव न करें।
- मिश्रित फसलों में रसायनों का चयन फसलों के मुताबिक ही करें।
- खरपतवारनाशी का इस्तेमाल रेत, खाद व मिट्टी में मिलाकर न करें।
- हवाओं के विपरीत प्रवाह में कभी भी छिड़काव न करें।
- शाकनाशियों का इस्तेमाल करते समय रक्षात्मक वस्त्र (बूट, दस्ताने, धूप का चश्मा, मास्क आदि) इस्तेमाल करें।

खण्ड–"ब"

नैनो टेक्नोलोजी की वर्तमान कृषि में आवश्यकता एवं उपयोग

पी.के. सिंह

भा.कृ.अनु.प.–खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

नैनो टेक्नोलोजी कृषि क्षेत्र में अंतः विषय अनुसंधान के लिए एक उभरता हुआ क्षेत्र है। यह दवा, फार्मास्यूटिकल्स, इलेक्ट्रानिक्स और कृषि जैसे विभिन्न क्षेत्रों में अवसरों की एक विस्तृत श्रृंखला प्रस्तुत करता है। आजकल कृषि तथा खाद्य उद्योगों में भी नैनो टेक्नोलोजी लोगों का ध्यान आकर्षित कर रही है। कृषि तथा खाद्य नैनो टेक्नोलोजी में निवेश बढ़ता जा रहा है, क्योंकि खाद्य पदार्थों को बेहतर गुणवत्ता, कृषि आदानों में कमी, बेहतर प्रसंस्करण तथा पोषण इत्यादि संभावित लाभ नैनो टेक्नोलोजी से प्राप्त किए जा सकते हैं। दूसरी ओर, नैनोबायो टेक्नोलोजी संभावित पैदावार, उत्पादन व पोषण में वृद्धि के साथ–साथ विभिन्न प्रकार की फसलों की जीवन प्रक्रियाओं को समझने में सहायक है।

नैनो टेक्नोलोजी द्वारा पर्यावरण की समीक्षा करने वाले संयंत्रों तथा प्रणाली को विकसित किया जा सकता है तथा पौधे के पोषक तत्वों को ग्रहण करने की क्षमता को भी बढ़ाया जा सकता है।

नैनो टेक्नोलोजी वायरस तथा रोग संक्रमित कणों के स्तर पर काम करती है। संक्रमण का पता लगाने तथा उसके उन्मूलन में भी नैनो टेक्नोलोजी की महत्वपूर्ण भूमिका है। यह तकनीक स्मार्ट सेंसर तथा वितरण प्रणाली के कृषि में उपयोग को सरल बना कर वायरस तथा फसल रोगजनकों का सामना करने में मदद करती है। किसी भी रोग के लक्षण उत्पन्न होने से पहले ही इसका एकीकृत संवेदन, निगरानी तथा नियंत्रण प्रणाली रोग की उपस्थिति का पता लगाकर और किसान को सूचित करके, बायोएक्टिव दवाओं, कीटनाशकों, फफूंद नाशकों, शाकनाशी रसायनों पोषक तत्वों, प्रोबायोटिक्स, न्यूट्रास्यूटिकल्स और इनप्लांटऐबल सेल बायोटिएक्टर को सक्रिय कर देता है। निकट भविष्य में नैनो टेक्नोलोजी द्वारा कीटनाशकों फफूंद नाशकों एवं शाकनाशियों की दक्षता में वृद्धि करने वाले संरक्षित उत्प्रेरक भी बनाए जा सकेंगें।

कृषि क्षेत्र में, नैनोटेक अनुसंधान तथा विकास द्वारा अनुवांशिक रूप से संशोधित फसलों, पशु उत्पादन निवेश/आदानों, रासायनिक व्याधी नाशकों तथा सटीक खेती की तकनीकी को अगले स्तर पर पहुंचाने, गढ़ने तथा विस्तार करने की अपार संभावनाएँ है। कृषि तकनीकों में नैनो टेक्नोलोजी के कारण हुए परिवर्तन आधुनिक कृषि को नया स्वरूप देने वाले मुख्य कारक हैं। प्रौद्योगिक नवाचारों की नवीनतम श्रृंखला में, नैनो टेक्नोलोजी का कृषि एवं खाद्य उत्पादन को परिवर्तित करने में प्रमुख स्थान है। नैनो उपकरणों तथा नैनो सामग्री का विकास पादप जैव प्रौद्योगिकी तथा कृषि के क्षेत्र में नए आयामों को हासिल करने में सहायक सिद्ध होगा।

कृषि क्षेत्र में नैनो टेक्नोलोजी का अवलोकन

निकट भविष्य में, नैनो संरचित उत्प्रेरक कीटनाशकों फफूंदनाशकों तथा शाकनाशियों का कम मात्रा में इस्तेमाल करने के बाद भी उसकी दक्षता को बढ़ा देगें। यू.एस.ए., यूरोप तथा जापान में ''पर्यावरण नियंत्रित कृषि'' नामक एक कृषि प्रणाली का उपयोग किया जा रहा है, जिसमें कुशलतापूर्वक फसल प्रबंधन के लिए आधुनिक तकनीकों का उपयोग किया जाता है। पर्यावरण नियंत्रित कृषि (कंट्रोल इनवारमेंट एग्रीकल्चर) हाईड्रोपोनिक्स आधारित एक उन्नत कृषि प्रणाली है। इससे पौधों को एक नियंत्रित वातावरण में उगाया जाता है ताकि कृषि पद्धतियों को अनुकूलित किया जा सके। कम्प्यूटरीकृत प्रणाली द्वारा फसल वातावरण तथा सिंचित पानी के लिए क्षेत्रों का निरीक्षण एवं नियंत्रण किया जाता है। पर्यावरण नियंत्रित कृषि (कंट्रोल इनवारमेंट एग्रीकल्चर) प्रौद्योगिकी कृषि के लिए नैनो टेक्नोलोजी की शुरूआत के लिए एक उत्कृष्ट मंच प्रदान करता है। पर्यावरण नियंत्रित कृषि (कंट्रोल इनवारमेंट एग्रीकल्चर) के लिए इस्तेमाल होने वाले नैनो टेक्नोलोजी उपकरण स्काउटिंग क्षमता प्रदान करते हैं जो कि उत्पादकों को फसल काटने का सही समय, फसल की जीवन शक्ति, तथा खाद्य सुरक्षा से संबंधित मुद्दों जैसे सूक्ष्म जीवाणु या रासायनिक संदूषक के बारे में सही जानकारी देकर उत्पादन क्षमता को सुधारने में सहायता प्रदान करते हैं।

नैनो बायोसेंसर

सेंसर परिष्कृत उपकरण है जो भौतिक, रसायनिक और जैविक परिवर्तनों के अनुसार प्रतिक्रिया करके उसे संकेत के रूप में बदल देते हैं। मनुष्य द्वारा इस प्रकार के संकेतों का प्रयोग सूक्ष्मजीवों, कीटों तथा पोषक तत्वों की मात्रा, पौधे पर सूखा, तापमान, कीट, रोगजनक दबाव या पोषक तत्वों की कमी का पता लगाने के लिए किया जाता है। नैनो सेंसर स्थानिक तथा सामाजिक स्तर पर पौधों में पानी तथा पोषक

तत्वों की सही स्थिति का ज्ञान कराकर किसानों की आदानों का अधिक कुशलतापूर्वक उपयोग करने में मदद करते हैं। यह किसान को आवश्यकता के अनुसार पोषक तत्वों, पानी, कीटनाशक, शाकनाशक, कवकनाशी का प्रयोग करने की जानकारी देते हैं। नैनो टेक्नोलोजी सक्षम उपकरणों की प्रमुख भूमिकाओं में से एक महत्वपूर्ण भूमिका है कि नैनो टेक्नोलोजी ने स्वायतंत्र सेंसर के प्रयोग को बढ़ा दिया है जिससे कि ग्लोबल पोजिशनिंग सिस्टम प्रणाली तथा मिट्टी की स्थिति पर नजर रखी जा सके। नैनोकणों को इस तरह से संशोधित किया जा सकता है जिससे कि वे विद्युत तथा रासायनिक संकेतों द्वारा दूषित पदार्थों की उपस्थिति का सही ज्ञान करा सकें। अंत में हम कह सकते हैं कि सटीक खेती के लिए, स्मार्ट सेंसर सही जानकारी प्रदान करके कृषि उत्पादकता को बढ़ा सकते हैं तथा कृषक को सही समय पर सही निर्णय लेने में मदद भी कर सकते हैं।

जैविक खेती में नैनो टेक्नोलोजी

जैविक खेती का लक्ष्य कम संसाधनों (कीटनाशकों, फफूंद नाशकों तथा शाकनाशी) का प्रयोग करके, पर्यावरण संबंधित परिवर्तनों का निरीक्षण करते हुए अधिक उत्पादन लेना है। जैविक खेती में स्थानीय पर्यावरण की स्थिति जानने के लिए कम्प्यूटर, पीपीएस प्रणाली तथा रिमोट सेंसिंग उपकरणों का प्रयोग हो रहा है, जो कि फसलों की अधिकतम क्षमता, कृषि से जुड़ी समस्याओं तथा उनके विभिन्न प्रकारों का सही विवरण देती है।। केन्द्रीकृत डाटा का प्रयोग करके मृदा की स्थिति, पौधे की वृद्धि, उर्वरक, रसायन तथा पानी के उपयोग की क्षमता को पहचान कर कम लागत से भी किसान की उत्पादकता को बढ़ा कर उसे लाभान्वित किया जा सकता है। इस प्रकार की सटीक खेती के द्वारा कृषि अपशिष्ट पदार्थों को कम करके पर्यावरण प्रदूषण को कम करने में भी सहायता मिलेगी। अतः इन सभी स्मार्ट सेंसर का प्रयोग करके की गई सटीक कृषि किसानों को बेहतर निर्णय लेने में मदद करेगी जो भविष्य में उत्पादकता को बढ़ाने के लिए अत्यंत आवश्यक है।

नैनो शाकनाशी

खरपतवार को समाप्त करने का सबसे आसान तरीका है मिट्टी में उपस्थित खरपतवार के बीज बैंक को नष्ट करना तथा अनुकूल वातावरण में भी उनका अंकुरण अवरूद्ध करना। आकार में बहुत छोटा होने के कारण नैनो शाकनाशी मिट्टी के साथ अच्छी प्रकार मिश्रित होकर, विषाक्त अपशिष्ट छोड़े बिना ही खरपतवार को पारिस्थितिकी के अनुकूल पूर्ण रूप से नष्ट करने में सहायक है, तथा ऐसे खरपतवार जो पारंपरिक शाकनाशी के लिए प्रतिरोधी हो गये हैं, उनकी वृद्धि और विकास को भी अवरूद्ध करते हैं। खरपतवार गहरी जड़ों और कंद के रूप में भूमिगत संरचनाओं के माध्यम से फैलते हैं। खरपतवार को हाथों द्वारा खेत से हटाते समय की गई संक्रमित खेत की जुताई इन अवांछित पौधों को असंक्रमित क्षेत्रों में फैला सकती है। अगर सक्रीय संघटकों को स्मार्ट वितरण प्रणाली के साथ जोड़कर प्रयोग किया जाए तो शाकनाशियों के अत्यधिक प्रयोग को भी नियंत्रित किया जा सकता है।

खरपतवार से दूषित मृदा में उत्पादन भी कम होता है। इसलिए नैनो टेक्नोलोजी के प्रयोग द्वारा शाकनाशियों की कुशलता को बढ़ाया जा सकता है, जो कि उत्पादकता की वृद्धि के साथ ही कृषि श्रमिकों के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले हानिकारक प्रभावों को भी कम करने एवं पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगी।

फसल जैव प्रौद्योगिकी के लिए नैनो टेक्नोलोजी

नैनो कैप्सूल के सक्रिय घटकों का धीमा तथा नियमित रिसाव पौधे की उपत्वचा (क्यूटिकल) तथा उत्तकों द्वारा शाकनाशी को सफलता पूर्वक पौधे के अंदर पहुंचाने में सहायक है। ये नैनो कैप्सूल एक जादू की गोली की तरह काम करते हैं। टॉर्नी एट.ऐल. (2007) ने 3 एमएम के सिलिका नैनो कणों के प्रयोग द्वारा पृथक पादप कोशिकाओं में डी.एन.ए. को स्थानांतरित किया था। सिलिका नैनो कणों को रसायनिक रूप से लेपित करके उन्हें जीव का परिदान करने के लिए वाहक के रूप में इस्तेमाल किया गया ताकि कोशिका भित्ति द्वारा ये कण आसानी से पौधे में प्रवेश कर सकें जिससे जीन को बिना किसी विषाक्त दुष्प्रभावों के, नियंत्रित तरीके से स्थानांतरित किया जा सके। सबसे पहले इस प्रौद्योगिकी का प्रयोग तम्बाकू तथा मक्के के पौधे में डी.एन.ए. को स्थापित करने के लिए किया गया था।

नैनो कण और पादप रोग नियंत्रण

नैनो के कुछ कणों ने पादप रोग नियंत्रण क्षेत्र में भी प्रवेश कर लिया है जैसेः कार्बन, चांदी, सिलिका, एल्यूमिनो सिलिकेट। नैनो कणों के इस प्रयोग ने नैनो वैज्ञानिक समुदाय को चकित कर दिया है क्योंकि नैनो स्तर पर ये कण बहुत ही अलग प्रवृति दिखाते है। रोगाणुरोधी एजेंट के रूप में नैनो आकार के चांदी के कणों का उपयोग बहुत आम हो गया है तथा इनका उत्पादन भी किफायती है। चांदी सूक्ष्मजीवों पर बहुत ही निरोधात्मक गुण दर्शाती है, अतः अन्य व्यवसायिक कवकनाशकों की अपेक्षा इसका प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित है। इसके अतिरिक्त भी चांदी सूक्ष्मजीवों की विभिन्न जैव रसायनिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करती है।

कीटों के प्रबंधन की यांत्रिक विधियाँ : एक उत्तम साधन

राजेश आर्वे, अभिषेक शुक्ला, अमित कुमार शर्मा, योगेश तिवारी एवं सोपान सालुंके
जवाहरलाल नेहरु कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

1. फेरोमोन ट्रैप

- बार–बार रासायनिक कीटनाशकों के प्रयोग के उपरांत भी कपास, मूंगफली, धान, दलहनी फसलों, तंबाकू, सब्जियों एवं फल वाले पौधे के विभिन्न कीटों का सफलतापूर्वक नियंत्रण नहीं हो पा रहा है।
- आधुनिक पद्धति यह है कि किसी नाशीजीव का नियंत्रण करने के लिए कम से कम रासायनिक छिड़काव, जैविक नियंत्रण, यांत्रिक नियंत्रण के साधनों जैसे फेरोमोन ट्रैप (गंध पाश) आदि का समेकित उपयोग किया जाए, जिसे एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन कहते हैं।
- इस पद्धति का गंध पाश एवं गंध (लुर) का कीट की स्थिति का आकलन करने एवं नर पतंगो को पकड़कर नष्ट करने में अपना उल्लेखनीय योगदान है।

फेरोमोन गंध क्या है?

- यह एक प्रकार का ऑर्गेनिक पदार्थ है, जो किसी मादा पतिंगा (मौथ) द्वारा प्रकृति में उनके नर कीट को मैथुन क्रिया के लिए आकर्षित करने हेतु निष्कासित किया जाता है।
- विभिन्न कीटों की मादा द्वारा निष्कासित विभिन्न प्रकार के ऑर्गेनिक पदार्थों की पहचान करके इन्हें प्रयोगशाला में सिंथेसाइज करके बड़े पैमाने पर उपयोग में लाया जाता है।

मास ट्रैपिंग

- कई सारे फेरोमोने ट्रैप का उपयोग कीटों को अधिक से अधिक समूह में पकडने के लिए भी किया जाता है। जिससे नर कीट ट्रैप हो जाएं और मादा कीट अंडा देने से वंचित रह जाएं।

कैसे उपयोग करें

- खेतों में इस ट्रैप को सहारा देने के लिए एक डंडा गाडना होता हैं।
- इस डंडे के सहारे छल्ले को बांधकर इसे लटका दिया जाता है।
- ऊपर के ढक्कन में बने स्थान पर ल्योर को फंसा दिया जाता है तथा बाद में छल्लों में बने पैरों पर इसे कस दिया जाता हैं।
- कीट एकत्र करने की थैली को छल्ले में विधिवत लगाकर इसके निचले सिरे को डंडे के सहारे एक छोर पर बांध दिया जाता है।
- इस ट्रैप की ऊंचाई इस प्रकार से रखनी चाहिए की ट्रैप का उपरी भाग फसल की ऊंचाई से 1 से 2 फुट ऊपर रहे।

ट्रैप का निर्धारण व सघनता

- प्रत्येक कीट के नर पतिंगों को बड़े पैमाने पर एकत्र करने के लिए सामान्यतः 2–5 ट्रैप प्रति एकड़ प्रर्याप्त हैं।
- एक ट्रैप से दूसरे ट्रैप की दूरी 30–40 मीटर रखनी चाहिए।
- इस ट्रैप को खेत में लगा देने के उपरांत इनमे फसे पतिंगों की नियमित जांच की जानी चाहिए और पाए गए पतिंगे का आंकड़ा रखना चाहिए जिससे उनकी गतिविधियों पर ध्यान रखा जा सके।
- बड़े पैमाने पर कीड़ों को पकड़कर मारने के उद्देश्य से जब इसका उपयोग किया जाए तो थैली में एकत्र कीड़ों को नियमित रूप से नष्ट कर थैली को बराबर खाली करते हैं जिससे उसमें नए कीड़ों को प्रवेश पाने का स्थान बना रहे।
- इस नई तकनीक का लाभ यह है कि किसान अपने खेतों पर कीड़ों की संख्या का आंकलन कर कीटनाशकों के उपयोग की रणनीति निर्धारित कर अनावश्यक रासायनिक उपचार से बच जाए।

मॉनिटरिंग (कीट सूचक)

- फेरोमोन ट्रैप तथा संबंधित ल्योर की प्रति एकड़ 4 से 5 की संख्या में लगाया जाता है इससे फसल में कीट आगमन तथा उनकी संख्या का पता लग जाता है और इसके आधार पर उचित नियंत्रण के उपाय भी किए जा सकते हैं।
- इसके द्वारा खेतों में विभिन्न कीटों की सघनता का आँकलन करके एवं उनको बड़े पैमाने पर पकड़कर नष्ट करने के लिए फेरोमोन तकनीक का विकास किया गया है।
- इनमें से कुछ कीड़े, जिनके फेरोमोन उपलब्ध है वह इस प्रकार है, हेलिकोवर्पा आर्मिजेरा, अमेरिकन बोलवर्म, चना

का फली छेदक, पेक्टनोफोरा गासीपियएला (कपास का गुलाबी कीट), इरियास विटेल्ला (कपास का गुलर बेधक)।

- इस विधि में ल्योर तथा ट्रैप गंधपाश दो वस्तुओ से मिलकर बना होता है जिसमें ल्योर का उपयोग नर पतंगो को आकर्षित करने के लिए किया जाता है।
- पांश यानी ट्रैक के अंतर्गत ऊपर का एक ढक्कन है ल्योर की वर्षा एवं सूर्य की किरणों से रक्षा करता है वह एक छल्ला रहता है, जिसमें कीट एकत्र करने की थैली फसाई जाती है यह थैली किटों को फंसाने और संग्रह करने के काम आती है।

फेरोमोन ट्रैप एवं ल्योर का लाभ

- इसके उपयोग से कृषि रक्षा उपचार हेतु रसायनों के अनावश्यक छिड़काव एवं उस पर होने वाले खर्चे से कृषक बच सकते हैं।
- फेरोमोन एवं ल्योर विषैले नहीं है अतः इनसे वातावरण को कोई खतरा नहीं है।
- फेरोमोन ट्रैप से कीड़ों के प्रजनन विस्तार को रोका जा सकता है एवं इनसे होने वाली क्षति को रोकने में मदद मिलती है एवं उत्पादन स्वतः 10 से 20 प्रतिशत बढ़ जाता है।
- फेरोमोन द्वारा कीड़ों का आँकलन करके हर कोई आवश्यकता अनुसार रासायनिक उपचार से बच सकता है।
- इस पर आने वाला खर्चा बहुत कम है जो सामान्यतः रासायनिक उपचार से भी कम है।

फसल एवं कीटों के लिए प्रयुक्त होने वाले ल्योर

- अमेरिकन सुंडी/लट – हेलील्योर – दलहनी फसलों के लिए
- तंबाकू सुंडी/लट – स्पोडो ल्योर – तंबाकू
- गुलाबी सुंडी/लट – पेक्टीनो – कपास
- धब्बेदार सुंडी/लट – इर्विट ल्योर – भिंडी, तोरै, कद्दू वर्गीय
- डायमंड बेक मॉथ – डीबीएम ल्योर – गोभी कूल के फसल के लिए
- बैगन फली एवं तना छेदक – ल्यूसिन ल्योर – बैगन एवं मिर्च के लिए
- मेलोन फ्लाई – बाकू ल्योर – कुकुरबीटी
- फ्रुट फ्लाई (फल मक्खी) – बेडोर ल्योर – आम, अमरूद, लिची, नारंगी कुल के फसल के लिए
- अर्ली शूट बोरर– इ. एस. बी. ल्योर – धान, गन्ना के लिए
- गन्ना तना छेदक – चाइलो ल्योर – गन्ना के लिए
- गन्ना इंटरनोड बोरर – चाइलो ल्योर– गन्ना के लिए
- गन्ना टॉप बोरर – स्किरपो ल्योर – गन्ना के लिए
- रेड पाम वीविल – आर. पी. डब्लू ल्योर – पाम
- रीनोसिरस बीटल – आर. बी. ल्योर – नारियल कुल के फसल के लिए
- काफी व्हाइट स्टैम बोरेर (तना बेधक) – सी. डब्लू. एस. बी. ल्योर – काफी फसल के लिए
- कोको पौड बोरेर – सी. पी. बी. ल्योर – कोको कुल के फसल के लिए

किसान बरतें ये सावधानियां

- फेरोमोन ल्योर को एक माह में एक बार अवश्य बदल देना चाहिए।
- ठंड़े एवं सूखे स्थान पर भंडारित करें।
- एक बार प्रयोग किये गए ल्योर को नष्ट कर दें।
- यह सुनिश्चित करते रहें कि कीट एकत्र करने की थैली का मुंह बराबर खुला रहे और खाली स्थान बना रहे जिसमें अधिकाधिक कीड़े एकत्र कर नष्ट किए जा सकें।
- ट्रैप लगाने से पहले हाथों को साबुन से धुलें, तंबाकू या दूसरे रसायनों की गंध इसे प्रभावित कर सकती है।
- ट्रैप को फसल के 25–30 दिन की होने के बाद ही लगाने चाहिए। इसे फसल से करीब एक फीट ऊपर लगाना चाहिए।

विभिन्न प्रकार के ट्रैप

वोटा ट्रैप

कोको ट्रैप

फेरो ट्रैप

फेरो ट्रैप

फ्लाइ ट्रैप

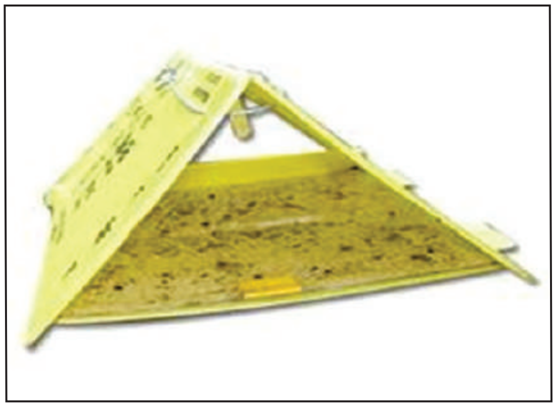

डेल्टा ट्रैप

2. अन्य ट्रैप

येल्लो स्टिकी ट्रैप

- सफेद मक्खी (व्हाइट फ्लाई) एवं एफीड (माहू) के लिए इसको बनाने के लिए टीन की चौकोर प्लेट के ऊपर पीले रंग से पुताई करने के बाद सफेद चिपचिपा पदार्थ लगाकर खेतों में सरसों, सब्जियों, मिर्च एवं दलहनी फसल में 1 फुट ऊपर लगाने से सफेद मक्खी एवं माहू का 50 प्रतिशत नियंत्रण हो जाता है।
- **ब्लू स्टिकी ट्रैप—थ्रिप्स के नियंत्रण के लिए**

  इसको बनाने के लिए टीन की चौकोर प्लेट के ऊपर नीले रंग से पुताई करने के बाद सफेद चिपचिपा पदार्थ लगाकर खेतों में कद्दू वर्गीय एवं मिर्च, बैगन, पालक आदि फसल में एक फुट उपर लगाने से थ्रिप्स का 50 प्रतिशत नियंत्रण हो जाता है।

3. प्रकाश प्रपंच (लाइट ट्रैप)

रात के वक्त खेतों में बल्ब जलाकर उसके नीचे प्लास्टिक के बर्तन में पानी एवं थोड़ा केरोसिन तेल डालकर रखने से रात्रिचर कीड़े बहुतायत मात्रा में फंसकर मर जाते हैं एवं फसल की कीटों से 50 से 60 प्रतिशत सुरक्षा हो जाती है।

4. बर्ड परचर (चिड़ियों के बैठने के लिए स्थान बनाना)

खेतों में बांस की खूंटी का चिड़ियों के बैठने के लिए स्थान बनाना चाहिए ताकि उस पर चिड़िया बैठकर अपने शिकार को देखकर आसानी से भक्षण कर सके।

मक्का की फसल में फॉल आर्मी वर्म का प्रकोप एवं प्रबंधन

प्रमोद कुमार गुप्ता[1] एवं योगिता घरडे[2]

1. जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)
2. भा.कृ.अनु.प.–खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

प्रस्तावना

मक्का (वानस्पतिक नाम : *Zea mays*) एक प्रमुख खाद्य फसल हैं, जो मोटे अनाजों की श्रेणी में आता है। भारत के अधिकांश मैदानी भागों से लेकर 2700 मीटर उँचाई वाले पहाडी क्षेत्रों तक मक्का सफलतापूर्वक उगाया जाता है। इसे सभी प्रकार की मिट्टियों में उगाया जा सकता है। बलुई, दोमट मिट्टी मक्का की खेती के लिये बेहतर समझी जाती है। पिछले दशक में यह भारत में एक महत्त्वपूर्ण फसल के रूप में उभरकर आई है क्योंकि यह फसल सभी मोटे व प्रमुख खाद्यान्नों की बढ़ोत्तरी दर में सबसे अग्रणी है।

भारत में मक्का का महत्त्व एक खाद्यान्न की फसल के रूप में है। भारत में मक्का की खेती जिन राज्यों में व्यापक रूप से की जाती है वे हैं – आन्ध्र प्रदेश, बिहार, कर्नाटक, राजस्थान, उत्तर प्रदेश इत्यादि। इनमें से राजस्थान में मक्का का सर्वाधिक क्षेत्रफल है व आन्ध्र प्रदेश में सर्वाधिक उत्पादन होता है। परन्तु मक्का का महत्व जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, पूर्वोत्तर राज्यों, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, गुजरात व झारखण्ड में भी काफी अधिक है। हालाँकि इसकी उपज को कीट–व्याधियाँ प्रभावित करते हैं। प्रमुख कीट में फॉल आर्मी वर्म फसल को अत्यधिक प्रभावित करता है।

फॉल आर्मी वर्म कीट सबसे पहले 2015 में अमेरिका में पाया गया था। इसके बाद 2017 के अंत तक यह 54 अफ्रीकी देशों में से 44 देशों में फैल चुका है। वहां इस कीट ने काफी नुकसान पहुंचाया है। मई, 2018 में यह कर्नाटक के शिवगोमा में पाया गया। इसके बाद हसन, बेंगलुरू व चिकबालापुर में देखा गया। इसके आंध्र प्रदेश, गुजरात, मध्यप्रदेश व बिहार में भी पाए जाने की सूचना है। आज की स्थिति में यह समस्त भारत में अपनी जगह बना चुका है। यह कीट एक दिन में एक सौ किमी तक की उड़ान भरता है। इस कीड़े की पहली पसंद मक्का है लेकिन यह चावल, ज्वार, बाजरा, गन्ना, सब्जियाँ और कपास सहित 80 से अधिक पौधों की प्रजातियों को खा सकता है।

भारतीय उपमहाद्वीप में सबसे पहले मई, 2018 में इस विनाशकारी कीट की मौजूदगी कर्नाटक में दर्ज की गई थी और तब से अब तक यह पश्चिम बंगाल तथा गुजरात तक पहुँच चुका है। उचित जलवायु परिस्थितियों के कारण यह न केवल पूरे भारत में बल्कि एशिया के अन्य पड़ोसी देशों में भी फैल सकता है। कर्नाटक राज्य भारत में सबसे बड़े मक्का उत्पादकों में से एक है और मक्का देश में व्यापक रूप से उत्पादन किया जाने वाला तीसरा अनाज है। मध्य प्रदेश में जिला छिन्दवाड़ा जिसे कॉर्न सिटी के नाम से जाना जाता रहा है, वहां पर भी इस विनाशकारी कीट की मौजूदगी दर्ज की गई।

पहचान के लक्षण

छोटी से तीसरी अवस्था तक फॉल आर्मी वर्म कीट के लार्वा को पहचानना मुश्किल है, लेकिन जैसे–जैसे बड़ा होता है, इसकी पहचान आसान हो जाती है। इसका लार्वा भूरा, धूसर रंग का होता है। इस कीट के पीठ के नीचे तीन पतली सफेद धारियाँ और सिर पर एक अलग सफेद उल्टा अंग्रेजी शब्द का 'वाई' के आकार का निशान दिखता है। साथ ही लार्वा के 8 वे बॉडी सेगमेंट पर 4 बिंदु वर्गाकार आकृति में देखे जा सकते हैं। फॉल आर्मी वर्म कीट के सिर के तरफ चार बिंदु होते हैं। यह इसकी पहचान का तरीका है।

जीवन चक्र

इसकी वयस्क मादा एक बार में 50 से 200 तक अंडे देती है। यह मादा अपने जीवन काल (7 से 21 दिन) में 10 गुच्छे अंडे यानी 1700 से 2000 तक अंडे दे सकती है। ये अंडे 3 से 4 दिन में फूट जाते हैं और इनमें से लार्वा निकलते हैं। लार्वल पीरियड 14 से 22 दिन होता है, प्यूपल पीरियड 7 से 13 दिन का होता है। इस कीट का जीवन चक्र 30 से 60 दिन का होता है।

क्षति के लक्षण

छोटा लार्वा पौधों की पत्तियों को खुरचकर खाता है, जिससे पत्तियों पर सफेद धारियां दिखाई देती हैं। जैसे–जैसे लार्वा बड़ा होता है, पौधों की ऊपरी पत्तियों को खा जाता है और लार्वा बड़ा होने के बाद मक्का के गाले में घुसकर पत्तियां खाता रहता है। पत्तियों पर बड़े गोल–गोल छिद्र एक ही कतार में नजर आते हैं। ये कीट सबसे पहले पौधे की पत्तियों पर हमला करते हैं, इनके हमले के बाद पत्तियाँ ऐसी दिखाई देती हैं जैसे उन्हें कैंची से काटा गया हो ।

आर्मीवर्म के फैलाव के कारण :

1. जलवायु परिवर्तन के साथ–साथ संक्रमित और गैर–संक्रमित क्षेत्रों के बीच बढ़ता व्यापार और परिवहन

फॉल आर्मी वर्म के फैलाव के कारण हैं, जिसने संभावित रूप से दुनिया की खाद्य सुरक्षा को खतरे में डाल दिया है। गर्म और आर्द्र तापमान (20 से 32 डिग्री सेल्सियस के बीच) तथा लंबे व शुष्क समयांतराल फॉल आर्मीवर्म के प्रजनन के लिये अनुकूल कारक हैं।

2. प्रजनन में शीघ्रता।
3. भारतीय उपमहाद्वीप के उष्ण कटिबंधीय और उपोष्ण कटिबंधीय जलवायु का आर्मीवर्म के अनुकूल होना, जो उन्हें पूरे साल भोजन उपलब्ध कराती है।

ऐसे करें प्रबंधन

1. ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करके शंखी अवस्था को नष्ट करें।
2. समय पर बुआई करें। मानसून वर्षा के साथ ही बुआई करें, विलंब ना करें।
3. अनुशंसित पौध अंतराल पर बुआई करें।
4. संतुलित उर्वरकों का अनुशंसित मात्रा में, विशेषकर नत्रजन की मात्रा का प्रयोग अधिक ना करें।
5. अंन्तवर्ती फसल के रूप में दलहनी फसल अरहर, मूंग, उड़द लगाए ।
6. जिन क्षेत्रों में खरीफ की मक्का की फसल ली जाती है, उन क्षेत्रों में ग्रीष्म कालीन मक्का ना लें तथा अनुशंसित फसल चक्र अपनाएं।
7. अंडे के गुच्छे ढूंढ़ कर नष्ट करें।
8. प्यूपा से वयस्क बनने को रोकने के लिए भूमि में नीम की खली 250 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर डालें।
9. प्रारंभिक अवस्था में लकड़ी का बुरादा, राख एवं बारीक रेत पौधे की पोंगली में डालें।
10. प्रकाश प्रपंच (एक प्रति हैक्टेयर) लगाकर इसके मोथ (तितली) पर नजर रखें।
11. फसल के प्रारंभिक चरण में टी आकार की पक्षी के पर्चे 10 प्रति एकड़ की दर से शुरूआती 30 दिनों के लिए लगाए।
12. खेत के चारों ओर जाल फसलें (नेपियर) की 3–4 पंक्तियां लगावें या मेटाराइजियम एनीसोप्लाई 1.5 ली. प्रति हैक्टेयर का प्रयोग करें।
13. नरपतंगों को पकड़ने के लिए फेरोमैन ट्रैप 15 प्रति एकड़ की दर से उपयोग करें।

कीटनाशी का भी प्रयोग करें

1. जैविक कीटनाशक के रूप में *बी टी* (*बीटी*– बैसिलस थारुनजेन्सिस बैक्टीरियाप्रोटीन) 1 किग्रा प्रति हैक्टेयर अथवा *बिवेरिया बेसियाना* 1.5 ली प्रति हैक्टेयर का छिड़काव सुबह अथवा शाम के समय करें।
2. लगभग 5 प्रतिशत प्रकोप होने पर रासायनिक कीटनाशक के रूप में फ्लूबेंन्डामाइट 20 डब्ल्यू डी जी 250 ग्राम प्रति हैक्टेयर या स्पाइनोसेड 45 ईसी, 200–250 ग्राम प्रति हैक्टेयर या इथीफेनप्रॉक्स 10 ईसी 1 लीटर प्रति हैक्टेयर या एमामेक्टिन बेंजोएट 5 एस.जी. का 200 ग्राम प्रति हैक्टेयर में कीट प्रकोप की स्थिति अनुसार 15–20 दिन के अंतराल पर 2 से 3 बार छिड़काव करें अथवा थायोडिकार्ब 7 किग्रा प्रति हैक्टेयर की दर से उपयोग करें। प्रथम छिड़काव बुआई के बाद 15 दिन की अवधि में अवश्य करें।

नोटः दानेदार कीटनाशकों का उपयोग पौधे की पोंगली में (5 से 7 दाने प्रति पोंगली) करें।

वयस्क मादा के अंडे

वयस्क फॉल आर्मी वर्म कीट का लार्वा

वयस्क फॉल आर्मी वर्म कीट का प्यूपा

वयस्क फॉल आर्मी वर्म कीट की मादा मोथ (तितली)

मक्का की फसल मे फॉल आर्मी वर्म कीट का प्रकोप

"देवनागरी ध्वनिशास्त्र की दृष्टि से अत्यंत वैज्ञानिक लिपि है।"

—रविशंकर शुक्ल

स्वास्थ्य सुरक्षा एवं पोषण के लिए गृहवाटिका

योगिता घरडे[1] एवं प्रमोद कुमार गुप्ता[2]

1. भा.कृ.अनु.प.– खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)
2. जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

गृहवाटिका में सब्जी उत्पादन का प्रचलन प्राचीन काल से चला आ रहा है, जिसमें सब्जी उत्पादन का मुख्य उद्देश्य पूरे परिवार को सालभर ताजी शाक–सब्जी मिलती रहे और साथ में फल–फूल को भी लगाया जा सकता है। सब्जी और फल के बिना पोषण आहार की कल्पना नहीं की जा सकती। अनुसंधानों से यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि दैनिक भोजन में सब्जियों एवं फलों के सेवन से शरीर को विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ, आँत, श्वसन तंत्र एवं कैंसर से बचाया जा सकता है। सब्जियाँ हमारे भोजन को स्वादिष्ट, पौष्टिक और संतुलित बनाने में सहायक है। सब्जियों और फलों से हमारे शरीर को भरपूर मात्रा में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, खनिज लवण, आवश्यक अमीनो एसिड व विटामिन मिलते हैं।

इसके अतिरिक्त इनमें फ्लौओनायड्स फीनोलिक अम्ल, ग्लूकोसाइनोलेट, कैरोटीनायड्स प्रचुरता में पाये जाते हैं। इन तत्वों का एण्टीआक्सीडेंट गुण होने के कारण इनके सेवन से विविध प्रकार की बीमारियों का खतरा कम हो जाता है। सब्जियों एवं फलों में कीड़ों तथा बीमारियों की रोकथाम के लिए कीटनाशी रासायनों का प्रयोग किया जाता है, जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकता है। ऐसी स्थिति में अपने घर के आसपास सब्जियों एवं फलों की गृहवाटिका बनाकर शहरी एवं ग्रामीण समुदाय अपनी पोषण सुरक्षा सुनिश्चित कर सकते हैं।

भोजन को पौष्टिक एवं संतुलित करने के लिए भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद् की संस्तुति के अनुसार एक व्यक्ति को प्रतिदिन 300 ग्राम सब्जियाँ एवं 110 ग्राम फल खाने की सिफारिश की गई है। सब्जियों में 50 ग्राम जड़ एवं कंद वाली सब्जियाँ, 50 ग्राम पत्ती वाली सब्जियाँ एवं 200 ग्राम अन्य सब्जियाँ निर्धारित की गई है। प्राप्त आंकड़ों के अनुसार अभी भी प्रति व्यक्ति सब्जियों एवं फलों का उपयोग उपरोक्त सिफारिश की गई मात्रा से कम है। देश में कुपोषण की समस्या विशेषकर महिलाओं एवं बच्चों में ज्यादा है, इसके आधार पर यदि परिवार में 5 सदस्य है तो साल भर के लिए 548 कि.ग्रा. सब्जियों की आवश्यकता होगी इस आवश्यक मात्रा की पूर्ति के लिए 250 वर्ग मीटर क्षेत्रफल की आवश्यकता होती है। इस प्रकार जगह की उपलब्धता एवं परिवार के सदस्यों की संख्या के आधार पर गृहवाटिका का क्षेत्रफल बढ़ाया जा सकता है। एक आदर्श गृहवाटिका में सब्जियों के अलावा मौसमी फलों के लिए 25 वर्ग मीटर स्थान रखा जाता है जिससे वर्षभर सब्जियों के अलावा ताजे फलों की उपलब्धता बनी रहें।

परिवार की आवश्यकतानुसार ताजी व स्वादिष्ट शाक सब्जियाँ साल भर उपलब्ध रहती हैं। इसके लिए घर के चारों तरफ खाली पड़ी जमीन का उपयोग आसानी से किया जा सकता है। घर में उपयोग हो चुके जल को पौधों की सिंचाई में सदुपयोग कर साथ ही घर के कूड़े कचरे से कम्पोस्ट खाद बनाकर वाटिका में उपयोग किया जा सकता है। कोविड–19 के चलते सब्जी क्रय के लिये बाजार में जाना नहीं पड़ेगा और घर पर ही ताजी सब्जी प्राप्त हो जायेगी जो उत्तम गुणवत्ता युक्त होगी। खुद की गृह वाटिका में जहरीले कीटनाशक युक्त पदार्थों से मुक्त सब्जियाँ होंगी, साथ ही सब्जियों में नकली रंग, रसायनों एवं संक्रामक रोगों के जीवाणु की उपस्थिति का भय नहीं रहेगा।

घर में युवाओं को कार्य करने की प्रेरणा मिलती है। घर पर बेकार पड़े लकड़ी के डिब्बे, टिन, गमले, परछतो पर आसानी से उगायी जा सकती हैं, कीमती कृषि औजारों की आवश्यकता नहीं होती। घर पर लगी सब्जियों से अलग ही अनुभव होता है जिसे मन भावक शौक के रूप में लगाया जा सकता है।

गृहवाटिका के लिए स्थान का चुनाव– ऐसे स्थान का चुनाव करना चाहिए जहाँ सिंचाई के लिए पर्याप्त जल उपलब्ध हो। गृहवाटिका को कम से कम 5–6 घण्टे सूर्य का प्रकाश आवश्यक है। सूर्य के प्रकाश से पौधों की वृद्धि तेजी से होती है और रोग तथा कीट का प्रकोप कम होता है। अधिकांशतः गृहवाटिका घर के पीछे बनायी जाती है गांवों में जहाँ बहुत सघन बस्ती है और एक मकान के समीप दूसरा मकान बना हुआ है वहाँ गृहवाटिका का निर्माण करना कठिन होता है। इसके लिए कृषि योग्य जमीन में आवश्यकतानुसार 250–300 वर्गमीटर जमीन में नुकीले तार की बाड़ बनाकर गृहवाटिका की स्थापना की जा सकती है। इससे घर के दूर भी जानवरों आदि के द्वारा बिना क्षति पहुंचाये गृहवाटिका बनायी जा सकती है।

गृहवाटिका के लिए सब्जियों का चुनाव (योजना)– गृहवाटिका लगाने से ताजी पौष्टिक एवं गुणवत्तायुक्त सब्जियाँ मिलने के साथ साथ भोजन पर होने वाले प्रतिदिन के व्यय पर औसतन 60–70 रूपये की बचत होती है अनुमानतः वर्ष में 18000 रूपये की बचत हो सकती है। गृहवाटिका से शारीरिक श्रम की पूर्ति होती है जिससे शारीरिक एवं मानसिक विकास होता है। सब्जियों का चयन परिवार के सदस्यों की पसंद के अनुसार अलग अलग हो सकता है। सब्जियों को गृहवाटिका में लगाते समय इस बात का ध्यान देना आवश्यक होता है कि सब्जियों की उपलब्धता वर्ष भर नियमित रूप से बनी रहे और फसल चक्र अपनाना भी अत्यन्त आवश्यक है। एक ही कुल की फसल को बार–बार एक ही क्यारी में लगाने से कीड़े एवं बीमारियों का प्रकोप ज्यादा होता है।

एक आदर्श गृहवाटिका की रूपरेखा

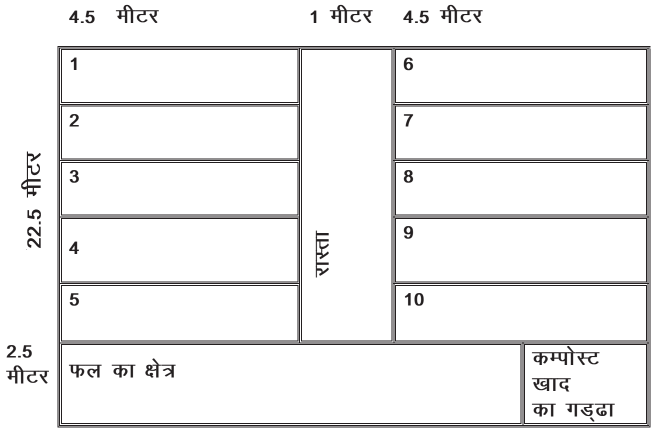

कुल क्षेत्रफल	– 250 वर्गमीटर (25 X 10 मीटर)
सब्जियों की कुल क्यारियाँ	– 10
एक क्यारी का क्षेत्रफल	– 20.25 वर्गमी. (4.5 X 4.5 वर्गमीटर)
कुल सब्जियों का क्षेत्रफल	– 10 X 20.25 = 202.5 वर्गमीटर
कुल फल का क्षेत्रफल	– 10X2.5 = 25 वर्गमीटर

रास्ता एवं मेढ़नाली के अन्तर्गत क्षेत्र– 22.5 वर्गमीटर

सारिणी 1 गृहवाटिका के लिए फसल क्रम

प्लाट नं.	फसल	माह
1	अगेती फूलगोभी	जुलाई–अक्टूबर
	गाजर	अक्टूबर–दिसम्बर
	प्याज	जनवरी–मई
2	लोबिया	जुलाई–सितम्बर
	पत्तागोभी	अक्टूबर–दिसम्बर
	प्याज	जनवरी–मई
3	फूलगोभी (मध्य)	अगस्त–नवम्बर
	सब्जी मटर	नवम्बर–जनवरी
	खीरा	फरवरी–अप्रैल
	चौलाई (आधा प्लाट)	मई–जुलाई
	करेला (आधा प्लाट)	मई–जुलाई
4	भिण्डी	जुलाई–सितम्बर
	टमाटर	अक्टूबर–मार्च
	खरबूजा	अप्रैल–जून
5	सूरन (जिमीकन्द)	अप्रैल–नवम्बर
	फूलगोभी पछेती (आधा प्लाट)	दिसम्बर–मार्च
	मूली (आधा प्लाट)	दिसम्बर–मार्च
	चुकन्दर	फरवरी–मार्च
6	टमाटर	जुलाई–नवम्बर
	बैंगन	नवम्बर–अप्रैल
	तरबूज	अप्रैल–जुलाई
7	मिर्च	जुलाई–दिसम्बर
	पत्तागोभी	दिसम्बर–मार्च
	भिण्डी	अप्रैल–जून
8	खीरा	जुलाई–सितम्बर
	आलू	अक्टूबर–जनवरी
	लोबिया	फरवरी–मई
9	बैंगन	जुलाई–दिसम्बर
	पत्तागोभी	दिसम्बर–मार्च
	खीरा	अप्रैल–जून
10	करेला	जुलाई–नवम्बर
	लौकी	जुलाई–नवम्बर
	मेथी	नवम्बर–मार्च

सारणी 2 गृहवाटिका के लिए सब्जियों की उपयुक्त किस्में

सब्जी	किस्में
टमाटर	काशी विशेष, लक्ष्मी 5005, पूसा उपहार, अनिवाश–2, शक्तिमान
बैंगन	पंत ऋतुराज, काशी संदेश, पूसा क्रांति , पूसा उत्तम, पूसा संकर – 6
मिर्च	पूसा ज्वाला, पंत सी–1, काशी अनमोल–2 एन.ए – 750
पत्तागोभी	क्विस्टो, पूसा मुक्ता, हरी रानी गोल, गोल्डेन एकर, पूसा अगेती
फूलगोभी	**अगेती** पूसा दीपाली, पूसा संकर कार्तिक **मध्य** पूसा संकर – 2, पूसा शरद **पछेती** स्नोबाल – 16, एनोवाल – 2
मूली	पूसा हिमानी, पूसा चेतकी, पूसा देशी, काशी हंस, काशी श्वेता, पूसा मृदुला
चौलाई	पूसा लाल चौलाई, पूसा कीर्ति
चुकन्दर	डेट्राइट डार्क रेड, क्रिमसन ग्लोब
मेथी	पूसा अर्ली बंचिग, पूसा कसूरी
गाजर	पूसा केसर, सेलेक्शन–1 , पूसा रूधिरा, पूसा नयन ज्योति
लोबिया	काशी कंचन, पूसा सुकोमल, काशी निधि, पूसा कोमल
सब्जी मटर	पूसा प्रगति, पन्त सब्जी मटर –3, काशी नन्दिनी, काशी उदय, आजाद मटर – 1

प्याज	**खरीफ** - एग्री फाऊण्ड डार्क रेड, पूसा रेड **रबी** - एग्री फाऊण्ड लाइट रेड, पूसा माधवी
करेला	पूसा दो मौसमी, कल्यानपुर बारहमासी, पूसा विशेष, पूसा हाइब्रिड – 1
खीरा	स्वर्ण अगेती, पूसा संयोग, पूसा उदय
जिमीकन्द	गजेन्द्रा
भिण्डी	अर्का अनामिका, काशी प्रगति, काशी क्रांति, काशी सातधारी, पूसा ए – 4, वर्षा उपहार
पालक	आलग्रीन, पूसा ज्योति, पूसा हरित, पूसा भारती
लौकी	नरेन्द्र रश्मि, काशी गंगा, काशी बहार, पूसा नवीन, पूसा सन्देश
आलू	कुफरी अलंकार, कुफरी चन्द्रमुखी, कुफरी ज्योति

सारणी 3 गृहवाटिका में लगाने के लिए शीघ्र बढ़ने वाले फल वृक्ष एवं उपयुक्त किस्में

फल	किस्में
आम	आम्रपाली
पपीता	पूसा नन्हा, सूर्या, कुर्ग हनीड्यू, पूसा डिलीसीयस
अमरूद	इलाहाबादी सफेदा, ललित, सरदार
नींबू	कागजी नींबू, विक्रम
अनार	भगवा
सहजन	पी.के.एम. – 1, पी.के.एम. – 2
केली	हरी छाल

गृहवाटिका में शस्य प्रबंधन – गृहवाटिका में लगायी जाने वाली सब्जियों में से कुछ सीधे बीज से उगायी जाती है साधारणतः जड़वाली सब्जियाँ गाजर, मूली, खीरा, शलजम, चुकन्दर, कद्दूवर्गीय सब्जियों को सीधे खेत में बीज द्वारा उगाया जाता है। टमाटर, मिर्च ,बैंगन, गोभीवर्गीय सब्जियों को रोपण के द्वारा लगाया जाता है। सब्जियों को लगाने की दूरी, गहराई एवं बीज दर को सारिणी 4 में दिया गया है।

सारणी 4 सब्जियों के बुवाई/रोपण चार्ट–

सब्जियाँ	पंक्ति से पंक्ति की दूरी (से.मी.)	पौधों से पौधे की दूरी (से.मी.)	बुवाई/रोपण की गहराई (से.मी.)	बीज दर (प्रति 10 वर्ग मीटर)
भिण्डी	60	30	2.0–3.0	15 ग्राम
फ्रेन्च बीन	60	15	2.5–3.5	40 ग्राम
लोबिया	45	15	2.5–3.0	30 ग्राम
मटर	20	5	2.0–3.0	150 ग्राम
पत्तागोभी	45	45	रोपण	0.4 ग्राम
गाजर	45	30	1.0–2.0	4 ग्राम
फूलगोभी	60	45	रोपण	0.4 ग्राम
खीरा	150	50	1.0–2.0	2 ग्राम
बैंगन	90	60	रोपण	0.4 ग्राम
प्याज	45	5.0	रोपण	8 ग्राम
मिर्च	60	30	रोपण	0.8 ग्राम
कुम्हड़ा	150	50	3.0–4.0	4 ग्राम
मूली	30	2.5–3.5	1.0–2.0	8 ग्राम
पालक	30	5–10	1.0–2.0	20 ग्राम
टमाटर	60	30	रोपण	0.4 ग्राम

गृहवाटिका के लिए खाद एवं उर्वरक की आपूर्ति – गृहवाटिका में सब्जियों एवं फल उगाने के लिए कम्पोस्ट, गोबर की खाद एवं केंचुआ खाद उत्तम मानी जाती है। गृहवाटिका में पीछे की ओर एक घनमीटर आकार का गड्ढ़ा तैयार कर ले तो लगभग 50–60 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद वर्ष में 2–3 बार मिल सकती है। इसमें रसोई घर से निकलने वाले सब्जियों के छीलन, चाय की पत्ती तथा घर के अन्य जैव विघटनशील वस्तुओं को डालकर सड़ाया जा सकता है। विभिन्न प्रकार की खलियाँ जैसे नीम की खली, अरण्ड की खली, महुआ की खली या मूंगफली की खली आदि का भी प्रयोग किया जाता है।

सिंचाई एवं अन्तः शस्य क्रियाएं – गृहवाटिका में सिंचाई के लिए पर्याप्त पानी की व्यवस्था आवश्यक होती है। सब्जियों की क्यारियों में पर्याप्त नमी रहना आवश्यक है। गर्मी के मौसम में 7–8 दिन के अन्तर से एवं अन्य मौसम में आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहना आवश्यक होता है। क्यारियों से समय–समय पर खरपतवार निकालते रहना चाहिए एवं गुड़ाई करते रहना चाहिए जिससे जड़ों का विकास अच्छा होता है एवं कीट व बीमारियाँ कम लगती हैं।

गृहवाटिका में रोग एवं कीट प्रबंधन – पिछले कुछ वर्षों से सब्जियों की खेती में अन्धाधुन्ध कीटनाशकों का प्रयोग होने से जैविक सन्तुलन प्रभावित हुआ है। इनके अधिक मात्रा में प्रयोग से कीट एवं रोगों के प्रकोप में कोई कमी नही आयी बल्कि कीटों एवं रोग जनकों की प्रतिरोधक क्षमता में बढ़ोत्तरी अवश्य देखी जा रही है। दूसरी ओर, जैविक सन्तुलन बिगड़ने से फल–सब्जियों की गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। जैविक उपचार प्रभाव में धीमे, सस्ते, सुरक्षित एवं पर्यावरण रक्षक माने जाते हैं। गृहवाटिका स्तर पर परम्परागत उपलब्ध जैव पदार्थों एवं प्राकृतिक साधनों द्वारा रोग एवं कीट प्रबंधन अच्छा रहता है।

1. **नीम बीज :** नीम के बीजों में एजाडिरेक्टिन, नोम्बीडीन एवं मेलाइट्राल आदि तत्व पाये जाते हैं। ये कीटनाशी, फफूंदनाशी तथा विषाणुनाशी है। इसमें उर्वरकीय गुण भी उपलब्ध है। नीम की खली के प्रयोग से भूमिगत कीडे एवं फफूंद नष्ट हो जाती है। साथ ही ये दीमक एवं सफेद कीड़ों की रोकथाम भी करते हैं। 2 कि.ग्रा. नीम के बीजों को पीसकर 7 दिन के लिये 5 लीटर पानी में रखें तत्पश्चात् 100 लीटर पानी में घोल को मिलाकर 1000 वर्ग मीटर क्षेत्र में छिड़काव कर सकते हैं।
2. **नीम तेल :** नीम के तेल को कीटनाशक के रूप में प्रयोग करने से कीटों के जीवन चक्र में बाधा आती है। फलस्वरूप उनका जीवन चक्र रुक जाता है जिसके कारण कीटों की वृद्धि नहीं हो पाती है। इससे जैसिड, एफिड आदि कीट नियंत्रित हो जाते हैं।
3. **नीम की पत्तियाँ :** नीम की पत्तियों को पानी में उबालकर तैयार घोल को पौधों पर छिड़कने से एफिड (माहू), हेयरी कैटर पिलर, पत्तीभक्षक कीट सूंडिया नियंत्रित होती है।
4. **मिट्टी का तेल एवं तारपीन के तेल का प्रयोग :** पेड़-पौधों में सुरंग बनाने वाले कीटों एवं तने में सुराख करने वाले कीटों को मारने के लिए सुराखों में सिरिंज से ये तेल डालकर गीली मिट्टी से सुराखों को बन्द कर देना चाहिए।
5. **ट्राईकोडर्मा का प्रयोग :** यह एक जैविक फँफूदनाशक है। ट्राइकोडर्मा का प्रयोग रोपण या बीज बुवाई के पूर्व खेत में 5-6 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर के मान से करते हैं। ट्राईकोडर्मा के प्रयोग से फँफूदजनित बीमारियों की रोकथाम होती है।

"सभ्य संसार के सारे विषय हमारे साहित्य में आ जाने की ओर हमारी सतत् चेष्टा रहनी चाहिए।

—श्रीधर पाठक

हाथ में अपने भारत की शान,

हिंदी अपनाकर तुम बनो महान।

जैविक खेती का आर्थिक महत्व

संतोष कुमार, अखिलेश कुमार पटेल, एस.के. पारे, इति राठी एवं एकता खत्री

भा.कृ.अनु.प.–खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

भारतीय किसान परंपरागत रूप से खेती में स्थानीय तकनीकों व संसाधनों का उपयोग करते थे। भारत में प्राचीन कृषि पद्धति रही है, जिसे वैदिक कृषि भी कहा गया है। कृषक प्राकृतिक नियमों का पालन करते हुए वैज्ञानिक तथ्य को पूर्णरूपेण समझते हुए कृषि कार्य में संलग्न थे और इन्हें इच्छित सुफलदायी परिणाम प्राप्त होता था। जैविक कृषि के अंतर्गत मिट्टी की गुणवत्ता बनाए रखते हुए मानव कल्याण के साथ पर्यावरण संतुलन स्थापित रहता था। यह खेत, खलिहान, श्रमिक एवं उपभोक्ताओं के लिए किसी भी प्रकार से हानिकर प्रभाव से रहित थे। लेकिन उपभोक्तावाद एवं अधिक कृषि उत्पादन के लिए संसाधनों का अनियंत्रित प्रयोग ने किसानों का रुख जैविक कृषि से रासायनिक संसाधनों पर आधारित कृषि की ओर मोड़ दिया। जिससे किसान द्वारा, संकर बीज किस्मों, रासायनिक उर्वरकों जैसे यूरिया, डीएपी, रासायनिक कीटाणुनाशक, फफूंदनाशक तथा खरपतवार नाशक शाकनाशी दवा का अत्यधिक उपयोग करने से मिट्टी की स्वाभाविक उर्वरा शक्ति में कमी हुई तथा साथ ही साथ बड़ी मात्रा में कृषि योग्य भूमि बंजर हो गई। पिछले कई वर्षो से किसान घाटे में जा रहा है क्योंकि अत्यधिक रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों के उपयोग से कृषि लागत में बढ़ोत्तरी होती जा रही है और उत्पादकता की कमी के साथ उत्पादन की गुणवत्ता में कमी देखी जा रही है। फलस्वरूप दुष्प्रभाव जैसे– मृदा, जल तथा पर्यावरण प्रदूषण आदि एवं मृदा को स्वस्थ बनाए रखने, लक्षित उत्पादन प्राप्त करने के लिए, उत्पादन लागत कम करने हेतु व पर्यावरण और स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से यह आवश्यक है कि जैविक खेती ही एक उत्तम विकल्प है।

जैविक खेती

जैविक कृषि वह सदाबहार कृषि पद्धति है, जो यथार्थ में पर्यावरण की शुद्धता को यथावत् स्थापित रखती है एवं मिट्टी की उर्वरता, उत्पादकता एवं जल धारण क्षमता प्राकृतिक रूप से बढ़ाती है। इसमें रसायनों का उपयोग बिल्कुल नहीं होता और कम लागत में गुणवत्तापूर्ण उत्पादन होता है। इस पद्धति में रासायनिक उर्वरकों, रासायनिक कीटनाशकों तथा खरपतवारनाशकों आदि के स्थान पर गोबर की खाद, कम्पोस्ट, हरी खाद, बैक्टीरिया कल्चर, जैविक खाद, खेतों के अपशिष्ट, पशु अपशिष्ट खाद आदि जैसे प्राकृतिक संसाधन का उपयोग करके किया जाता है, ताकि मिट्टी, पानी और हवा को प्रदूषित किये बगैर लम्बी अवधि तक प्राकृतिक सन्तुलन को बनाये रखा जा सके। इसमें खेती के लिये किसी स्थान विशेष से सम्बन्धित फसल–वैज्ञानिक, जैविक और यांत्रिक विधियों का उपयोग किया जाता है ताकि संसाधनों का पुनर्चक्रण हो सके और कृषि–पारिस्थितिकीय तंत्र पर आधारित स्वास्थ्य को बढ़ावा दिया जा सके। यह मूल रूप से मिट्टी के स्वास्थ्य को बनाए रखने के साथ उसे अच्छा और उपजाऊ बनाने में भी मदद करती है। जैविक खेती में कम्पोस्ट खाद के अलावा नाडेप खाद, केंचुआ खाद, नीम खली, एवं फसल अवशेषों को शामिल करते हैं। इसमे फसल परिक्रमण, मिश्रित फसल और जैविक कीट एवं व्याधि नियंत्रण आदि जैसे कुछ प्रक्रियाओं का पालन किया जाता है। जैविक खाद के उपयोग से न केवल मृदा की उर्वरता बढ़ती है बल्कि उसमें मृदा की जल धारण क्षमता बढ़ने से काफी हद तक सूखे की समस्या से भी निजात मिलती है। इसके साथ ही जैविक कीटनाशक से मित्र कीट भी संरक्षित होते हैं। जैविक कृषि से उत्पन्न फसल में खनिज तत्वों की मात्रा अधिक होती है, ये मानव स्वास्थ्य के लिए बहुत ही उपयोगी तथा रोग प्रतिरोधी क्षमता बढ़ाने वाली होती है ।

जैविक खेती के मुख्य आधार

1. **मिश्रित फसलः** मिश्रित फसल लेने से कम क्षेत्रफल में हम अधिक उपज प्राप्त कर लेते हैं। मिट्टी में मौजूद विभिन्न तत्वों का आनुपातिक उपयोग विभिन्न फसलों में करते हैं। फलतः मिट्टी की प्राकृतिक गुणवत्ता बरकरार रहती है। फसली पौधे जितनी मात्रा में कार्बनिक या अकार्बनिक तत्व ग्रहण करते हैं उसे बायोजियोकेमिकल्स चक्र के अंतर्गत लौटा देते हैं। साथ ही खरपतवारों को उगने का मौका नहीं मिल पाता।

2. **फसल चक्रः** फसल चक्र का अनुपालन करने से पौधों को भी उचित पोषण प्राप्त होता है, साथ ही मिट्टी की उर्वरता बनी रहती है। खरपतवार भी कम उग पाते हैं। पादप रोगों को भी फैलाव का मौका नहीं मिलता। कीटों की संख्या में ह्रास देखा गया है। खेती से प्राप्त अतिरिक्त उत्पाद को पुनः सड़ाकर उसी मिट्टी में मिला देने से किसानों की उर्वरक, कीटनाशक, फफूंदनाशक तथा खरपतवारनाशक रसायन पर व्यय राशि के साथ–साथ श्रम–शक्ति की भी बचत होती है। फलस्वरूप रासायनिक संसाधनों का आयात करने में व्यय होने वाली विदेशी मुद्रा की बचत होती है।

3. **जैव उर्वरक का उपयोगः** कृषि उत्पाद के अवशिष्ट पदार्थ (जैसे– पुआल, भूसी) बायोगैस संयंत्र का अवशिष्ट

एवं केंचुआ खाद आदि का उपयोग करके मिट्टी में मौजूद विभिन्न तत्वों की आनुपातिक मात्रा सामान्य बनाए रख सकते हैं। खेत–खलिहानों के उत्पाद को ही उर्वरक, कीटाणुनाशक या खरपतवारनाशक या फफूंदीनाशक के रूप में इस्तेमाल करके आर्थिक बोझ को कम करते हुए प्राकृतिक संतुलन स्थापित कर सकते हैं।

जैविक कृषि का उद्देश्य

जैविक विधि से खेती करने का मुख्य उद्देश्य यह है कि रासायनिक उर्वरकों का उपयोग न हो तथा इसके स्थान पर जैविक उत्पाद का उपयोग अधिक से अधिक हो, लेकिन वर्तमान में बढ़ती जनसंख्या को देखते हुए तुरंत उत्पादन में कमी न हो अतः इसे (रासायनिक उर्वरकों के उपयोग को) वर्ष प्रति वर्ष चरणों में कम करते हुए जैविक उत्पादों को ही प्रोत्साहित करना है।

1. कार्बनिक खादों का उपयोग ।
2. मिट्टी और पानी जैसे संसाधनों का संरक्षण।
3. फसल अवशेषों का उचित उपयोग
4. जीवाणु खादों का प्रयोग ।
5. अधिक टिकाऊ और उत्पादक कृषि प्रणाली का विकास करना।
6. फसल चक्र में दलहनी फसलों को अपनाना ।
7. खेती में जीवाश्म ईंधन से प्राप्त ऊर्जा का उपयोग कम करना।
8. जैव विविधता और पारिस्थितिकीय प्रणाली सम्बन्धी सेवाओं का संरक्षण और संवर्धन।
9. ग्रामीण आजीविका को लाभप्रद जैविक खेती के जरिए बढ़ावा देना।
10. पौष्टिक आहार का उत्पादन।
11. प्राकृतिक सन्तुलन को बरकरार रखना।
12. फसल उत्पादन के साथ–साथ पशुधन का व्यवस्थित विकास करना।
13. उत्पादन लागत को कम करना ।
14. प्रदूषण की रोकथाम।

जैविक खेती के घटक

(क) फसल और मृदा प्रबन्धनः इसका उद्देश्य मृदा की उर्वरता एवं उत्पादकता को दीर्घकालीन बनाए रखने के लिये उसमें जैविक पदार्थों के स्तर में वृद्धि करना है। इस घटक के तहत फसल की विभिन्न किस्मों में से चयन, समय पर बुआई करने, फसल चक्र अपनाकर बुआई करने, हरी खाद के उपयोग और दलहनी फसलों को साथ बोना चाहिए ।

(ख) पौष्टिक तत्वों का प्रबन्धनः इसमें जैविक पदार्थों जैसे पशुओं के गोबर की खाद के उपयोग, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, फसल अपशिष्ट के उपयोग, हरी खाद और जमीन की उत्पादकता बढ़ाने के लिये कवर क्रॉप को उगाया जाता है। पोषक तत्वों के पुनर्चक्रण के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए फसलों की अदला–बदली करके बुआई और जैव उर्वरकों को भी शामिल किया जाता है।

(ग) पादप संरक्षणः कीड़े–मकोड़ों, बीमारी फैलाने वाले पैथोजन और अन्य महामारियों को नियंत्रित करने के लिये मुख्य रूप से फसलों की अदला–बदली करके बुआई, प्राकृतिक कीट नियंत्रकों, स्थानीय किस्मों, विविधता और जमीन की जोत का सहारा लिया जाता है। इसके बाद वानस्पतिक, तापीय और रासायनिक विकल्पों का इस्तेमाल सीमित स्थितियों में अन्तिम उपाय के तौर पर किया जाता है।

(घ) पशुधन प्रबन्धनः मवेशियों को पालने के लिये उनके विकास सम्बन्धी अनुकूलन, व्यवहार सम्बन्धी आवश्यकताओं और उनके कल्याण सम्बन्धी मुद्दों (जैसे पोषाहार, आश्रय, प्रजनन आदि) पर पूरा ध्यान दिया जाता है।

(ङ) मृदा और जल–संरक्षणः वर्षा के पानी से मृदा अपर्दन एवं कटाव होता है। अतः इसे कंटूर खेती, कंटूर बाँधों के निर्माण सीढ़ीदार खेती, पानी के बहाव के मार्ग में घास उगाने जैसे उपायों से रोका जा सकता है। शुष्क इलाकों में क्यारियों के बीच बारिश के पानी को जमा करके, रेज्ड् बेड और फरो प्रणाली, भूखण्डों के बीच वर्षा जलसंचय और स्कूपिंग जैसे उपाय अपनाकर पानी का संरक्षण किया जा सकता है।

जैविक खेती से लाभः जैविक खेती पर्यावरण एवं किसान के लिए बहुत ही लाभदायक है। जैविक खेती से किसानो को कम लागत में उच्च गुणवत्ता युक्त पूर्ण फसल प्राप्त होती है। इसके अन्य लाभ निम्नलिखित हैं–

1. रासायनिक उर्वरकों के उपयोग से भूमि बंजरपन की ओर बढ़ रही है। इनके उपयोग से जमीन के अंदर फसल की उत्पादकता बढ़ने वाले जीवाणु नष्ट हो जाते हैं, जिस कारण फसल की उत्पादकता कम हो जाती। जैविक खेती से भूमि की गुणवत्ता में सुधार होता है एवं जैविक खादों से उसमें जिन तत्वों की कमी होती है वह पूर्ण हो जाती है साथ ही साथ मृदा का जैविक स्तर बढ़ता है एवं भूमि की गुणवत्ता एवं उत्पादकता में अभूतपूर्व वृद्धि हो सकती है।

2. रासायनिक उर्वरक के मुकाबले जैविक खाद सस्ते, टिकाऊ बनाने में आसान होते हैं। इनके प्रयोग से मृदा में ह्यूमस की बढ़ोतरी होती है व मृदा की भौतिक दशा में भी सुधार होता हैं।
3. पौध वृद्धि के लिए आवश्यक पोषक तत्वों जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश तथा काफी मात्रा में सूक्ष्म पोषक तत्वों की पूर्ति जैविक खादों के प्रयोग से ही हो जाती है।
4. जैविक खेती से भूमि की जल धारण क्षमता में वृद्धि होती है।
5. जैविक खेती में सिंचाई की लागत कम आती है, क्योंकि जैविक खाद जमीं में लम्बे समय तक नमी बनाये रखते हैं जिससे सिंचाई की आवश्यकता रासायनिक खेती की अपेक्षा कम पड़ती है।
6. जैविक खेती से प्रदूषण में कमी आती है तथा जैविक खादों एवं कीट नाशकों के प्रयोग से वातावरण शुद्ध होता है।
7. स्वास्थ्य की दृष्टि से जैविक उत्पाद सर्वश्रेष्ठ होते हैं एवं इनके प्रयोग से कई प्रकार के रोगों से बचा जा सकता है।
8. कीटों, बीमारियों तथा खरपतवारों का नियंत्रण काफी हद तक फसल चक्र, कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं, प्रतिरोध किस्मों और जैव उत्पादों द्वारा ही कर लिया जाता है।
9. इन खादों के प्रयोग से पोषक तत्व पौधों को काफी समय तक मिलते हैं। यह खादें अपना अवशिष्ट गुण मृदा में छोड़ती हैं। अतः एक फसल में इन खादों के प्रयोग से दूसरी फसल को लाभ मिलता है। इससे मृदा उर्वरता का संतुलन ठीक रहता है।
10. जैविक खाद के प्रयोग से अंकुरण शीघ्र होता है पौधे की जड़ों का विकास होता है तथा कल्लों की संख्या में वृद्धि होती है।

जैविक खेती के आर्थिक लाभ

1. रासायनिक उर्वरक एवं विदेश मुद्रा की बचत।
2. किसान की खेती की लागत रासायनिक खेती की तुलना में करीब 80 प्रतिशत कम हो जाती है। इन दिनों रासायनिक खादों की कीमतें आसमान छू रही है, जबकि जैविक खाद बहुत ही सस्ते दामों में तैयार हो जाता है।
3. रासायनिक उर्वरक एवं रासायनिक कीट नाशकों का प्रयोग बंद करने से करीब 25 प्रतिशत तक फसल की उत्पादकता एवं प्रति एकड़ औसत लाभ प्राप्त होता है।
4. जैविक खेती से उत्पादों की गुणवत्ता रासायनिक खेती की तुलना में कई गुना बेहतर होती है एवं ऊँचे दामों में बाजार में बिकते हैं।
5. जैविक उत्पादों की कीमतें रासायनिक उत्पादों से कई गुना ज्यादा होती हैं जिससे किसानों की औसत आय में वृद्धि होती है।
6. किसानों को आर्थिक लाभ होता है।
7. जैविक खेती से फसलों की उत्पादकता, रासायनिक खेती की तुलना में करीब 07 से 45 प्रतिशत तक बढ़ जाती है।

निम्न आंकड़े इस प्रकार हैं –

फसल	जैविक खेती से उत्पादकता	रासायनिक खेती से उत्पादकता	जैविक खेती की उत्पादकता का प्रतिशत
चावल (क्विंटल)	88	78	12.82
गेहूँ (क्विंटल)	45	35	28.57
गन्ना (टन)	942	817	15.26
सोयाबीन (क्विंटल)	74	51	45.09
मूंगफली (क्विंटल)	18	14	28.57
फल एवं सब्जियां (क्विंटल)	15	14	7.14

निष्कर्षः

जैविक खेती तेजी से बढ़ता हुआ सेल है। जैविक खाद्य पदार्थ को लेकर लोगों में काफी जागरुकता बढ़ी है। अच्छे स्वास्थ्य का सीधा सम्बन्ध खान–पान से है। स्वस्थ रहने के लिये लोग अब तेजी से जैविक खाद्य पदार्थ अपना रहे हैं। आजकल जैविक खाद्य पदार्थों में मौसमी फल व सब्जियों की ज्यादा माँग रहती है। साथ ही चावल, गेहूँ, शहद, ग्रीन टी की माँग भी दिनोदिन बढ़ रही है। जैविक खाद्य पदार्थों की कीमत सामान्य खाद्य पदार्थों की अपेक्षा 40 से 50 प्रतिशत तक ज्यादा रहती है। सामान्यतः जैविक खाद्य पदार्थों की पैदावार सामान्य रूप से उगाए गए खाद्य पदार्थों की अपेक्षा कम है जबकि माँग अधिक है। जैविक खाद्य पदार्थ अपने उत्कृष्ट पौष्टिक गुणों के कारण अन्तरराष्ट्रीय बाजार में बहुत लोकप्रिय हैं। जैविक खेती में फसलों का उचित प्रकार से प्रबन्धन किया जाये तो अच्छी आमदनी प्राप्त हो सकती है। साथ ही जैविक उत्पादों के निर्यात को बढ़ाकर किसानों की आय को बढ़ाया जा सकता है।

हाइड्रोपोनिक्स: खाद्य सुरक्षा की दिशा में एक कदम

विकास वर्मा, मालापति सुभाष एवं संजय
जवाहरलाल नेहरु कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

परिचय

पानी, ऊर्जा और खाद्य प्रणाली एक श्रृंखला के रूप में जुड़े हुए हैं। मूल अर्थों में, ऊर्जा का एक जूल उत्पादित होता है, वितरित पानी की एक बूंद में इनपुट होता है, जो भोजन की एक कैलोरी बढ़ता है। इसी तरह, ऊर्जा के एकल जूल में पानी के आदानों की एक बूंद के लिए आवश्यक अनाज की एक कैलोरी की आवश्यकता होती है। इसलिए, एक प्रणाली पर कार्रवाई दूसरों को प्रभावित करती है।

यह जटिलता इस तथ्य से जटिल है कि समय के साथ जलवायु की स्थिति बिगड़ रही है और वैश्विक आबादी में एक महत्वपूर्ण वृद्धि एक प्रमुख कारक है। शहरीकरण और औद्योगिकीकरण में लगातार वृद्धि से भविष्य में अधिक पानी, ऊर्जा और खाद्य संसाधनों की आवश्यकता होगी (किनी, ए . 2019)।

कहा जाता है कि भारत के पास विश्व के नवीकरणीय जल संसाधनों का केवल 4 प्रतिशत है, लेकिन दुनिया की आबादी का लगभग 18 प्रतिशत हिस्सा है और बढ़ती आबादी के लिए भोजन की मांग को पूरा करने के लिए जहां, कृषि योग्य भूमि की उपलब्धता कम हो रही है। सिंचाई के उद्देश्य से शहरीकरण और वनों की कटाई और पानी दिन–प्रतिदिन कम हो रहा है, इस तरह की चुनौतियों को दूर करने के लिए हाइड्रोपोनिक्स जैसी परंपरा खेती के लिए एक विकल्प होना चाहिए।

हाइड्रोपोनिक्स कृषि की एक प्रणाली है जो पौधे के पोषण के लिए मिट्टी के बजाय पोषक तत्वों से भरे पानी का उपयोग करती है (ब्रिजवाड, 2003)। क्योंकि इसे प्रभावी होने के लिए प्राकृतिक वर्षा या उपजाऊ भूमि की आवश्यकता नहीं होती है, यह उन लोगों को प्रस्तुत करता है जो अपने लिए और लाभ के लिए भोजन उगाने के साधन के साथ शुष्क क्षेत्रों में रह रहे हैं। पोषक तत्वों की पानी की आपूर्ति का फिर से उपयोग प्रक्रिया–प्रेरित यूट्रोफिकेशन (अत्यधिक संयंत्र पोषक तत्वों के कारण अत्यधिक विकास) और भूमि और पानी के सामान्य प्रदूषण की संभावना को कम करता है, क्योंकि मौसम की स्वतंत्र सुविधाओं में अपवाह चिंता का विषय नहीं है।

एरोपोनिक और हाइड्रोपोनिक प्रणालियों को कीटनाशकों की आवश्यकता नहीं होती है, पारंपरिक कृषि प्रणालियों की तुलना में कम पानी और स्थान की आवश्यकता होती है, और अंतरिक्ष उपयोग (ऊर्ध्वाधर खेती) (बढ़ती पावर, 2011) मार्गिन्सन, 2010) को सीमित करने के लिए (यदि एलईडी प्रकाश व्यवस्था के साथ संगठन) तैयार किया जा सकता है। । यह उन्हें शहरों में उपयोग के लिए इष्टतम बनाता है, जहां अंतरिक्ष विशेष रूप से सीमित है और आबादी उच्च–आत्मनिर्भर शहर आधारित खाद्य प्रणालियों का मतलब है दूर के खेतों पर कम तनाव, निवास स्थान की घुसपैठ, कम भोजन मील और कम कार्बन उत्सर्जन।

यह कैसे काम करता है?

पारंपरिक कृषि में, मिट्टी एक पौधे की जड़ों का समर्थन करती है – जो इसे सीधा रहने में मदद करती है – और इसे उन पोषक तत्वों के साथ प्रदान करती है जिन्हें इसे विकसित करने की आवश्यकता होती है। हाइड्रोपोनिक्स में, पौधों को कृत्रिम रूप से समर्थित किया जाता है, और आयनिक यौगिकों का एक समाधान इसके बजाय पोषक तत्व प्रदान करता है।

इसके पीछे की सोच सरल है। पौधों की वृद्धि अक्सर पर्यावरणीय कारकों द्वारा सीमित होती है। एक नियंत्रित वातावरण में पौधे की जड़ों तक सीधे पोषक तत्व समाधान लागू करके, एक किसान यह सुनिश्चित कर सकता है कि संयंत्र में हमेशा पानी और पोषक तत्वों की एक इष्टतम आपूर्ति हो। यह पोषण क्षमता पौधे को अधिक उत्पादक बनाती है।

समाधान कई तरीकों से दिया जा सकता है। एक पौधा हो सकता है:

एक अक्रिय पदार्थ (जैसे कि ज्वालामुखी का ग्लास पर्लाइट या रॉक वूल) में रखा जाता है और इसकी जड़ें समय–समय पर घोल से भर जाती हैं।

- एक अक्रिय पदार्थ में रखा जाता है और एक समाधान ड्रिपर द्वारा बारिश होती है।
- हवा में अपनी जड़ों के साथ निलंबित, इन के साथ फिर समाधान धुंध के साथ छिड़काव किया।
- थोड़ा झुका हुआ फिल्म पर रखा गया है जो इसकी जड़ों पर समाधान करने की अनुमति देता है

इन सभी प्रणालियों को एक तरह से या किसी अन्य तरीके से यंत्रीकृत किया जाता है, आमतौर पर एक पंप या मिस्टर का उपयोग करके एक अलग स्टोर से समाधान देने के लिए यह सुनिश्चित करने के लिए भी समाधान आमतौर पर वातित किया जाता है कि जड़ों को पर्याप्त ऑक्सीजन की आपूर्ति की

जाती है। खनिज अवशोषण के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है, और यह श्वसन द्वारा संचालित होता है।

पारंपरिक कृषि प्रथाओं की तुलना में अधिक उपज

एफएओ के अनुसार, बढ़ती आबादी के कारण, 2050 से पहले खाद्य उत्पादन में 70 प्रतिशत की वृद्धि होने की उम्मीद है। दूसरी ओर, कृषि, प्राकृतिक भूमि और जल के प्राकृतिक पूर्वाग्रह कम हो गए हैं, जिससे दुनिया भर में तेजी से विकास हो रहा है। बढ़ती हुई जनसंख्या को खिलाने के लिए, मौजूदा कृषि योग्य भूमि में खाद्य फसलों की उत्पादकता को बढ़ाने की आवश्यकता है, और वैकल्पिक कृषि तकनीकों जैसे शहरी खेती को भी प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है।

हाइड्रोपोनिक सिस्टम या मृदा

कम कृषि किसान के संसाधनों की खपत को कम करते हैं, जिससे इस खेती की तकनीक को बड़ी संख्या में हितधारकों द्वारा अपनाया जा सकता है, जिसमें होम गार्डनर्स से लेकर पेशेवर उत्पादकों और सुपरमार्केट से लेकर रेस्तरां तक शामिल हैं। वैश्विक आबादी पर संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्टों के अनुसार, हाइड्रोपोनिक प्रणालियों में उगाए गए पौधों ने पारंपरिक कृषि प्रणाली की तुलना में 20 प्रतिशत –25 प्रतिशत अधिक उपज प्राप्त की है, जिसकी उत्पादकता 2–5 गुना अधिक है। इसके अलावा, नियंत्रित पर्यावरणीय परिस्थितियों के कारण, जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को इन प्रणालियों की मदद से संतुलित किया जा सकता है, जिससे वार्षिक फसल उत्पादन प्रभावित नहीं होता है। सी.ई.एच. तकनीक सीधे फसल की कटाई चक्र को प्रभावित करती हैय इसलिए, हाइड्रोपोनिक प्रणालियों के लिए, फसल की फसल चक्र पारंपरिक खेती तकनीकों की तुलना में कम है, जिससे वार्षिक उपज में वृद्धि होती है। इसके अलावा, चूंकि जलवायु परिवर्तन इस तरह की प्रणालियों पर कम से कम प्रभाव दिखाते हैं, इसलिए फसलों को पूरे वर्ष उत्पादित किया जा सकता है, जिससे फिर से उत्पादन बढ़ सकता है।

हाइड्रोपोनिक फसलें

सैद्धांतिक रूप से, किसी भी फसल को उगाने के लिए हाइड्रोपोनिक्स का उपयोग किया जा सकता है। हालांकि, तकनीक का उपयोग ज्यादातर ऐसे पौधों के साथ किया जाता है जो हाइड्रोपोनिक परिस्थितियों में कुशलता से बढ़ते हैं, जैसे सलाद साग, खीरे, मिर्च और जड़ी–बूटियां। आमतौर पर इसका इस्तेमाल टमाटर उगाने के लिए किया जाता है।

किसान टमाटर की किस्मों के साथ हाइड्रोपोनिक्स का उपयोग करने की प्रवृत्ति रखते हैं, जिनमें विशेष विशेषताएं होती हैं, जैसे कि बड़े फल देना और अनिश्चित काल तक बढ़ते रहना (जिसका अर्थ है कि वे लगातार बढ़ते हैं, बार–बार अपने तने के साथ फल का उत्पादन करते हैं)। पौधे अधिक समय तक जीवित रहते हैं और अधिक उपज को सहन करते हैं। दूसरी ओर, ऐसी फसलें जो आनुवांशिक रूप से हाइड्रोपोनिक्स के अनुकूल नहीं होती हैं, जैसे गेहूं से बच जाती हैं।

सब्जी उत्पादन के लिए हाइड्रोपोनिक खेती को प्रमुखता से अपनाया गया है

सब्जी उत्पादन में हाइड्रोपोनिक खेती को उच्च्य अपनाने के लिए प्रमुख कारक प्राप्त उपज है, जो पारंपरिक कृषि तकनीकों की तुलना में 10 गुना अधिक हो सकती है। चूंकि हाइड्रोपोनिक सेटअप में शामिल पूंजी की लागत अधिक है, इसलिए उत्पादित फसलों को प्रीमियम दरों पर बेचा जाता है, और उद्योग के विशेषज्ञों के अनुसार, उपज की कीमत जैविक उपज की कीमतों के बराबर होती है। हाइड्रोपोनिक्स का उपयोग करके उगाई जाने वाली सब्जियां पारंपरिक खेती की तुलना में तेजी से और मजबूत होने के लिए जानी जाती हैं, क्योंकि सही पोषक तत्व सीधे पौधों की जड़ों तक पहुंचाए जाते हैं।

मवेशी पालन के लिए हाइड्रोपोनिक्स चारा

हाइड्रोपोनिक्स चारे की वृद्धि के लिए पोषक तत्व समाधान का उपयोग आवश्यक नहीं है और केवल नल के पानी का उपयोग किया जा सकता है। भारत में, मक्का अनाज को हाइड्रोपोनिक्स चारे के उत्पादन के लिए विकल्प होना चाहिए। हाइड्रोपोनिक्स हरा चारा जड़, बीज और पौधों से मिलकर 20–30 सेमी की ऊंचाई के एक चटाई जैसा दिखता है। एक किलोग्राम ताजे हाइड्रोपोनिक्स मक्का के चारे (7–क) का उत्पादन करने के लिए लगभग 1.50–3.0 लीटर पानी की आवश्यकता होती है। ताजा आधार पर 5–6 सिलवटों की पैदावार और 11–14 प्रतिशत डीएम सामग्री हाइड्रोपोनिक्स मक्का के चारे के लिए आम है, हालांकि, 18 प्रतिशत तक डीएम सामग्री भी देखी गई है। हाइड्रोपोनिक्स चारा पशुओं के लिए अन्य स्वास्थ्य लाभ प्रदान करते हुए अधिक स्वादिष्ट, सुपाच्य और पौष्टिक है। बीज की लागत हाइड्रोपोनिक्स मक्का चारे के उत्पादन की कुल लागत का लगभग 90ः योगदान देती है। प्रति दिन प्रति गाय लगभग 5–10 किलोग्राम ताजे हाइड्रोपोनिक्स मक्का के चारे के पूरक की सिफारिश की जाती है। हालांकि, हाइड्रोपोनिक्स चारा उत्पादन के लिए संकेंद्रित मिश्रण के मक्का के एक हिस्से को अंकुरित करने के लिए अतिरिक्त मक्का की आवश्यकता नहीं होती है। हाइड्रोपोनिक्स चारा खिलाने से राशन के पोषक तत्वों की पाचनशक्ति बढ़ जाती है जो दूध उत्पादन (8–13 प्रतिशत) में

वृद्धि में योगदान कर सकता है। ऐसी परिस्थितियों में, जहाँ पारंपरिक हरे चारे को सफलतापूर्वक नहीं उगाया जा सकता है, किसानों द्वारा कम लागत वाले उपकरणों (नाइक, 2015) का उपयोग करके अपने डेयरी पशुओं को खिलाने के लिए हाइड्रोपोनिक्स चारे का उत्पादन किया जा सकता है।

शहरी खेती

अधिकांश पौधों को अभी भी मिट्टी का उपयोग करके उगाया जाता है, लेकिन हाइड्रोपोनिक्स बढ़ रहा है। 2013 में, थानेट अर्थ – केंट में स्थित यूके का सबसे बड़ा ग्रीनहाउस कॉम्प्लेक्स, लगभग 225 मिलियन टमाटर, 16 मी मिर्च और 13 एम खीरे का उत्पादन करने के लिए नियंत्रित–पर्यावरणीय कृषि का उपयोग करता था, जो ब्रिटेन के पूरे वार्षिक उत्पादन का क्रमशः 12, 11 और 8 प्रतिशत के बराबर था। इन फसलों के। यह वर्तमान में चार ग्रीनहाउस संचालित करता है, और एक और तीन बनाने की योजना है।

विश्व स्तर पर, यह अनुमान लगाया गया था कि 2015 में हाइड्रोपोनिक खेती उद्योग की कीमत 21.4 बिलियन डॉलर थी, जिसका मूल्य प्रति वर्ष 7 प्रतिशत बढ़ने का अनुमान था। धीरे–धीरे लेकिन लगातार, खेती बदलती दिख रही है।

लेकिन समान रूप से, क्षितिज पर बड़े वैश्विक परिवर्तन हैं, और ये नियंत्रित–पर्यावरणीय कृषि के उपयोग में काफी तेजी ला सकते हैं। 2050 तक, शहरी क्षेत्रों में रहने वाली वैश्विक आबादी का 80 प्रतिशत से अधिक लोग पृथ्वी पर रह सकते हैं। हम पहले से ही फसल उगाने के लिए उपयुक्त भूमि का विशाल उपयोग कर रहे हैं, इसलिए नए बढ़ते क्षेत्र – विशेष रूप से शुष्क क्षेत्रों में – खोजने की आवश्यकता है।

एक बहु–चर्चित समाधान ऊर्ध्वाधर शहरी खेती

ऊंची गगनचुंबी इमारतों सहित इमारतों के अंदर खड़ी हाइड्रोपोनिक फार्म बनाना। यह उपलब्ध खेत से बाहर चलने की समस्या को हल करेगा, और फार्म को ठीक उसी जगह पर रखेगा जहाँ फसलों की जरूरत है – भविष्य के हमारे घनी आबादी वाले शहर। मिशिगन और सिंगापुर में पहले से ही वर्टिकल फार्म बनाए जा रहे हैं – और यहां तक कि दक्षिण लंदन में डिस्पोज्ड बम शेल्टर भी। और, जैसा कि यह मानव अंतरिक्ष मिशनों की योजना बना रहा है जो पृथ्वी से आगे और आगे की यात्रा करेंगे, नासा जांच कर रहा है कि क्या अंतरिक्ष यात्रियों को खिलाने के लिए अंतरिक्ष फार्म बनाने के लिए हाइड्रोपोनिक्स का उपयोग किया जा सकता है। एरिजोना विश्वविद्यालय के साथ काम करते हुए, यह देख रहा है कि क्या यह एक बंद–लूप प्रणाली बना सकता है जो मानव अपशिष्ट और सी.ओ.टू. को भोजन, ऑक्सीजन और पानी बनाने के लिए एक हाइड्रोपोनिक खेत में खिलाती है।

इनडोर खेती में पौधों के उत्पादन के लिए हाइड्रोपोनिक सिस्टम आवश्यक उपकरण हैं जैसे कि कृत्रिम प्रकाश (पीएफएएल) के साथ संयंत्र कारखाने। विभिन्न हाइड्रोपोनिक प्रणालियों में, डीप फ्लो तकनीक (डीएफटी), पोषक तत्व फिल्म तकनीक (एनएफटी), और एरोपोनिक सिस्टम का व्यावसायिक रूप से पुनर्नवीनीकरण पोषक तत्वों के समाधान के साथ उपयोग किया गया है। पौधों की फैक्टरियों में पौधों को बीमारी से बचाने के लिए, कीटाणुशोधन प्रणाली, जैसे कि पराबैंगनी (यूवी) सिस्टम की आवश्यकता होती है। यूवी विकिरण की प्रकाश तीव्रता और एक्सपोजर समय रोगजनकों के कीटाणुशोधन अनुपात से संबंधित हैं। हाइड्रोपोनिक सिस्टम, सेंसर और नियंत्रक, पोषक तत्व प्रबंधन प्रणाली, आयन–विशिष्ट पोषक तत्व प्रबंधन, और पौधों के कारखानों में पौधों के उत्पादन के लिए आवश्यक पोषक नसबंदी प्रणाली।

भारत में सफलता की कहानियां

चेन्नई में स्थित फ्यूचर फार्म्स, भारत ने हाइड्रोपोनिक्स की सुविधा के लिए प्रभावी और सुलभ खेती किट विकसित की है। कंपनी स्वदेशी प्रणाली और समाधान विकसित करती है, जो प्रीमियम, खाद्य–ग्रेड सामग्री से बना है जो भारतीय उत्पादकों के लिए कुशल और सस्ती है।

एग्री–टेक स्टार्ट–अप जंगा फ्रेशग्रीन, नीदरलैंड की एक प्रमुख कृषि प्रौद्योगिकी कंपनी – वेस्टलैंड्स प्रोजेक्ट कॉम्बिनेटी बीवी (डब्ल्यूपीसी) के साथ एक संयुक्त उद्यम है। यह भारत में उच्च–प्रौद्योगिकी फार्म स्थापित कर रहा है। कंपनी एक हाइड्रोपोनिक्स मॉडल बनाएगी, जिसमें खेती की जा सकने वाली ताजी सब्जियों की खेती की जा सकती है, जिनमें एक पूर्वानुमानित गुणवत्ता हो, जिसमें कीटनाशक बहुत कम हों और मौसम या मिट्टी की स्थिति से अप्रभावित हों।

सीमाएं

1. विकासशील देशों में सरकार की नीति और टैक्स में कमीः विकासशील क्षेत्रों में खाद्य सुरक्षा में सुधार के लिए हाइड्रोपोनिक खेती को एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में देखा जाता है। हालाँकि, कर कटौती के माध्यम से सरकार का समर्थन विकसित देशों में मौजूद है, वहीं विकासशील देशों के लिए ऐसा नहीं कहा जा सकता है। सर्वोत्तम उपकरणों की उपलब्धता काफी सीमित है और अक्सर आयात करने की आवश्यकता होती है, जो हाइड्रोपोनिक उत्पादकों के लिए लागत को जोड़ने वाले करों को आकर्षित करता है। कर कटौती और प्रोत्साहन की कमी भी एक महत्वपूर्ण कारक है जो विकासशील क्षेत्रों में जलविद्युत के विकास में बाधा उत्पन्न करता है क्योंकि उच्च सेट–अप लागत और रनिंग लागत

अक्सर संचालन को अक्षम कर सकती है। हाइड्रोपोनिक खेतों के संचालन के लिए बुनियादी प्रशिक्षण और तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता होती है, जो हालांकि विकासशील देशों में मौजूद है, हाइड्रोपोनिक खेतों के मूल्य में महत्वपूर्ण रूप से वृद्धि नहीं करता है। उत्पादन की उच्च लागतों के परिणामस्वरूप अक्सर अंतिम उत्पाद की उच्च लागत होती है, जो अपने आप में उपभोक्ताओं को मूल्य–संवेदनशील बाजारों में दूर कर सकती है।

2. बंद प्रणालियों में जलजनित रोगों और शैवाल का प्रसारः एक बंद हाइड्रोपोनिक प्रणाली में, जलजनित रोगों का खतरा उत्पादकों के लिए एक बड़ी समस्या है। यह देखते हुए कि पूरे सिस्टम में पोषक तत्वों से समृद्ध पानी को फिर से इकट्ठा किया जाता है, किसी भी प्रकार की जलजनित बीमारी जो पोषक तत्वों के भंडार में प्रवेश करती है, अक्सर पूरी फसल को प्रभावित करती है क्योंकि इसमें पूरे फैलने की क्षमता होती है। उत्पादक अक्सर भीड़ को रोकने के लिए अपने पौधों को बाहर फैलाए रखते हैं, जो अक्सर रोगजनकों के सिस्टम में प्रवेश करने का होता है

आंतरिक तापमान का मॉड्यूलेशन भी सिंचाई प्रणाली में गर्मी और नमी के रूप में एक महत्वपूर्ण कदम है यदि अनुपचारित छोड़ दिया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप मोल्ड और शैवाल बन सकते हैं, जो पानी से पोषक तत्वों को आकर्षित कर सकते हैं। जलजनित रोगों के उदाहरणों से निपटने के लिए, सिस्टम में जलजनित रोगों के प्रसार को रोकने के लिए उत्पादकों को स्क्रीन या पेपर फिल्टर और अतिरिक्त निस्पंदन सिस्टम का उपयोग करना पड़ रहा है। सिस्टम में शामिल अन्य सुरक्षा उपायों में फसलों से पानी निकालने और किसी भी रोगजनकों के प्रसार को रोकने के लिए एक तेजी से फ्लश प्रणाली शामिल है।

निष्कर्ष

उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि निकट भविष्य में जब शहरीकरण और वनों की कटाई के कारण आश्रय देने वाली आबादी को आश्रय देने के लिए खेती योग्य भूमि की अपर्याप्तता होगी, तो पारंपरिक खेती के विकल्प की भी आवश्यकता होगी और उस स्थिति में, हाइड्रोपोनिक हो सकता है खाद्य सुरक्षा की दिशा में एक कदम हो। आज किसान धीरे–धीरे हाइड्रोपोनिक्स के उपयोग को बढ़ा रहे हैं, और शोधकर्ता इस बात पर अधिक ध्यान दे रहे हैं कि यह भविष्य की खाद्य समस्याओं को कैसे हल कर सकता है। भविष्य में, इसके कुछ अनुप्रयोग इस दुनिया से बाहर हो सकते हैं। हाइड्रोपोनिक्स शहरी खेतों और पशुपालन को भी पंख देता है।

संदर्भः

ब्रिजवूड, एल–2003 हाइड्रोपोनिक्स : मिट्टी रहित बागवानी को समझाया गया। रामस्बरी, मार्लबोरो, विल्टशायरः द क्राउड प्रेस लिमिटेड।

बढ़ती पावर बढ़ते बिजली के ऊर्ध्वाधर खेत। Http://growingpower-org/verticalfarm-html से 2 नवंबर 2011 को लिया गया

कियानी, ए–2019 खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए हाइड्रोपोनिक्स तकनीक। द एक्सप्रेस ट्रिब्यून।

मार्गिन्सन, एस–2010 एयरोफार्म्स शहरी कृषि प्रणाली : कम जगह, कम पानी, और कोई कीटनाशक नहीं। 23 सितंबर, 2011 को http://www-gizmag-com/aerofarms-urban-agriculture/15371/ से पुनः प्राप्त

नाइक पीके, स्वैन बीके और सिंह एनपी 2015 हाइड्रोपोनिक्स चारा उत्पादन का उत्पादन और उपयोग और हाइड्रोपोनिक्स चारे का उपयोग, भारतीय जे एनिमेटेड न्यूट्र 32 (1)रू 1–9

“हिंदी भाषा और साहित्य ने तो जन्म से ही अपने पैरों पर खड़ा होना सीखा है।”

–धीरेन्द्र वर्मा

मृदा सूक्ष्मजीवों का पोषक तत्व प्रबंधन में महत्व

धर्मेन्द्र सिंह यशोना, मनोज कुमार तरवरिया एवं सतीश भागवतराव आहेर
भाकृअनुप–भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, नबीबाग, भोपाल (म.प्र.)

सूक्ष्मजीवों को प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र का संचालक माना जाता हैं। इनके द्वारा पोषक तत्व को सरल रूप में परिवर्तन, पौधों के अपशिष्ट और मृतजीवों का अपघटन किया जाता हैं। पृथ्वी के समस्त जीवित प्राणी के पोषण में सूक्ष्मजीवों का सहयोग एवं योगदान किसी न किसी रूप में होता हैं। मृदा सूक्ष्मजीव कार्बनिक पदार्थों को विघटित कर पौधों के लिए पोषक तत्वों को पुनः उपयोग करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हैं। बैक्टीरिया और कवक कुछ मिट्टी में पौधे की जड़ों के साथ सहसंबंध स्थापित करते हैं जो नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम जैसे महत्वपूर्ण पोषक तत्वों को उपलब्ध कराते हैं। सूक्ष्मजीवों के कार्यों को देखते हुए यह पता चलता है कि हमारे जीवन, वातावरण, पारिस्थितिकी तंत्र व पौधें आदि के स्वस्थ जीवन में इनकी कितनी अहम भूमिका हैं। सूक्ष्मजीवों को मानव द्वारा पौधों और जानवरों में रोगों के उत्पति कारक के रूप में बहुत ज्यादा हानिकारक माना जाता हैं। फिर भी, प्रकृति में इन सूक्ष्मजीवों का लाभकारी योगदान भी कई गुना अधिक हैं। जिसे हम देखते, समझते एवं महसूस करते हैं इन सब कारण से इन्हें "पृथ्वी का सबसे बड़ा रसायनज्ञ" कहा जाता है। इनके माध्यम से जल, मृदा व वायु प्रदूषण का नियंत्रण, हानिकारक तत्वों का अपघटन, मृदा पोषक तत्वों का खनिजीकरण, पुनर्चक्रण आदि कार्य किए जाते हैं। सूक्ष्मजीव पौधों के विभिन्न भागों में प्रवेश कर सकते हैं और सूखा सहिष्णुता, गर्मी सहिष्णुता, कीट प्रतिरोधकता और पौधों को रोगो से रक्षा प्रदान करते हैं। आधुनिक खेती अधिक से अधिक खाद्यान्न उत्पादन के लक्ष्य पर आधारीत हैं। हम वर्तमान में लगभग 285 मिलियन टन खाद्यान्न उत्पादन करने के लिए अनुमानित 26 मिलियन टन रासायनिक उर्वरकों का उपयोग करते हैं। रासायनिक उर्वरकों का उत्पादन दिन प्रति दिन महंगा एवं कम हो रहा है। इसका अधिक प्रयोग वातावरण एवं भू–जल को भी दूषित करता है। अतः इस संदर्भ में ऐसे जीवाणुओं को खोजा गया है, जो फसलों को आवश्यक तत्व प्रदान करवाने में मदद करते हैं। इनके प्रयोग से न केवल मिट्टी एवं जल दूषित होने से बचता है, बल्कि उच्च गुणवक्ता युक्त अन्न उत्पादन भी किया जा सकता है इन सूक्ष्मजीवों में मुख्यतः राइजोबियम, एजेटोबैक्टर, स्यूडोमोनस, साइनोबैक्टीरिया, एस्परजिलस, वेसिकुलर ऐसबसकुलर माइकोराइजा, अजोला आदि जो पोषक तत्वों को सरल रूप में परिवर्तन कर पौधों के लिए उपलब्ध रूप में उपयोगी बनाते हैं। यह सही है कि जैविक खाद, रासायनिक उर्वरक का स्थान नहीं ले सकती। किंतु किसान यदि दोनों का उचित मात्रा में उपयोग करें तो आर्थिक लाभ के साथ में वातावरण भी दूषित नहीं होगा।

फसल उत्पादन के दृष्टिकोण से सूक्ष्मजीव इन सब क्रियाओं के लिए जिम्मेदार हैं।

1. पोषक तत्वों को एक रासायनिक रूप से दूसरे में बदलना।
2. सूक्ष्मजीवों द्वारा मिट्टी में महत्वपूर्ण पोषक तत्व नाइट्रोजन, फास्फोरस, सल्फर, आयरन और अन्य को पौधों के लिए उपलब्ध रूप में उपयोगी बनाते हैं।
3. मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों को विघटित कर सरल यौंगिक पदार्थों में परिर्वतित करना।
4. पोषक तत्वों को उपलब्ध कराने और धनायन विनिमय क्षमता के स्तर को बढ़ाकर मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाते हैं।
5. मिट्टी में डाले जाने वाले कीटनाशकों और अन्य रसायनों का अपघटन करना।
6. पौधों में रोग उत्पन्न करने वाले अन्य हानिकारक सूक्ष्मजीवों को नष्ट करना।

नाइट्रोजन स्थिरीकरण

पौधों के लिए नाइट्रोजन एक प्रमुख पोषक तत्व हैं जो मुख्य रूप से फसल पौधों की बढ़वार एवं उत्पादकता को निर्धारित करता है। हालांकि, नाइट्रोजन वायुमंडल (लगभग 80 प्रतिशत गैसीय रूप) में प्रचुर मात्रा में मौजूद हैं किंतु इसे पौधे गैसीय अवस्था में उपयोग नहीं कर सकते हैं। दलहनी फसलों की जड़ग्रंथियों में राइजोबियम बैक्टीरिया पाये जाते हैं, जो इन फसलों की जड़ों में सहजीवी संबंध बनाकर वायुमंडलीय नाइट्रोजन का मृदा में स्थिरीकरण करते हैं। खेती में दलहनी पौधों द्वारा नाइट्रोजन स्थिरीकरण फसल, किस्म, पर्यावरण की स्थिति, पोषक तत्वों की उपलब्धता और मिट्टी में सूक्ष्मजीवों की प्रतिस्पर्धा के आधार पर व्यापक रूप से भिन्न होता हैं (तालिका 1)। मिट्टी में सहयोगी नाइट्रोजन स्थिरीकरण के द्वारा 20 किग्रा नत्रजन/हैक्टेयर/वर्ष प्राप्त होता हैं। साइनोबैक्टीरिया लगभग 20–30 किग्रा/हैक्टेयर/मौसम नाइट्रोजन स्थिरीकरण के अलावा मिट्टी को जैविक पदार्थ से समृद्ध करने में योगदान देता है। इससे मृदा में नाइट्रोजन की मात्रा में वृद्धि होती है। दलहनी फसलों में भी अन्य फसलों की तरह नाइट्रोजन की आवश्यकता अधिक होती है। लेकिन दलहनी फसलों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण क्षमता होने के

कारण ये 80 से 90 प्रतिशत नाइट्रोजन की पूर्ति नाइट्रोजन स्थिरीकरण के माध्यम से हो जाती हैं। दलहनी फसलों में प्राम्भिक वृद्धि के लिए 10 से 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन/हैक्टेयर बुआई के समय प्रयोग करने पर नाइट्रोजन की पूर्ति हो जाती है। इसलिए दलहनी फसलों को कम नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है। इन फसलों की कटाई के बाद मृदा में नाइट्रोजन की कुछ मात्रा अग्रिम फसल के उत्पादन में नाइट्रोजन उर्वरकों की मात्रा के प्रयोग को कम करने में सहायक होती हैं। दलहनी फसलों को हरी खाद के रूप में भी उगाया जाता है। पौधों के द्वारा जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण के माध्यम से प्रतिवर्ष लगभग 100 से 170 मिलियन टन वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण किया जाता है।

तालिका 1. कुछ दलहनी फसलों की नाइट्रोजन स्थिरीकरण क्षमता

दलहनी फ़सल	नाइट्रोजन स्थिरीकरण क्षमता (किग्रा/हैक्टेयर)
सोयाबीन	49–450
रिजका	100–300
अरहर	20–200
मूंगफली	27–206
ग्वार	37– 196
मटर	46–60
मसूर	35–100
मेथी	44–80
चना	25–100
उड़द	119–140
लोबिया	10–125
मूंग	50–66

फॉस्फोरस गतिशीलता एवं घुलनशीलता

मिट्टी में जल घुलनशील फॉस्फोरस की मात्रा 0.1 से 1 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर के बीच तक या इससे भिन्न होती है। नाइट्रोजन के पश्चात फॉस्फोरस, दूसरा महत्वपूर्ण मुख्य पोषक तत्व है। अधिकांश फसलों को 10 से 30 किलोग्राम फॉस्फोरस प्रति हैक्टेयर की आवश्यकता होती है, इसलिए मिट्टी में उपलब्ध फॉस्फोरस को घुलनशील और खनिजीकरण करने का कार्य भी सूक्ष्मजीवों के द्वारा किया जाता है। कार्बनिक फास्फोरस मिट्टी में कुल फास्फोरस का 30 से 50 प्रतिशत तक पाया जाता हैं जो कि पौधों को सूक्ष्मजीवों कि सहायता से लगातार उपलब्ध होता रहता है। मिट्टी में सूक्ष्मजीवों की संख्या का 10 प्रतिशत प्रतिनिधित्व वह बैक्टीरिया करते हैं जो फास्फोरस को घुलनशील करते हैं। सबसे अधिक फास्फोरस को घुलनशील करने वाले बैक्टीरिया (पीएसबी) जीनस *स्यूडोमोनस* और *बैसिलस* के हैं। *स्यूडोमोनस स्ट्रैटा* सबसे अधिक ट्राइकेल्शियम फॉस्फेट को घुलनशील करता है, *स्यूडोमोनस पुटिड़ा, बैसिलस पोलीमिक्सा, बैसिलस सुब्टीलीस* और *बैसिलस सर्कुलेंस* भी फास्फोरस को घुलनशील करने वाले बैक्टीरिया हैं।

बैक्टीरिया के अतिरिक्त कुछ फंगस (कवक) समूह के सूक्ष्मजीव जैसे *एस्परजिलस नाइजर, एस्परजिलस आवामोरी* और *पेनिसिलियम* स्पीशीज आदि रॉक फॉस्फेट को घुलनशील करने वाले फंगस हैं। फंगस (कवक) के एक समूह द्वारा फास्फोरस को पौधों के लिए उपलब्ध कराया जाता है जिसे वेसिकुलर ऐसबसकुलर माइकोराइजा (वाम) कवक कहा जाता है। माइकोराइजा कवक पौधों की जड़ तंत्र में कॉलोनी बनाता है। सहजीवी सहचर्य को विकसित करता है। जो मिट्टी में अघुलनशील फास्फोरस को घुलनशील करके पौधों को उपलब्ध कराते रहते हैं। यह अपने श्वसन के दौरान कार्बनिक अम्ल और कार्बन ड़ाईऑक्साइड़ का उत्पादन करके खनिज फास्फोरस को घोलते हैं। साथ ही मिट्टी में अपना कवक जाल का विस्तार करता है जिससे पौधे की जड़ों का विकास होता जाता है। कुछ माइकोराइजा फॉस्फेटेस एनजाइंम का स्त्राव कर कार्बनिक फास्फोरस का खनिजीकरण करते हैं। इसके अतिरिक्त माइकोराइजा पौधों को अजैविक तनाव अर्थात खारेपन, सूखा, धातु विषाक्तता के प्रति सहनशीलता प्रदान करता है।

पोटेशियम घुलनशीलकारी बैक्टीरिया (केएसबी)

पोटेशियम–घुलनशील जीवाणु आमतौर पर सिलिकेट बैक्टीरिया होते हैं, जो सिलिकेट खनिजों को विखंडन कर पोटेशियम और अन्य तत्वों को पौधे के उपयोग के लिए उपलब्ध कराने में सक्षम होते हैं पोटेशियम घुलनशील जीवाणु जैसे *बैसिलस म्यूसीलागिनोस* और बुर्खोलडेरिया की प्रजातियां मिट्टी में मौजूद पोटेशियम की आपूर्ति करके पौधों की वृद्धि करने में मदद करती हैं, जिससे उर्वरकों पर होने वाले खर्च को कम किया जा सकता है।

अजोला एवं नील हरित शैवाल

धान की फसल में नील हरित काई की तरह तेजी से बढ़ने वाली अजोला एक प्रकार की जलीय फर्न हैं जिसे हरी खाद के रूप में उगाया जाता हैं। इस हरी खाद से भूमि की उर्वराशक्ति और उत्पादन में भी बढ़ोतरी होती है। अजोला और नील हरित शैवाल आपस में सहजैविक के रूप में जल की सतह पर वृद्धि करते है। नील हरित शैवाल को एनाबिना अजोली भी कहते है और यह वातावरण से नाइट्रोजन के स्थायीकरण कर पौधों को

नाइट्रोजन उपलब्ध करता है। प्राकृतिक रूप से अजोला उष्ण व गर्म उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में पाया जाता है। देखने में यह शैवाल से मिलती–जुलती फर्न है और आमतौर पर उथले पानी में अथवा धान के खेत में पाई जाती है। इसका उत्पादन छायादार स्थान पर 2 मीटर लंबा, 2 मीटर चौड़ा तथा 30 सें.मी. गहरा गड्ढे को प्लास्टिक शीट से ढक कर या पक्के फर्श की टंकी में 10–15 कि.ग्रा. मिट्टी, 2 कि.ग्रा. गोबर एवं 30 ग्राम सिंगल सुपर फॉस्फेट 10 लीटर पानी में मिलाकर 500–1000 ग्राम अजोला कल्चर मिलाकर 10–12 सें.मी. तक गड्ढे को पानी से भर देते हैं। 10–15 दिनों के अंदर पूरे गड्ढे को अजोला ढक लेता है। इसे निकाल कर खाद के रूप में उपयोग कर सकते हैं।

सूक्ष्मजीव द्वारा कार्बनिक पदार्थों का अपघटन

जैविक खाद लाभकारी जीवाणुओं का ऐसा जीवंत समूह है, जिसका मिट्टी में प्रयोग करने पर पौधें को संतुलित मात्रा में पोषक तत्व मिलने लगते हैं। इसके साथ साथ मृदा की सूक्ष्मजीव क्रियाशीलता एवं मृदा स्वास्थ्य में भी सुधार होता हैं। फसल पौधों के अवशेषों में लगभग 15–60 प्रतिशत सेल्यूलोज, 10–30 प्रतिशत हेमिसेल्यूलोज, 5–30 प्रतिशत लिग्निन, 2–15 प्रतिशत प्रोटीन और 10 प्रतिशत शर्करा और कार्बनिक अम्ल होते हैं, कार्बनिक पदार्थों का अपघटन में भौतिक विखंडन भी शामिल होता है, जो आमतौर पर छोटे मृदा जीव द्वारा एवं रासायनिक परिवर्तन और कार्बनिक अर्क के साथ सयुक्त रूप से संचालित होता हैं। छोटे मृदा जीव, विशेष रूप से केंचुए भौतिक अपघटन पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं, इसके बाद जीवाणुओं और केंचुआ द्वारा उत्पादित एंजाइमों की क्रियाएं होती है। कार्बनिक पदार्थों का अपघटन के लिए सामान्य लाल केंचुआ (*ईसेनिया फोसेटिडा*), अफ्रीकी केंचुआ (*यूड्रिलस यूजिनीया*), एशियाई केंचुआ (*पेरिओनिक्स एक्सुवेटस*) मुख्य हैं। सूक्ष्मजीवों में कार्बनिक पदार्थों का अपघटन की क्षमता रखने वाला सबसे प्रमुख कवक *एस्परगिलस, पेनिसिलियम, ट्राइकोडर्मा* और *प्लुरोटस* हैं। कुछ कवक की पहचान भारतीय कृषि वैज्ञानिकों द्वारा की गई है जैसे *राइजोमुकर प्यूसिलस, एस्परगिलस फ्लैवस, एस्परगिलस हेटेरोमोर्फस, एस्परगिलस टेरस* इत्यादि जो आमतौर पर कार्बनिक पदार्थों का अपघटन के लिए उपयोग किये जाते हैं।

सूक्ष्म पोषक उपलब्धता

जिंक, आयरन, मैग्नीज, कॉपर, बोरान, मोलीबडेनम, क्लोरीन, कोबाल्ट, निकिल तत्वों को सूक्ष्म पोषक तत्व या अल्प पोषक तत्व कहते है। पौधों द्वारा इन तत्वों की 100 पी.पी.एम प्रति किग्रा. से भी कम मात्रा का उपयोग किया जाता है। भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल के सर्वेक्षण के अनुसार भारतीय मृदाओ में 36.5 प्रतिशत जिंक, 23.2 प्रतिशत बोरान, 14 प्रतिशत *मोलीबडेनम*, 12.8 प्रतिशत आयरन, 7.1 प्रतिशत मेगनिज एवं 4.2 प्रतिशत कॉपर की कमी पायी गई। इनकी कमी पूर्ती के लिए सूक्ष्म पोषक तत्वों से भरपूर उर्वरकों के उपयोग के साथ–साथ जैव–उर्वरक और बीज उपचार के रूप में उपयोग की सिफारिश की जाती है। फसल पौधों के साथ–साथ मृदा सूक्ष्मजीव को भी इन सूक्ष्मतत्वों की आवश्यकता होती है। इन पोषक तत्वों की अनुपलब्धता के कारण पौधों के अंगों पर इनकी कमी के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। इनमें से कुछ सूक्ष्मतत्व, सूक्ष्मजीव की कोशिका एंजाइमिक गतिविधि में भाग लेते हैं। सूक्ष्मजीव पौधे को अनुपलब्ध सूक्ष्म पोषक तत्वों को उपलब्ध करने में पौधे की मदद करते हैं। सूक्ष्मतत्वों के परिवर्तन में भाग लेने वाले जीवों की सूची तालिका 2 में दी गई है। विभिन्न फसलों पर मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी पर हुए प्रयोगों के आधार पर सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रयोग जैव–उर्वरक के साथ लाभप्रद पाया गया है।

तालिका 2 सूक्ष्म पोषक तत्वों के परिवर्तन में भाग लेने वाले सूक्ष्मजीव।

प्रक्रियाएँ	सूक्ष्मजीवों के उदाहरण
आयरन का परिवर्तन	*अल्टरनेरिया, बैसिलस, क्लोस्ट्रीडियम, फ्यूसेरियम, क्लेबसिएला, स्यूडोमोनास, सेराटिया*
आयरन – न्यूनीकरण	*जियोबैक्टर मेटालिरेडन्स, शेवानैला पुटरेफेसिन्सं*
आयरन का ऑक्सीकरण	अम्लीय अवस्था में : *फेरोबैसिलस सल्फोऑक्सिडंस, फेरोबैसिलस फेरोऑक्सिडंस, लेंपटोस्पीरिलिम मेटालोगेनियम, सल्फोलोबस, थियोबैसिलस फेरोऑक्सिडंस* उदासीन अवस्था में : *साइडरोकोकस ऑक्रोबियम टेक्टम, लेप्टोथ्रिक्स, क्रैनोथ्रिक्स स्पैरोटिलस, गैलेओनेला*
मैगनीज का ऑक्सीकरण	*आर्थोबैक्टर, लेप्टोथ्रिक्स बैसिलस, क्लैडोस्पोरियम कर्वुलरिया पेडोमाक्रोबियम स्यूडोमोनस, हाइपोमाक्रोबियम मैंगनोक्सिडेंस*
कॉपर का परिवर्तन	*डेसल्फोविब्रियो डेसल्फ्यूरिकन्स, क्लॉस्ट्रिडियम लेंटोपुट्रेसेंस* और *प्रोटेस वल्गेरिस*
जिंक का परिवर्तन	*एस्परगिलस नाइजर, थियोबैसिलस थियोक्सिडेंस थियोबैसिलस फेरोक्सीडेंस बेसिलस* स्पी., *स्यूडोमोनस* स्पी.

पौधों में कीटों और रोगजनकों का जैविक नियंत्रण

जैविक नियंत्रण के लिए *बैसिलस थुरिंजेनेसिस* बैक्टीरिया का उपयोग व्यापक रूप से कुछ कीट जैसे मोथ, बटरफ्लाई, बीटल और मक्खियों का नियंत्रण करने में किया जाता है। न्यूक्लियर पॉलीहेड्रोसिस वायरस (एनपीवी) जैसे

वायरस का उपयोग लेपिडोप्टेरान कुल के कीटों का जैविक नियंत्रण करने के लिए किया जाता है। फंगस की ट्राइकोडर्मा प्रजाति कुछ मिट्टी जनित रोगजनकों (दलहन में उगढ़ा रोग) के प्रबंधन के लिए उपयोग की जाती हैं। इसके अलावा, जीवाणुओं की कई प्रजातियां द्वारा ऐंटिफंगल या कवकनाशी यौगिकों का उत्पादन करके पौध रोगजनकों को नियंत्रित करने में सक्षम हैं। अन्य प्रजातियों में *बेसिलस पॉपिलिया* जो जापानी बीटल के लार्वा में दूधिया बीमारी उत्पन्न कर इसका नियंत्रण करते हैं।

मृदा में सूक्ष्मजीवों का प्रबंधन

मृदा सूक्ष्मजीवों के कार्यों को देखते हुए यह पता चलता है कि कृषि, वातावरण, पारिस्थितिकी तंत्र व पादप आदि के लिए इनकी कितनी अहम भूमिका है । इनके माध्यम से ही मृदा, जलवायु का पारिस्थितिकी तंत्र एवं पुनर्चक्रण संरक्षित किया जाता हैं। अतः मृदा में सूक्ष्मजीवों की जैव विविधता बनाए रखने के लिए निम्न कृषि प्रबंधन प्रक्रिया अति आवश्यक है जैसेः (1) कार्बनिक पदार्थ युक्त खाद का उपयोग (2) फसल कटाई के बाद अवशेष का उसी स्थान पर प्रबंधन (3) कार्बनिक खादों के साथ जैव उर्वरकों का नियमित उपयोग (4) मृदा को आच्छादित करने वाली फसलें उगाना (5) विभिन्न प्रकार की फसलों की हेर–फेर कर बुआई (6) खेत की कम से कम जुताई (7) खरपतवारनाशी एवं कीटनाशकों का कम से कम प्रयोग (8) व्यवस्थित जल निकास सुधार (9) मृदा ताप/वायुसंचार के लिए हमेशा मृदा सतह को फसल या उसके अवशेष से ढकना (10) स्थानीय वातावरण के अनुकूल फसलों की प्रजातियों का चयन करना।

जीवाणु खाद के प्रयोग में सावधानियां

- जीवाणु खाद को ठंडी एवं सूखी जगह पर रखें और सूर्य की किरणों एवं गर्मी से बचायें।
- जीवाणु खाद और रासायनिक खाद को एक साथ मिलाकर प्रयोग न करें।
- जैविक उर्वरक के पैकेट पर जीवाणु प्रजाति एवं फसल का नाम, बनने एवं अंतिम प्रयोग तिथि, जीवाणु की नंबर संख्या, प्रयोग विधि एवं बनाने वाले का नाम–पता देखकर ही खरीदें।
- जैविक खाद को उसकी अंतिम–तिथि से पहले ही उपयोग में लें।
- जैविक–खाद और रासायनिक खाद को उचित मात्रा एवं तरीके से उपयोग करना चाहिए।
- जैविक उर्वरकों का उपयोग नमी युक्त मृदा में करना एवं यदि सम्भव हो तो इनका उपयोग खाद या कम्पोष्ट के साथ मिलाकर करना अधिक लाभप्रद होता है।

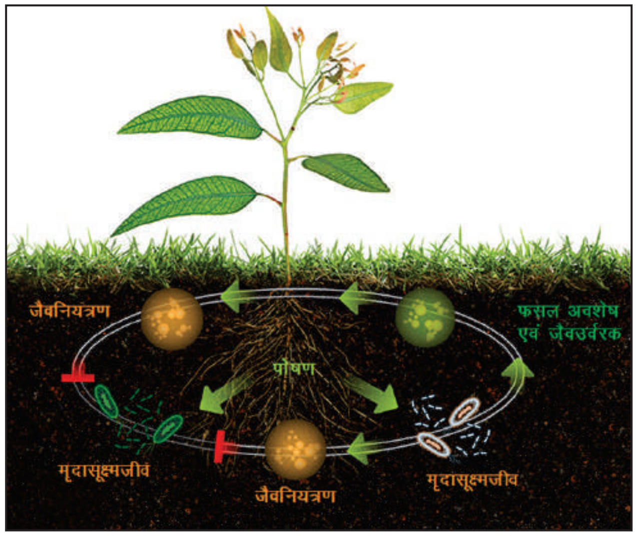

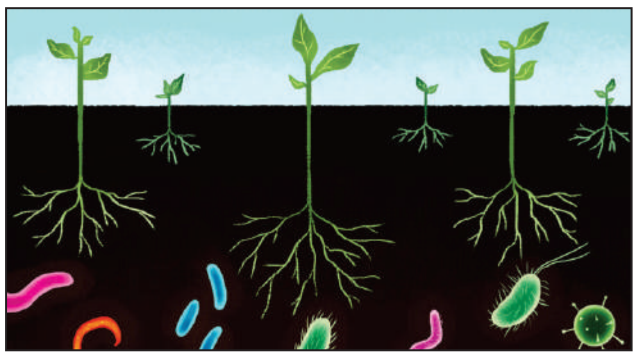

संस्कृत माँ, हिन्दी गृहिणी और अंग्रेजी नौकरानी है।

– डॉ. फादर कामिल बुल्के

पान उत्पादन तकनीक

प्रमोद कुमार गुप्ता[1] एवं योगिता घरडे[2]
1. जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)
2. भा.कृ.अनु.प.–खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

परिचय

पान एक बहुवर्षीय बेल है। जिसका हमारे देश में खाने के साथ साथ पूजा पाठ में भी इस्तेमाल किया जाता है। खाने के लिए पान पत्ते के साथ चूना, कत्था सुपारी व तम्बाकू का उपयोग किया जाता है। लोगों का मत है कि पान खाने से मुख शुद्धि होती है। वहीं पान से निकली लार से पाचन क्रिया तेज हो जाती है और भोजन आसानी से पचता है। साथ ही शरीर में स्फूर्ति बनी रहती है। पान की खेती भारत समेत, बांग्लादेश, श्रीलंका, मलेशिया, सिंगापुर, थाइलैंड, फिलीपींस, पापुआ न्यूगिनी में सफलतापूर्वक की जाती है।

भारत में पान की खेती

पान एक महत्वपूर्ण, नाजुक मूल्यवान फसल है। पान उत्पादन में मिट्टी, मौसम, पानी व प्रबंधन का विशेष महत्व है। पान के विभिन्न भाषाओं में विभिन्न नाम हैं। इसे संस्कृत में ताम्बुल, मराठी में विडेचा, गुजराती में नागुबेल, तमिल में वेतिलाई, कन्नड़ में वित्यादले, तेलगु में तमालायाकू और मलयालम में वेतीला कहते हैं। वनस्पति विज्ञान में इसे "पाइपर बीटल" कहते है क्योंकि यह पाइपर परिवार का सदस्य है, पान की कई किस्में होती है जैसे मगही, देशी, जगन्नाथ, महोबा, गंजाम, बंगला, कपूरी, साँची, मीठा, मालवी, कलकतिया, कोकर, कुलझेडु इत्यादि।

पान मध्यप्रदेश की प्रमुख नगदी फसल है तथा यहाँ का पान विशेषरूप से छतरपुर बिलहरी पान गुणवत्ता में बेहतर होता है इसलिए इसका निर्यात दूसरे देशो में होता है। पान की खेती को रोगों से बहुत नुकसान होता है अतः परम्परागत कृषकों के धंधे चौपट हो रहे हैं और उन्हें जीविका चलाने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है, तथा वे धीरे धीरे इस व्यवसाय से पलायन की ओर अग्रसर हो रहे हैं। पान को न तो कृषि व्यवसाय माना जाता है और न ही उद्योग। परिणाम स्वरुप पान की खेती करने वालों को, किसानों अथवा नए उद्यमियों जैसी कोई सुविधायें उपलब्ध नहीं हैं। पान की खेती की विडंबना यह है कि इसने अपने परम्परागत तरीकों को ही अपनाया हुआ है, जबकि आधुनिक तकनीकी द्वारा खेती करने पर इसे लाभदायक व्यवसाय बनाया जा सकता हैं।

पान की खेती ऐसे क्षेत्र में होती है जहाँ वर्षा अच्छी होती है अथवा पानी का स्थायी स्त्रोत उपलब्ध हो। पानी पान की जान है। अच्छे जल निकास वाली ढालू व उपजाऊ भूमि पान के लिए उपयुक्त होती हैं। मध्यप्रदेश में काली, कछारी, ककरीली, बलुआ तथा मुरम मिट्टी में पान की खेती की जाती है। जबलपुर के गांधीग्राम, दर्शनी, कटनी के पान– उमरिया तथा बिलहरी में काली मिट्टी में पान होता है। मैहर, छतरपुर, नरसिंहपुर, रीवा, पन्ना, टीकमगढ़, सतना, देवास, धार, मन्दसौर, खण्डवा के दीवाल एवं बरुद गांव के पान बेहद उच्च गुणवत्ता के होने के कारण इनकी मांग सदैव बनी रहती है। मैदानी इलाकों में बरेजे की भूमि मध्य में ऊँची तथा दोनों ओर ढालू बना देते हैं जिससे जल निकास बेहतर बनी रहे। वर्ष में प्रायः दो बार बाहर से मिट्टी लाकर डाली जाती हैं जिससे बरेजे का उपजाऊपन बना रहता है तथा उत्पादन में वृद्धि होती है।

बरेजा निर्माण तकनीक

भूमि अच्छी तरह साफ कर लेते हैं जिससे उस पर किसी भी प्रकार के खरपतवार एवं पुरानी फसल के अवशेष न रहें। सुतली अथवा रस्सी की सहायता से 75 सेंटीमीटर के अंतर से कतारों का निर्माण कर लेते हैं फिर इन कतारों में एक मीटर के अंतर से 25 सेंटीमीटर गहरा गड्ढा बना देते हैं और उसमे 4 मीटर लम्बे और लगभग 3–4 सेंटीमीटर मोटे बांस गाड़ देते हैं। पूरी कतार में बांस लग जाने के बाद बांस की किमची (बाता/बत्ता) दोनों ओर बाँध देते है। तत्पश्चात फटे हुए बांस की किमची बरेजे की चौड़ाई में डाल कर बाँधने से बंध जाती है। पान बरेजे में बांस आदि को बांधने के लिए छिवला (बकोडा) की जड़ों का प्रयोग किया जाता है।

बरेजे के चारों किनारे पर मोटे बांस 60 सेंटीमीटर की दूरी पर गहरे गड़ा देते हैं। सूखी घांस और बांस की किमची से 3–4 मीटर लम्बी टटीया लगा देते है। प्रयास यह होता है कि बरेजे में सीधी हवा प्रवेश न करें अन्यथा पान की फसल को नुकसान पहुँचता है। इस प्रकार बरेजा चारों ओर से टटीयों से घिर जाता है। प्रायः बरेजे की ऊँचाई 2.5 से 3 मीटर होती है। मध्यप्रदेश की जलवायु ऐसी है जिसमें गर्मी और ठण्ड दोनों ही अधिक पड़ती है अतः छप्पर भी घास–कांस की पतली परत बिछाकर बांध देते हैं ताकि हल्की–हल्की धूप आ सके और पान की फसल अधिक वृद्धि कर सकें। तेज धूप फसल को नष्ट कर देती हैं।

पूरा बरेजा बन जाने के बाद बाँसों को सीधा कर एक कतार में कर लिया जाता है जिससे इनमे बंधे हुए बत्ते भी सीधे रहे। अब अंदर के कचरे को निकाल कर सफाई कर ली जाती

है तथा गुड़ाई कर पानी से तर कर दिया जाता है। बतर आ जाने पर ढेलों को फोड़कर कचरा तथा छोटे बड़े कंकड़–पत्थर बाहर निकाल देते हैं। इस प्रकार मिट्टी को भुरभुरी बना लेते है। बाहर लगी हुई टटियों को पशुओं से बचाने के लिए चारों ओर काँटों की बाड़ी लगा देते हैं। अथवा गोबर और मिट्टी का घोल बनाकर टटियों पर छिड़काव कर देते हैं।

प्रायः मृदा–जनित रोगाणुओं द्वारा पान को अधिक हानि पहुँचती है अतः मृदा उपचार के उपरांत ही पान बेल का उपचार कर रोपण करना चाहिए। बोर्डो मिश्रण एक प्रतिशत 2.5 लीटर प्रति मीटर की दर से बरेजे में डालकर दूसरे दिन हाथों से मिट्टी में अच्छी तरह मिलाकर सपरा (कतार) बनायें।

रोग–ग्रस्त बेल लगाने से जीवाणु एक बरेजे से दूसरे बरेजे में चला जाता है अतः बेलों को रोपणी के पूर्व उपचारित अवश्य कर लिया जाए। बेलों को उपचारित करने के लिए बोर्डो–मिश्रण 0.5 प्रतिशत घोल तैयार करें और 100 लीटर घोल में 12 ग्राम स्ट्रेप्टोसाईक्लिन अच्छे से मिला दें। मिट्टी की दो नांदों में 50–50 लीटर घोल डालकर बोने वाली कलमों को

तालिका : पान की प्रमुख प्रजातियां व उनका विवरण

क्र.	प्रजाति	विवरण
1.	बंगला	पत्ती बड़ी, पतली, लात्वकार (ओवेट), और ह्दयाकार किनारे सपाट सतह चिकनी, डंठल बड़ा, स्वाद तीखा, पत्ती का अग्र–शिखा नुकीला व छोटा, एसेंसिअल आइल 0.11 प्रतिशत।
2.	देशावरी (बिलहरी), महोबा	बड़ा आकार ह्दयाकार पत्ता पतला बाद में मोटा होता जाता है नसें 7–9 होता हैं पत्ती की नोक छोटी एक्यूमिनेट, स्वाद कम तीखा, किनारे कभी – कभी तरंगित, एसेंसिअल आइल 0.10 प्रतिशत।
3.	कपूरी	पत्ती अंडाकार, लेमिना पतला, मुलायम, अग्र–शिरा छोटा (एक्यूमिनेट) डंठल के पास कटाव नहीं के बराबर स्वाद काम तेज, रेशे नहीं होते, एसेंसिअल आइल 0.10 प्रतिशत ।
4.	मीठा	पतला डंठल, लेमिना मोटा, पीले–पीले धब्बे, नोक छोटी व मोथरी, स्वाद अच्छा और मीठा, इसमें रोग का प्रकोप अधिक होता है।
5.	साँची	पत्ती ह्दयाकार व अंडाकार, नोक लम्बी नुकीली, डंठल बंगला से छोटा, स्वाद तीखा, एसेंसिअल आइल 0.08 प्रतिशत।
6.	अंडमान	पत्ती लगभग गोल, नोक नुकीली छोटी, डंठल के पास कटाव बंगला के बराबर, नसें मोटी, डंठल छोटी।

लगभग आधे घंटे तक डुबोकर रखें फिर रोपाई करें। बोर्डो–मिश्रण से उपचारित बेलों में यदि कालिख (करखा) भी जमी हो तो वह भी नष्ट हो जाती है।

बांसों की कतार के सहारे सपरा बना लेते हैं अर्थात एक फुट चौड़ी और लगभग 4 इंच ऊँची मेड़ बना लेते हैं और इन्हीं में बेलों का रोपण किया जाता हैं। मध्यप्रदेश में प्रायः पान की बेल की दो गाँठ और एक पत्ती रोपण के लिए उपयोग करते है, जबकि महाराष्ट्र व दक्षिण भारत में 5–7 पान की बेल का रोपण किया जाता है। रोपण जुलाई–अगस्त के महीनो में किया जाता है, जैसे ही बेल में जड़ें निकल आती हैं बेल को खड़ा करके बाँध देते हैं, बेल को इंडोल ब्यूटेरिक एसिड (सेरेदेस्स वी.) में डुबोकर रोपण करने से जड़ें शीघ्र निकल आती हैं। रोपण करने के लिए मेड में चौड़ाई के दूसरे छोर पर 6–6 इंच कलमों का जोड़ा रोपण करते हैं। यह पद्धति छतरपुर जिले में प्रचलित है। कटनी जिले के पान उमरिया व बिलहरी, गाँधी ग्राम में मेड़ों के बीचोंबीच चार कलमें लगाते हैं। कलम लगाने के बाद ऊपर से सूखी घास ढक देते हैं और सिंचाई कर देते हैं, जिससे मिट्टी में आद्रता बनी रहती हैं। रोपाई अप्रैल–मई के महीने में की जाती है। बीच–बीच में पान की बेलों को पलटना होता है जिसे फेरा कहते हैं। यह पान–फसल को खराब होने से बचाता है। बेल के साथ लगे पान को पड़ी कहा जाता है, तथा फसल कीमत बाजार में अधिक मिलती है।

पान की विभिन्न किस्में

पान की पत्ती ह्दय के आकार की होती है किन्तु किस्मों के अनुसार आकार, रंग, पत्ती के स्वाद, सुगंध, नसों व किनारों में अंतर होता है, उत्तर भारत में प्रायः पान में फूल नहीं आते हैं किन्तु महाराष्ट्र में कपूरी जाति के पान में प्रतिवर्ष फूल आते हैं।

सिंचाई की विधियां

पम्प व पाइप द्वारा सिंचाई करना सुविधाजनक है और समय भी कम लगता है। सिंचाई करते समय पान बेलों को सीधी धार से बचाना चाहिये। नई रोपित फसल पर सिंचाई में विशेष सावधानी बरतना चाहिये, क्योंकि उनमें जड़ों का अंकुरण हुआ नहीं होता। ऐसे में 2–3 दिनों के अंतराल से आवश्यकतानुसार पानी का छिड़काव कर बेलों की जीवन रक्षा करना अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है। पानी देने के बाद एवं पान तोड़ने के बाद बरेजे में प्रवेश नहीं करना चाहिए, इस समय पान के बेलों में उत्पन्न घाव व नाजुकता रोगों के संक्रमण के लिए उपयुक्त अवस्था होती है। सितम्बर से नवम्बर माह में बेलों की बढ़वार बहुत तेजी से होती है। तथा इस समय जितना अधिक पानी संतुलित तरीके से दिया जाये उतनी ही तीव्रता से बेल का विकास होता है। बरेजों में दोनों पारियों के मध्य छोटे–छोटे गड्ढे कर दिये जाते है ताकि पानी बेलों को सींचते समय इनमें भर जाये और बेलों की जड़ों के पास नमी बनी रहे।

इस समय में प्रत्येक 6–7 दिनों में एक पत्ती बेल से निकलती हैं। इसी तरह बेल उतारते समय भी पानी की आवश्यकता अधिक होती है।

पान के प्रमुख रोग व कारक

पान में बीज न होने के कारण इसका उत्पादन वानस्पतिक तरीके से किया जाता है। नई रोपणी के लिए पान बेल का टुकड़ा जिसमे गाँठ होती है लगाने के लिए उपयोग किया जाता है। अतः बेलों के माध्यम से रोग साल दर साल फैलता रहता है। पान के रोगों का प्रसार कई विधियों से होता है, यथा– बेल द्वारा, मिट्टी द्वारा, वायु द्वारा और पानी द्वारा। पद–गलन बीमारी द्वारा सर्वाधिक हानि प्रतिवर्ष होती है तथा यह रोग बेल, मिट्टी, वायु और पानी के माध्यम से फैलता है इसी कारण से यह महामारी का रूप ग्रहण कर लेता है। बोई जाने वाली बेलों में रोग–कारक फफूंद विद्यमान रहती है और इसमें रोग के लक्षण दिखाई नहीं देते हैं, अथवा कृषको को इसकी जानकारी नहीं रहती है। रोगित बेलों व पत्तियों को निकट के पानी के स्त्रोत में विसर्जित किया जाता है जिससे फफूंद सिंचाई जल में मिल जाता है और ऐसे पानी द्वारा सिंचाई करने पर स्वस्थ बेल तथा बरेजे भी संक्रमित हो जाते हैं।

इसी प्रकार अन्य रोग जैसे वीक्ष (*एंथ्रोकनोज*), गदली (*स्कलेरोसियम*) शाकाणु पर्ण दाग (नात्क या चिटका), बुकनी रोग (दहिया) और सूत्र–कृमि (जड़ों की गाँठ) भी बीज, हवा, अथवा मिट्टी से फैलते हैं। वीक्ष (*एंथ्रोकनोज*) रोग संक्रमित बेल के रोपण द्वारा फैलता है, जबकि गदली (*स्कलेरोसियम*) रोग के रोगाणु मिट्टी में रहते हैं। बेलों के रोपण बाद फफूंद आक्रमण कर बेल की जड़ों के पास की जमीन में उगकर दूसरी बेलों तक पहुँच जाती है। यह फफूंद सरसों जैसे छोटे दाने बनाता है जो बरेजों में कार्य करने वालों के द्वारा तथा सिंचाई के पानी द्वारा बहकर बरेजे में फैलता है। इसके अलावा शाकाणु पर्ण दाग (नात्क) का शाकाणु सींचते समय पानी की छींटों से फैलता है। इसके अलावा रोगी बेलों का रोपण करने से भी यह रोग फैलता है। शाकाणु न केवल पर्ण दाग उत्पन्न करते हैं किन्तु वीक्ष रोग भी बेल के तने में लगता हैं जिससे प्रतिवर्ष हानि होती है। बुकनी रोग हवा द्वारा एक बेल से दूसरी बेल व एक बरेजे से दूसरे बरेजे में प्रवेश करता है।

1. **पद गलन व पत्ती के धब्बे** – इस रोग को सूखा, गुल, जड़–सड़न रोग के नाम से भी जाना जाता है। यह *फाइटोप्थोरा पैरासिटिका* नामक फफूंद द्वारा होता है।

2. **सूखा पद गलन रोग** – इसे रातडिया या काला तना के नाम से भी जाना जाता है, *राइजोक्टोनिया बटाटीकोला* नामक फफूंद द्वारा होता है। यह पुराने बरेजों में विशेष रूप से देखा जाता है।

3. **पद–गलन (गदली) रोग** – एक *स्कलेरोसियम रोल्फसाई* व *स्कलेरोटिनिया*–फफूंद द्वारा उत्पन्न होता है।

4. **वीक्ष (एंथ्रोकनोज) रोग** – *कोलेटोट्राइकम केपसिसी* फफूंद द्वारा होता है।

5. **पाउडरी मिल्ड्यू (बुकनी)** – *ओपेडियम पाईपेरिस* फफूंद द्वारा होता है।

6. **शाकाणु पत्ती का चिता रोग** – इसे नाकत, चिटका झुलसन एवं तने का काला रोग भी कहते हैं। *जेन्थोमोनास कम्पिसित्रस पी.व्ही. बेटलीकोला* नामक शाकाणु द्वारा होता है।

पद गलन व पत्ती के धब्बे रोग के लक्षण

इस रोग के लक्षण सबसे पहले पान की पत्तियों पर जून माह में दिखने लगते है। बेल की सबसे ऊपर की पत्ती काली पड़ कर मुड़ जाती है। जिसे "लाफा" कहते हैं। वातावरण में आर्द्रता बढ़ने के साथ पत्तियों पर छोटे काले पर बड़े–बड़े धब्बे दिखाई देने लगते है। पत्ती पर पड़े धब्बों को सूर्य के प्रकाश की ओर रखकर देखा जाये तो धब्बे काले, गोल, लहरदार दिखाई पड़ते है। गोले गोले के चारों ओर बड़ा गोला दिखाई पड़ता है। रोग–ग्रस्त पत्तियां बेल से झड़ जाती है। झड़ी हुई पत्तियों से रोग जमीन में फैल जाता है और जड़ों पर आक्रमण कर पहले उनकी ऊपरी परत को सड़ाता है बाद में पूरी जड़ सुखकर पतली पड़ जाती है। रोग–ग्रस्त बेल का तना जमीन के पास से काला पड़कर लसलसा रेशेदार हो जाता है, छूने पर चिपचिपापन महसूस होता है। ऐसी बेल को फाड़ने पर बीच में काली लकीरनुमा संरचना दिखाई देती हैं। इस रोग का यह प्रमुख लक्षण हैं। ऐसी रोग–ग्रस्त बेलें पहले तो स्वस्थ दिखती है किन्तु नवंबर माह में अचानक मुरझाने लगती है अनुकूल वातावरण में बरेजे की सारी बेलें सूख जाती है।

बोई जाने वाली बेल रोग– मुक्त एवं स्वस्थ हों तथा बरेजे की भूमि भी स्वस्थ हो अथवा उपचारित की गई हो ऐसे उपाय करने से ही इस रोग से बचा जा सकता है। एक बार रोग का प्रवेश हो जाने पर हानि से बचना कठिन है।

बोने के लिये बेल के ऊपरी हिस्से को लेना चाहिए जोकि जमीन से लगभग एक मीटर की ऊँचाई पर लगा हो।

बेलों को बोने से पूर्व बोर्डो मिश्रण के 1 प्रतिशत घोल में लगभग 20 मिनट तक उपचारित करना चाहिए।

बेल–रोपण के पूर्व जमीन में 1 प्रतिशत बोर्डो मिश्रण का छिड़काव 2.5 लीटर प्रति मीटर की दर से पारियों में करें। दूसरे दिन पारियों की मिट्टी को हाथ से अच्छी तरह मिलाकर बेल लगाएं।

जून के अंतिम सप्ताह से 0.5 प्रतिशत बोर्डो मिश्रण का छिड़काव 2.5 लीटर प्रति मीटर की दर से पारियों में जड़ों के पास करें। नवंबर माह तक 15 दिनों के अंतराल पर नियमित रूप से छिड़काव करें जिससे रोग का प्रकोप बरेजे में न हो सके और बरेजा स्वस्थ बना रहे।

वर्षा के अंतिम दिनों में यदि पत्तों पर धब्बे अधिक दिखाई दें तो कॉपरऑक्सीक्लोराइड अथवा अन्य कोई ताम्रयुक्त फफूंद–नाशक दवा का 0.2 प्रतिशत एवं स्ट्रेप्टोसाईक्लिन 3 ग्राम प्रति लीटर घोल में मिलाकर छिड़काव अगस्त माह तक एक से दो बार करें।

रोग ग्रस्त पत्तियों, बेल, जमीन में सड़कर गिरी हुई पत्तियों को बरेजे के बाहर एक गढ्ढे में प्रतिदिन डालते रहें यह कार्य पूरे वर्षा ऋतु के दौरान नियमित रूप से करें। जिससे रोग का प्रसार न होने पाए।

सूखा पद–गलन रोग

यह रोग *राइजोक्टोनिया बटाटीकोला* नामक फफूंद द्वारा होता है। इस रोग की उग्रता प्रायः मई–जून के माह में अधिक पाई जाती हैं ।

जमीन के अंदर वाला बेल का भाग काला पड़ जाता है और जड़ें काली पड़कर सड़ जाती हैं। रोग–ग्रस्त बेल को फाड़ने पर अंदर का भाग गुलाबी रंग का दिखाई देता है। रोगित बेलों बाहर से भी गुलाबी दिखती है और मध्य में एक काली सी रेखा दिखाई पड़ती है। अन्त में बेले मुरझाकर सूख जाती है। इस रोग का प्रकोप ग्रीष्म ऋतु में अधिक होता है।

तना सड़न (गंदली) रोग

यह रोग *स्कलेरोशियम रोल्फसाई* व *स्क्लरोटिनिया* फफूंद द्वारा उत्पन्न होता है। इस रोग का प्रकोप प्रायः अप्रैल–मई के माह में अधिक होता है। उष्ण और आद्र वातावरण इसके बेहद अनुकूल होता है।

भूमि में कपास के सफेद रेशों की तरह फफूंद उग आती है। जिससे बेल प्रभावित होती है। इस फफूंद में छोटी–छोटी कई सफेद–भूरी गोल गठानें दिखाई देती है। जो बाद में राई के दाने की तरह भूरे रंग की हो जाती है।

रोग–ग्रस्त बेल सड़ जाती है। बरेजे में कार्य करने वालों के पैरों में चिपककर या सिंचाई द्वारा फफूंद फैलती है।

सूखा पद–गलन रोग एवं तना सड़न (गंदली) रोग दोनों ही मृदा जनित रोग हैं अतः 5 किलोग्राम ट्रायकोडर्मा + 100 किलोग्राम सड़ी गोबर खाद द्वारा मृदा उपचार कर इनका नियंत्रण संभव होता है।

वीक्ष (एंथ्रोकनोज) रोग

यह रोग *कोलेटोट्राइकम केपसिसी* फफूंद द्वारा होता है। इसका प्रकोप सालभर बना रहता है। यह रोग–ग्रसित बेलों के रोपण द्वारा इसका प्रवेश स्वस्थ बरेजों में होता है।

पान के पत्तों पर भूरे रंग के विभिन्न आकार के धब्बे दिखते हैं जिनकी सतह खुरदुरी होती है। पुराने धब्बे अधिक काले दिखाई देते है और इन धब्बों के मध्य फफूंद के बीजाणु बन जाते है। प्रभावित पत्तियां गिर जाती हैं। जिससे उत्पादन में कमी आ जाती है। पत्तियों का आकर खराब हो जाने के कारण कीमत कम मिलती है।

डाइथेन एम–45 दवा का 2 ग्राम चूर्ण प्रति लीटर पानी के मान से बेलों व पत्तों को अच्छी तरह से तर कर देना चाहिए। 15 दिनों के अंतर से दो छिड़काव में इस रोग का नियंत्रण हो जाता है।

सफेद चूर्णित रोग (रंगा)

इसे पाउडरी मिल्ड्यू (बुकनी) रोग भी कहा जाता है। यह *ओपेडियम पाईपेरिस* फफूंद द्वारा होता है। यह रोग शीत ऋतु में अपना प्रकोप दिखाता है। विशेषकर जब हवा में नमी की मात्रा कम हो तो यह बहुत तेजी से फैलता है, जिससे पान मे पतझड़ हो जाता है और फसल को बहुत नुकसान पहुँचता है।

पत्ती की निचली सतह पर छोटे–छोटे क्षेत्र में सफेद चूर्ण सा एकत्र हो जाता है। तथा प्रभावित पत्ती का ऊपरी भाग पीला पड़ जाता है। धीरे–धीरे पत्ती पूरी तरह से पीली पड़ जाती है व लाल रंग की हो जाती है।

रोग के लक्षण दिखने के साथ ही सल्फेक्स या वेट–सल्फ के 0.3 प्रतिशत घोल का छिड़काव पत्तियों के दोनों तरफ करना चाहिए। 45 ग्राम वेट–सल्फ को एक लीटर पानी में घोलकर व छानकर एक स्प्रेयर पम्प में डालकर शेष पानी (14 लीटर) भरकर 15 दिनों के अन्तराल से छिड़काव दोहराना चाहिये जिससे रोग पूरी तरह से नियंत्रित हो जाये। कैराथेन 1 एम.एल. / लीटर पानी के साथ छिड़काव कर के भी नियंत्रण किया जा सकता है।

शाकाणु जनित रोग (*जेंथोमोनास केम्पेस्टरिस विटीकोला*)

शाकाणु अत्यन्त सूक्ष्म जीव होते है यह आँखों से दिखाई नहीं देते हैं। शाकाणु पर्ण दाग, झुलसा तथा तने के धब्बे एक बड़ी समस्या के रूप में पान कृषकों के मध्य उत्पन्न हो गए हैं।

पर्ण दाग : पत्तियों पर शुरू में पीलापन लिए हुए धब्बा दिखता है जो धीरे–धीरे पीला पड़कर काला हो जाता है। धब्बे के चारों ओर पीली आभा दिखाई पड़ती है। पत्ती के दूसरी ओर धब्बे वाले क्षेत्र मे सफेद चमकदार परत दिखाई देती है। पत्तियां सड़ कर गिर जाती है। कम रोगित पत्तियां तोड़ने पर भी बाद में सड़ जाती है।

सूत्र कृमि जनित रोग

मिलाईडोगाईनी इनकागनिटा नामक सूत्र–कृमि प्रमुख रूप से सक्रिय सूक्ष्मजीव है। पान की जड़ों में छोटी–छोटी गांठे पड़ जाती हैं जो रोग का प्रमुख लक्षण है। इन्ही गांठो में असंख्य सूत्र–कृमि रहते हैं। भूमि के ऊपर बेल में ऐसे लक्षण उत्पन्न होते हैं, जैसे पोषक तत्वों और पानी की कमी हो गई हो, बेलें छोटी रह जाती हैं और पीली पड़कर सूखने लगती है। सूत्र–कृमि का प्रकोप अधिक होने पर पान की फसल में खाद

और पानी देने पर भी रोग का प्रभाव कम नहीं होता हैं। बलुई और अच्छे निथार वाली भूमि में इनका प्रकोप अधिक होता है। रोग थोड़ी जगह या पूरी फसल और खेत में हो सकता है।

सूत्र कृमि की उपस्थिति के कारण फसल की वृद्धि धीमी पड़ जाती है, तथा बेल द्वारा जो भी भोजन बनाया जाता है व जड़ों द्वारा अवशोषित किया जाता है सूत्र–कृमि के प्रभाव वश बेल को उपलब्ध नहीं हो पता है जिससे बेल कमजोर पड़ जाती है और उत्पादन में कमी आ जाती है। सूत्र–कृमि की अधिकता में पूरी की पूरी फसलें भी नष्ट हो जाती हैं। नियंत्रण हेतु नीम खली या कार्बोफ्यूरान 3 प्रतिशत दवा का प्रयोग करें।

पान के जड़–गठान रोग को कम करने का तरीका यह है कि पान की बोनी उन बरेजों में न करें जहाँ इस रोग का प्रकोप पूर्व में रहा है। ऐसे बरेजों को दो से तीन साल के लिए गहरी जुताई कर छोड़ देना चाहिये। सरसों, नीम, मूंगफली और महुआ आदि की खली का प्रयोग लाभदायक होता है।

पेडी के पान में इल्ली का प्रकोप होता है। कोकिस्ड्स, सूक्ष्म लाल मकड़ी सफेद मक्खी की समस्या भी आती है। उपरोक्त कीट नियंत्रण हेतु थायोमेथाक्जाम 5 ग्राम प्रति पम्प या इमिडाक्लोपिड 5 एम.एल. प्रति पंप प्रयोग करें। बोला, कलपेरी व कीन, लोहा लगने जैसे बीमारियाँ भी अपना प्रभाव दिखाती रहती हैं। अधिकांश पान उत्पादकों ने पान की फसल लेने से स्वयं को दूर कर लिया है, इसका प्रमुख कारण *फाईटोप्थोरा* नामक फफूंद व कलपेरी जीवाणु है। यह रोग पत्तों व लताओं से होता हुआ सम्पूर्ण बेल को सूखा देता है।

स्वस्थ व कीट–रहित उपचारित बेल उपयोग में लाएं। रोग–रोधी किस्मों का उपयोग करें। उर्वरकों व सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रयोग करें। खली का समुचित उपयोग उत्पादन में मदद करता है। कीट–व्याधियों का निदान समय पर अवश्य करें। रसायनों के छिड़काव के पूर्व पत्तों की तुड़ाई कर लें व अगली तुड़ाई दो सप्ताह के बाद करें। सूर्य–उपचारित जमीन को बरेजे के लिये अपनायें जिससे रोग–रहित वातावरण तैयार होने में मदद मिलेगी।

पोषक तत्व प्रबंधन

मूंगफली व अरंडी की खली 25 किलो को 150 लीटर पानी में 15 दिन तक सड़ाते हैं और समय–समय पर डंडे से चलाते रहते हैं। इस घोल का एक लीटर साफ भाग लेकर उसमें 10–12 लीटर पानी और मिलाकर फसल पर लगभग 40 दिनों के बाद छिड़काव करते हैं। अच्छी तरह से पकी हुई गोबर की खाद 10 किलो एक पाली में डालते हैं।

पान के लिये उर्वरकों की मात्रा निम्नानुसार है

नत्रजन – 160 किलो प्रति हैक्टेयर

स्फुर – 80 किलो प्रति हैक्टेयर

पोटाश – 40 किलो प्रति हैक्टेयर

स्फुर व पोटाश की संपूर्ण मात्रा को रोपाई से पूर्व 20 सेंटीमीटर गहरी नालियां बनाकर भर देते हैं और ऊपर से मिट्टी से ढँक देते है। मेड से इतनी गहराई पर उर्वरकों को देना आवश्यक है अन्यथा इनके संपर्क में आने पर बेल जल जाती है। नत्रजन को बरसात में 15 दिनों के अंतराल से देना चाहिये और शेष महीनों में 30 दिनों के अंतराल से देना चाहिये। खाद देने के बाद पर्याप्त सिंचाई करना आवश्यक है। पान की बेलें 50–60 सेंटीमीटर प्रति माह की दर से विकसित होती है। शीत ऋतु में यह वृद्धि दर कम हो जाती है।

बेल उतारना –

बुआई अथवा रोपाई के समय (मार्च–अप्रैल) यदि बरेजे की बेलें स्वस्थ है तो उन्हें नीचे उतर लेते हैं। नीचे की पत्तियां तोड़कर बेल को भूमि में दबा देते हैं और बेल के ऊपरी भाग (लगभग 2 फुट) को बाँसों में बाँध देते हैं। जमीन में दबी हुई गठानें से जड़ें निकल आती है और इस तरह उतारी हुई बेलें से दूसरे वर्ष अतिरिक्त उपज व अधिक लाभ प्राप्त होता है।

100 ग्राम पान में पाए वाले तत्व

तत्व	मात्रा	तत्व	मात्रा
जल	85.4 ग्राम	खनिज लवण	2.3 ग्राम
प्रोटीन	3.1 ग्राम	कैल्शियम	230 मिलीग्राम
वसा	0.8 ग्राम	स्फुर	40 मिलीग्राम
शर्करा	6.1 ग्राम	लौह	07 मिलीग्राम
रेशे	2.3 ग्राम	अविलेय लौह	3.5 मिलिग्राम
आयोडीन	0.034 मिलिग्राम	रीबोफ्लेविन	0.03 आई.यू.
निकोटिनिक अम्ल	0.7 आई.यू.	विटामिन सी	0.05 आई.यू.
थायमिन	0.07 आई.यू.	एसेंसिअल आइल	0.01 प्रतिशत

भारत माता के माथे की बिंदी, हमारी राजभाषा हिंदी

स्वच्छ दुग्ध उत्पादन तकनीक का महत्व

सुरेश चन्द कांटवा[1] एवं संदीप चौहान[2]
1. कृषि विज्ञान केन्द्र, जयपुर (राजस्थान)
2. कृषि विज्ञान केन्द्र, अमरकण्टक, अनूपपुर (म.प्र.)

स्वस्थ पशुओं से स्वच्छ वातावरण में साफ हाथों से स्वच्छ बर्तनों मे निकाला गया दूध स्वच्छ दूध कहलाता है। स्वच्छ दूध –स्वच्छ पशुओं से प्राप्त दूध जिसे साफ कपड़े से छानकर उसकी गंदगी हटा दी जाती है तथा इसमे अच्छी गंध आती है। तथा रोगजनक जीवाणु अनुपस्थित हो।

स्वच्छ दुग्ध उत्पादन के उद्देश्य

1. अच्छी गुणवत्ता का दूध प्राप्त करना।
2. स्वच्छ दुग्ध उत्पादन से दूध को रखने की गुणवत्ता बढ़ जाती है।
3. दूध से फैलने वाली बीमारियों को काफी हद तक रोका जा सकता है।

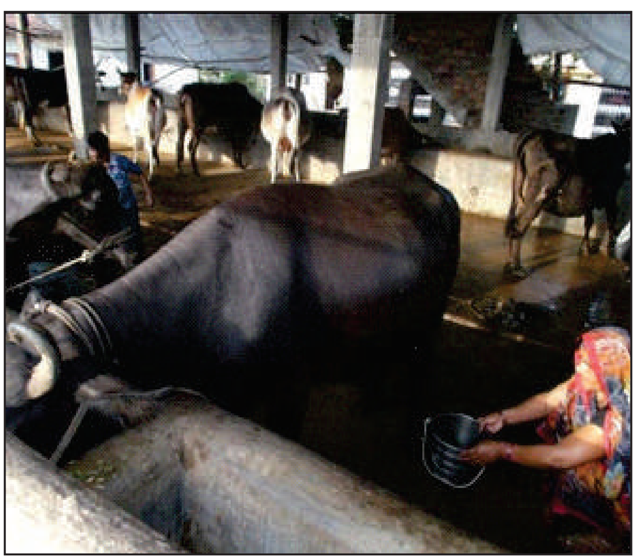

4. स्वच्छ दुग्ध से बेहतर गुणवत्ता के डेयरी उत्पाद जैसे– दही, छाछ, घी, मावा, आइसक्रीम, पनीर आदि बनाये जाते है।
5. स्वच्छ दूध उत्पादन पशुपालकों के लिये सामाजिक आर्थिक पहलू से भी बहुत फायदेमंद होता है। स्वच्छ दूध की ज्यादा कीमत मिलती है तथा आसानी से जल्दी बिक जाता है।
6. स्वच्छ दूध उपभोक्ता को दूध से फैलने वाली बीमारियों से बचाता है जैसे – क्षयरोग, आंत्र ज्वर, खूनी दस्त आदि।

स्वच्छ दूध उत्पादन का महत्व

1. स्वास्थ्य की दृष्टि से स्वच्छ दूध का उपयोग करना अति आवश्यक है क्योंकि दूषित दूध के उपयोग से अनेक प्रकार की बीमारियाँ लग सकती है। जैसे – क्षयरोग, माता रोग, खूनी पेचिस, दस्त आदि।
2. स्वच्छ दूध को अधिक समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है। दूषित दूध शीघ्र खराब होने लगता है।
3. स्वच्छ दूध से तैयार किये सभी दुग्ध पदार्थ उच्च श्रेणी के होते है। जैसे – दही, पनीर, खोआ, क्रीम, आइसक्रीम, घी आदि।

स्वच्छ दुग्ध उत्पादन की विधियाँ

निम्न लिखित तरीकों को अपनाकर स्वच्छ दुग्ध उत्पादन किया जा सकता है।

1. स्वच्छ दुग्ध उत्पादन में पशु का स्वास्थ्य बहुत महत्वपूर्ण होता है क्योकि वे पहले आपस में एक दूसरे में रोग फैलाते है बाद में दूध द्वारा उपभोक्ता को संक्रामक रोग पैदा कर सकते है। जैसे – क्षयरोग, दस्त आदि। अतः सारे पशु स्वच्छ दुग्ध उत्पादन के लिये स्वस्थ होने चाहिए।
2. पशुओं को जहाँ रखा जाता है एवं जहाँ दूध निकाला जाता है वहॉ का वातावरण साफ, धूल मिट्टी रहित, नमी रहित, होना चाहिए। पशुशाला की दीवारें साफ व गोबर रहित होना चाहिए। इसके साथ ही मक्खियों व कीटों का नियंत्रण भी आवश्यक है। ऐसा वातावरण साफ व स्वच्छ दुग्ध उत्पादन के लिये आवश्यक है।
3. स्वच्छ दुग्ध उत्पादन के लिये यह आवश्यक है कि दूध देने वाला पशु व दूध निकालने वाला व्यक्ति साफ सुथरा व स्वच्छ होना चाहिए। व ग्वाले को कोई संक्रामक बीमारी नही होनी चाहिए।
4. जिस बर्तन मे दूध निकालना है उसे पूर्णतया साफ रखे, ये बर्तन साफ एवं जीवाणु रहित होने चाहिए। बर्तनों की सफाई निम्नलिखित विधियों द्वारा करनी चाहिए।

   (अ) साफ पानी से धोना।

   (ब) गर्म पानी से धोना।

   (स) सोडा या राख का प्रयोग करना।

   (द) बर्तनों को धोने के बाद उल्टा कर साफ स्थान पर सुखाना।
5. पशु को दूध निकालते समय आहार खिलाना चाहिए ताकि पशु खाने में व्यस्त रहे ताकि पैर व पूंछ नही हिलायेगा जिससे स्वच्छ दुग्ध प्राप्त हो सके।
6. सबसे पहले स्वस्थ व जवान पशु का दूध निकालें, उसके बाद स्वस्थ व बूढ़े पशुओं का व अन्त में बीमार पशुओं का दूध निकालना चाहिए।
7. दूध को छानकर उसमे उपस्थित गंदगी, धूल मिट्टी, चारा आदि हटाया जा सकता है, दूध को छानने के लिये साफ कपड़ा काम में लेते हैं जिसे नियमित रुप से धोकर साफ करना चाहिए।
8. दूध निकालने के पश्चात् इसे बड़े बर्तनों में रखकर ठण्डे पानी या बर्फ युक्त ठण्डे पानी में रख देते हैं। जिससे यह काफी समय तक खराब नहीं होता है।
9. दूध पूर्ण हस्त विधि से निकालना चाहिए।

हिन्दी महानतम स्थान रखती है।

– अमरनाथ झा

ट्रांसजेनिक फसल–जैवसुरक्षा और भारत में विनियम

निशी मिश्रा, प्रकाश एन. तिवारी, विनोद कुमार साहू,
सुषमा नेमा, कीर्ति तंतवाय, एल.पी.एस.राजपूत
जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय जबलपुर (म.प्र.)

परिचय

लगभग 23 वर्ष पहले अनुवांशिक इंजीनियरिंग के विभिन्न तरीके विकसित हुए। अनुवांशिक रूप से संशोधित जीएम फसलों का वाणिज्यकरण प्रारंभ हो गया और इसे कई देशों में व्यापक रूप से अपनाया भी गया। ट्रांसजेनिक पौधों में वांछनीय लक्षणों से संबंधित एक या एक से अधिक जीन उसी प्रजातियों, किसी अन्य पौधे के प्रजातियों से या पूरी तरह से असंबंधित जीवों से लाया जा सकता है। अनुवांशिक इंजीनियरिंग के माध्यम से लाए गए लक्षण को अक्सर पारंपरिक प्रजनन द्वारा समान प्रजाति के दूसरे पौधों में आसानी से लाया जा सकता है, चूंकि अनुवांशिक इंजीनियरिंग पौध प्रजातियों की सीमाओं के पार प्रत्यक्ष जीन हस्तांतरण को सुगम बना देता है। अतः कुछ लक्षण जो अतीत में असंभव समझे गए थे वर्तमान में आसानी से पौधों में आत्मसात किए जा सकते हैं।

पहली पीढ़ी के जी.एम. फसलों में खरपतवारनाशी एवं कीट प्रतिरोध फसलों (सोयाबीन, मक्का, कपास) का विकास किया गया है। द्वितीय पीढ़ी के जी.एम. फसलों में उच्च पोषक तत्व जैसे उत्तम गुणवत्ता का समावेश किया गया है। उदाहरणतः सर्वप्रथम विटामिन ए की कमी को दूर करने हेतु ''गोल्डनराइस'', खनिज तत्वों तथा अन्य विटामिनों से संबंधित मक्का, ज्वार, कसावा और केले की प्रजाति को विकसित किया गया। हालांकि जीएम फसलों के बीज थोड़े महंगे हैं अपितु इन फसलों के उत्पादन में मशीनरी, ईंधन और रसायनिक कीटनाशकों पर कम लागत लगती है। खेतों में वर्षा जल के प्रवाह का नियंत्रण तथा रासायनिक कीटनाशकों एवं खरपतवारनाशी रसायनों के उपयोग में कमी का महत्वपूर्ण पर्यावरणीय लाभ दृष्टिगोचर होता है। जी.एम. फसलों के प्रयोग से मृदा एवं जल प्रदूषण में कमी होती है।

कृषि जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उत्तरोत्तर अनुसंधान एवं विकास के फलस्वरूप कई देशों में आनुवांशिक रूप से संशोधित फसलों के कृषि उत्पादन एवं प्रसार का अनुमोदन किया गया है। जैव प्रौद्योगिकी फसलों के व्यवसायीकरण के 21वें वर्ष में 189.8 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र पर कुल 24 देशों में 1700000 किसानों द्वारा जैव प्रौद्योगिकी फसलों की खेती की गई है। सन् 1996 में जब पहली जैव प्रौद्योगिकी फसल की खेती केवल 1700000 हैक्टेयर क्षेत्र पर की गई थी। इस प्रकार सन् 2017 में कुल 189.8 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र का आच्छादन 112 गुना वृद्धि का संकेत लाया है।

भारत में मार्च 2002 में भारत सरकार द्वारा पहली ट्रांसजेनिक फसल के रूप में बीटी कपास को 3 वर्षों की अवधि के लिए वाणिज्यिक उत्पादन हेतु अनुमोदित किया गया था। कपास के अलावा, भारत में 20 से अधिक फसलों पर सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के 50 संगठनों में अनुसंधान एवं विकास का कार्य किया जा रहा है। इनमें से 13 फसलों को भारत में सीमित क्षेत्र परीक्षणों के लिए अनुमोदित किया गया है।

हालांकि ट्रांसजेनिक फसलों द्वारा कृषि क्षेत्र की सबसे बड़ी चुनौतियों में से कुछ को पूरा करने का व्यापक रूप से दावा किया जाता है, लेकिन सभी नई प्रौद्योगिकियों की तरह इससे भी कुछ जोखिम होने की संभावना व्यक्त की जाती है। इसका कारण यह तथ्य का होना है कि ट्रांसजेनिक फसलें अप्राकृतिक जीन संयोजन से युक्त होती है जिससे मानव स्वास्थ्य, पर्यावरण तथा गैर लक्षित प्रजातियों पर हानिकारक प्रभाव होने की संभावना होती है जो कि अधिकाधिक ट्रांसजेनिक फसलों के क्षेत्र परीक्षण एवं वाणिज्यकरण की अनुमति दी जा रही है, तथापि मानव स्वास्थ्य, पर्यावरण और जैवविविधता पर इससे संभावित दुष्प्रभावों के बारे में चिंता व्यक्त की जा रही है।

जैवसुरक्षा

जैव सुरक्षा के रूप में अधिक से अधिक जीएम फसलों का क्षेत्र परीक्षण एवं व्यवसायीकरण किया जा रहा है ताकि मानव स्वास्थ्य एवं पर्यावरण में जीएम फसलों से संभावित जोखिम के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त हो सके। जैव सुरक्षा द्वारा पर्यावरण और व्यक्तिगत सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए कई सिद्धांत, प्रक्रिया एवं नीतियों का वर्णन करती है। अनुवांशिक इंजीनियरिंग अनुसंधान एवं विकास गतिविधियों में जैव सुरक्षा की आवश्यकता को स्वीकार करते हुए जैवसुरक्षा पर एक अंतर्राष्ट्रीय बहुपक्षीय समझौता 'जैव सुरक्षा पर कार्टागेना प्रोटोकोल' 165 संयुक्त राष्ट्र देशों, नीयू और यूरोपीय संघ सहित 167 दलों द्वारा अपनाया गया है। यह प्रोटोकॉल 11 सितंबर 2003 को लागू किया गया था, इसके मुख्य उद्देश्य निम्न है :

1. जीवित संशोधित जीवों के सुरक्षित पारसीमा आंदोलन के लिए प्रक्रियाओं को स्थापित करना।

2. जोखिम मूल्यांकन के लिए सिद्धांतों और पद्धति का सामंजस्य के साथ–साथ जैव सुरक्षा समाशोधन हाउस (बीसीएच) के माध्यम से सूचना साझा करने के लिए एक तंत्र स्थापित करना।

जीई और जीएमओ के क्षेत्र में अनुसंधान कार्य के लिए देश के उपयुक्त विनियामक प्राधिकरणों से पूर्व अनुमोदन की आवश्यकता होती है। जैव सुरक्षा मुद्दों को न्यूनतम करने के लिए प्रदान किए गए दिशा–निर्देशों का पालन करना अनिवार्य है। आई.बी.एस.सी. आयोजित किए जाने वाले प्रयोगों के सुरक्षा स्तर के अनुसार आवश्यक बुनियादी जैव सुरक्षा उपकरणों के अस्तित्व को सुनिश्चित करता है। पूरी दुनिया में जैव सुरक्षा के बारे में जीएमओ, प्रशासकों, नीति निर्माताओं, पर्यावरणविदों और आम जनता के शोधकर्ताओं, निर्माताओं और उपयोगकर्ताओं में जागरूकता बढ़ रही है। ट्रांसजेनिक फसलें जहरीली नहीं होती हैं और न ही पर्यावरण में प्रसार की संभावना होती है। हालांकि, विशिष्ट फसलें उन गुणों के उपन्यास संयोजन के आधार पर हानिकारक हो सकती हैं जो उनके पास हैं। इसका मतलब यह है कि जीएमओ के उपयोग से जुड़ी चिंताएं विशेष रूप से जीन जीव संयोजन के आधार पर बहुत भिन्न हो सकती हैं और इसलिए जोखिम मूल्यांकन और प्रबंधन के लिए जैव सुरक्षा दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है।

प्रमुख जैव सुरक्षा चिंताएँ इन श्रेणियों में आती हैं:

मानव और पशु स्वास्थ्य की जैव सुरक्षा

1. उत्पाद की प्रकृति या उपापचय में परिवर्तन और जीन हस्तांतरण से उत्पन्न जीवों की संरचना के कारण विषाक्तता का खतरा होता है।
2. ट्रांसजेनिक फसलों से उत्पन्न हुई नई प्रोटीन जिनका खाद्य पदार्थ के रूप में सेवन करने से कभी–कभी एलर्जी का खतरा भी होता है।
3. यह स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं को भी बढ़ाता है क्योंकि इसमें चयनात्मक मारकर के रूप में एंटीबायोटिक प्रतिरोध के लिए उपयोग किए जाने वाले जीन जो कि सूक्ष्मजीवों में हस्तांतरण के पश्चात उन्हें एंटीबायोटिक प्रतिरोधी बना देता है।

पारिस्थितिक चिंताएँ

1. प्रतिरोध से जुड़े लक्षणों के लिए पर–परागण के कारण जीन प्रवाह के परिणाम स्वरूप सहिष्णु या प्रतिरोधी खरपतवारों का विकास हो सकता है जिन्हें मिटाना मुश्किल होता है।
2. जीएम फसलों से विलुप्त प्राय पौधों की प्रजातियों की जैवविविधता का क्षरण एवं प्रदूषित जीन पुल उत्पन्न हो सकता है।
3. आनुवंशिक क्षरण हुआ है क्योंकि किसानों ने पारंपरिक किस्मों के उपयोग को मोनोकल्चर के साथ बदल दिया है।

पर्यावरण चिंताएँ

1. लक्ष्य और गैर– लक्ष्य कीटों की जनसंख्या की गतिशीलता पर ट्रांसजेनिक पौधों का प्रभाव, द्वितीय कीट समस्याएं, कीट संवेदनशीलता, नए कीट जीव विज्ञान का विकास, जीन अभिव्यक्ति पर पर्यावरणीय प्रभाव, कीट आबादी में प्रतिरोध का विकास, शाकनाशी के प्रतिरोध का विकास।

2. पर्यावरण में जीन पलायन– आकस्मिक पार प्रजनन जीएम पौधों और पराग हस्तांतरण के माध्यम से पारंपरिक किस्में जीएमओ जीन के साथ पारंपरिक स्थानीय विविधता को दूषित कर सकती हैं, जिसके परिणाम स्वरूप किसानों की पारंपरिक किस्मों का नुकसान हो सकता है।

सामाजिक सोच विचार

1. उपभोक्ता प्रतिक्रिया आनुवंशिक रूप से संशोधित खाद्य पदार्थों के जोखिम और लाभों के बारे में धारणाओं पर निर्भर करती है। मीडिया, व्यक्तियों, वैज्ञानिकों और प्रशासक, राजनेताओं और एनजीओ के पास जीएम खाद्य पदार्थों के लाभों के बारे में लोगों को शिक्षित करने की जिम्मेदारी है।

सामाजिक आर्थिक और नैतिक विचार

1. उपभोक्ताओं और किसानों को संभावित लाभ। बढ़ते बीज बाजार के कारण, विकासशील देश कुछ आपूर्तिकर्ताओं पर निर्भर हो सकते हैं।
2. जी.यू.आर.टी. जीन उपयोग प्रतिबंध प्रौद्योगिकी। भारत ने पीपीवी और एफआरए, 2001 के तहत पंजीकरण के लिए पौधों की विविधता में जी.यू.आर.टी. के उपयोग पर पूरी तरह से प्रतिबंध लगा दिया है

भारत में नियामक तंत्र

जैव सुरक्षा नियम जोखिमों के मूल्यांकन और जैव प्रौद्योगिकी के पर्यावरणीय सुरक्षित अनुप्रयोगों को सुनिश्चित करने के लिए अपनाई गई नीतियों और प्रक्रियाओं को कवर करते हैं। भारत में ट्रांसजेनिक फसलों के लिए नियामक ढांचे में निम्नलिखित नियम और दिशा निर्देश शामिल हैं।

क) नियम और नीतियां

1. पर्यावरण संरक्षण अधिनियम (1986) के तहत नियम, 1989
2. बीजनीति, 2002

ख) दिशा निर्देशः–

1. पुनरावर्ती डीएनए दिशा निर्देश, 1990

2. ट्रांसजेनिक फसलों में अनुसंधान के लिए दिशा निर्देश, 1998

नियमों के कार्यान्वयन के लिए पहचानी जाने वाली दो मुख्य एजेंसियां पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय और जैव प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार हैं। नियमों ने सक्षम अधिकारियों और नियमों के विभिन्न पहलुओं से निपटने के लिए ऐसे अधिकारियों की संरचना को भी परिभाषित किया है। नियमानुसार 6 सक्षम अधिकारी हैं।

1. पुनः संयोजक डीएनए सलाहकार समिति (आर.डी.ए.सी.)
2. आनुवांशिक हेरफेर पर समीक्षा समिति (आर.सी.जी.एम.)
3. जेनेटिक इंजीनियरिंग अनुमोदन समिति (जी.ई.ए.सी.)
4. संस्थागत जैव सुरक्षा समितियां (आई.बी.एस.सी.)
5. राज्य जैव सुरक्षा समन्वय समितियां (एस.बी.सी.सी.)
6. जिला स्तरीय समितियां (डी.एल.सी.)।

इनमें से, नई ट्रांसजेनिक फसलों के अनुमोदन में शामिल तीन एजेंसियां हैंः–

1. आई.बी.एस.सी. – आनुवंशिक रूप से संशोधित जीवों में संस्थान स्तर के अनुसंधान की निगरानी के लिए प्रत्येक संस्थान में सेट–अप।
2. आर.सी.जी.एम.– जीएमओ और छोटे पैमाने के क्षेत्र परीक्षणों में चल रही अनुसंधान गतिविधियों की निगरानी के लिए डीबीटी पर सेट–अप।
3. जी.ई.ए.सी. – पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय में बड़े पैमाने पर परीक्षण और आनुवंशिक रूप से संशोधित जीवों की पर्यावरण रिलीज को अधिकृत करने के लिए।

डी.बी.टी. द्वारा गठित रिकॉम्बिनेंट डीएनए एडवाइजरी कमेटी (आर.डी.ए.सी.) राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जैव प्रौद्योगिकी के विकास पर ध्यान देती है और उपयुक्त सिफारिशें तैयार करती है। राज्य जैव प्रौद्योगिकी समन्वय समितियां (एस.बी.सी.सी.एस.) प्रत्येक राज्य में स्थापित की जाती हैं जहाँ जी.ओ.एम.एस. के अनुसंधान और अनुप्रयोग पर विचार किया जाता है, केंद्रीय मंत्रालय के साथ राज्य में जी.ओ.एम.एस. से संबंधित गतिविधियों का समन्वय किया जाता है। एसबीसीसी के पास निगरानी कार्य हैं और इसलिए उल्लंघन के मामले में निरीक्षण, जांच और दंडात्मक कार्रवाई करने की शक्तियां मिली हैं। इसी तरह, अनुसंधान और अनुप्रयोग में जीएमओ के उपयोग में लगे प्रतिष्ठानों में सुरक्षा नियमों की निगरानी के लिए जिला स्तर पर जिलास्तरीय समितियों (डी.एल.सी.) का गठन किया जाता है।

संदर्भ

1. ISAA-org (http://www-isaaa-org)
2. बीटी कपास पर ध्यान देने के साथ ट्रांसजेनिक फसलों से संबंधित जैव सुरक्षा मुद्दे। बायोटेक कंसोर्टियम इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली।
3. सुरेश कुमार, 2014 आनुवंशिक रूप से संशोधित जीवों के जैव सुरक्षा मुद्दे। जैव सुरक्षा, 3ः 2, 1000e150
4. एलनमचुघेन, 2012 जैव फसलों, खाद्य और जीएम विनियमन पर जीएम फसलों के विशेष मुद्दे का परिचय। जीएम फसल और खाद्य : कृषि में जैव प्रौद्योगिकी और खाद्य श्रृंखला, 3ः 1, 6–8

स्रोतः उषा किरण बेथा, आईसीएआर–इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ तिलहन अनुसंधान, राजेंद्रनगर, हैदराबाद।

हिन्दी हमारे देश और भाषा की प्रभावशाली विरासत है।

– माखनलाल चतुर्वेदी

अरहर फसल उत्पादन की वैज्ञानिक तकनीक

दीप सिंह सासोड़े, एकता जोशी, वर्षा गुप्ता, नीलम सिंह एवं नम्रता चौहान
राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

1. जलवायु : अरहर आर्द्र तथा शुष्क दोनों ही प्रकार के गर्म इलाकों में भली प्रकार उगाई जा सकती है लेकिन शुष्क भागों में इसे सिंचाई की आवश्यकता होती है। फसल की प्रारम्भिक अवस्था में पौधों की अच्छी वृद्धि के लिए गर्म तर अर्थात नम जलवायु की आवश्यकता होती है । बहुत अधिक वर्षा वाले क्षेत्र अरहर की खेती के लिए उत्तम नहीं होते हैं परन्तु 75–100 सेमी वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में अरहर की फसल सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है।

2. भूमि का चुनाव : अरहर की फसल के लिए बलुई दोमट व दोमट भूमि अच्छी होती है परन्तु इसकी खेती हर प्रकार की जमीन में की जा सकती है, जहाँ उचित जल निकास हो वह भूमि अच्छी होती है। अम्लीय तथा क्षारीय भूमि में इसकी खेती करना संभव नहीं है। हल्की दोमट भूमि इस फसल के लिये अधिक उपयुक्त होती है। मृदा में पर्याप्त मात्रा में चूना तथा भूमि का पी.एच. मान उदासीन होना चाहिए।

3. खेत की तैयारी : रबी की फसल की कटाई के बाद ग्रीष्म ऋतु में एक बार मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई कर देनी चाहिए। ग्रीष्मकालीन जुताई करने से खेत में पनपने वाले कीटों के अन्डे, बीमारियों के परजीवी तथा खरपतवार अधिक धूप एवं गर्मी से मर जाते हैं। इसके पश्चात् दो–तीन जुताईयाँ देशी हल अथवा कल्टीवेटर से करके भूमि को अच्छी तरह से भुरभुरा बना देना चाहिए। अरहर की बुआई के समय खेत समतल होना चाहिए अन्यथा वर्षा ऋतु में जगह–जगह पानी भरने से अरहर के पौधे मर जाते हैं।

4. प्रजातियाँ

संकूल प्रजातियाँ: आर.व्ही.ए 28, आई.सी.पी.एल. 87 (प्रगति), आई.सी.पी.एल. 87–119 (आशा), जे.ए. 3, जे.ए 4, जे.के.एम 189, आई.सी.पी.एल. 88–039, जे.के.एम. 7, यू.पी.ए.एस. 120, आई.सी.पी.एल. 8863 (मारूती).

संकर (हाइब्रिड) प्रजातियाँ : आर.व्ही.आई.सी.पी.एच. 2671, टी.जे.टी. 501,

खरगौन–2– यह किस्म मध्य प्रदेश में बोई जाती है, अगेती किस्म, जिसकी फसल अवधि 155–160 दिन होती है यह किस्म मध्य प्रदेश के निमाड़ व मालवा क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है।

ग्वालियर–3– यह पछेती किस्म, जिसकी फसल अवधि 240 दिन तथा पौधा लंबा व फैलने वाला, ज्वार के साथ मिलवाँ खेती के लिए उपयुक्त, बीज छोटा व हलके कत्थई रंग का, औसत उपज 20–25 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होता है।

5. बीज एवं बुवाई: अरहर का बीज सदैव उन्नतशील प्रजाति का प्रमाणित तथा स्वस्थ ही प्रयोग करना चाहिए। बीज कीटों द्वारा कटा हुआ नहीं बोना चाहिए इससे अंकुरण कम होता है तथा खेत में उपयुक्त पौध संख्या नहीं हो पाने से उपज पर बुरा प्रभाव पड़ता है। मिश्रित फसल में 4–8 किलोग्राम/हैक्टेयर की दर से बीज बोना चाहिए।

6. बीज उपचार : बोने से पूर्व बीज को फफूँदीनाशक रसायन जैसे थीरम अथवा कैप्टान 3 ग्राम दवा को एक किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करने पर फफूँदी जनित रोगों का प्रकोप कम हो जाता है। बीजों को फफूँदीनाशक रसायन से उपचारित करने के बाद राइजोबियम कल्चर से उपचारित करने पर अरहर की उपज में 15–20 प्रतिशत तक की वृद्धि होती है।

7. बीज बुवाई

बीजदर : जब अरहर की फसल को किसी अन्य फसल के साथ मिश्रित रूप में बोया जाता है तो 4–8 कि.ग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर की दर से बोया जाता है। अरहर की अकेली फसल में 12–15 कि.ग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर की दर से बोया जाता है। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 60–75 सेमी व पौधे से पौधे की दूरी 25–30 सेमी रखी जाती है। पंक्ति से पंक्ति व पौधे से पौधे की दूरी निश्चित करके हम प्रति इकाई पौधों की संख्या निर्धारित करते हैं। पंक्ति व पौधों की दूरी मिश्रित व अकेली फसल के अनुसार निश्चित की जा सकती है।

8. खाद एवं उर्वरक : दलहनी फसल होने के कारण नत्रजन की पूर्ति फसल के पौधे स्वयं करते है। प्रारम्भ में राइजोबियम जीवाणु की कार्यक्षमता बढ़ाने के लिये पौधों को 20–30 कि.ग्रा. नत्रजन/है. बुवाई के समय ही खेत में देते हैं।

मृदा परीक्षण कराकर फास्फोरस व पोटाश भी मृदा में आवश्यकतानुसार दिया जाता है। आमतौर पर इस फसल के लिये 80–100 कि.ग्रा. फास्फोरस व 40–60 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टेयर की आवश्यकता होती है।

9. बुवाई का समय: फसल की अगेती बुवाई करना लाभदायक रहता है। जिन क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा प्राप्त हो वहां पर 1–15 जून तक फसल की बुवाई कर देनी चाहिए। वर्षा पर निर्भर वाले क्षेत्रों में बुवाई जुलाई के प्रथम सप्ताह में ही कर देनी चाहिए, बुवाई के समय का प्रभाव उपज पर सीधा पड़ता है। जुलाई के प्रथम सप्ताह के बाद बुवाई करने से उपज में भारी कमी की संभावना रहती है।

10. बोने की विधिः बुवाई की विधि क्षेत्रीय प्रचलन व मिलवाँ तथा अगेती फसल के बोने के अनुसार करते हैं, जब अरहर की फसल को ज्वार व बाजरा आदि के साथ बोते हैं तब छिटकवाँ विधि का प्रयोग नही करना चाहिए, यह विधि त्रुटिपूर्ण है। अरहर की फसल को सदैव पंक्तियों में बोना उत्तम है। पंक्तियों की दूरी सदैव साथ बोई गई अन्य फसल जैसे मूंगफली, मक्का, बाजरा, मूंग, उड़द आदि पर निर्भर करती है। प्रतिकूल परिस्थितियों में अनुसंधान के आधार पर पाया गया है कि मेढ़ पर फसल की बोवाई करने से अधिक उपज प्राप्त होती है।

11. सिंचाई एवं जल निकास : इस फसल को सामान्यतः एक अथवा दो सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ती है। जब मृदा में नमी 50 प्रतिशत हो जाए तब फसल में सिंचाई करनी चाहिए। अरहर की फसल में फूल आने तथा फलियों में दाना पड़ते समय मृदा में नमी की कमी नहीं होनी चाहिए। अतः इस समय सिंचाई अवश्य करनी चाहिए। अरहर की पछेती बोई गई फसल को पाले से बचाने के लिये सिंचाई अवश्य करनी चाहिए। अधिक मात्रा में पानी भरने से तुरंत जल निकाल देना चाहिए।

12. खरपतवार नियंत्रणः अरहर की फसल खरीफ ऋतु में उगाये जाने के कारण खरपतवारों का प्रकोप बहुत अधिक मात्रा में होता है। खरपतवारों द्वारा कभी–कभी अरहर की फसल में 20–50 प्रतिशत तक का नुकसान हो जाता है। इसलिये अरहर की फसल में 1–2 निराई–गुड़ाई खुरपी की सहायता से करते हैं। पहली निराई फसल बोने के 20–25 दिन उपरांत जबकि दूसरी निराई फसल बोने के 40–45 दिन उपरांत करनी चाहिए।

- आक्सीफ्लुरोफेन 100–125 ग्राम/हे. बुवाई के 0–3 दिन बाद करने पर चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार को नियंत्रित करता है।
- इमेजाथापर 100 ग्राम/हे. बुवाई के 15–20 दिन बाद करने पर चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार एवं कुछ घास को नियंत्रित करता है।

13. प्रमुख कीट

फली वेधकः इसकी इल्लियां फलियों के अन्दर घुसकर हानि पहुंचाती हैं , क्षतिग्रस्त फलियों में छिद्र दिखाई देते हैं।

- **अरहर की फल मक्खीः** फलियों के अन्दर दाने को खाकर हानि पहुंचाती हैं।
- **पत्ती लपेटक कीटः** इसकी सून्डियाँ पीले रंग की होती हैं जो पौधों की चोटी की पत्तियों को लपेटकर सफेद जाला बुनकर उसी में छिपी पत्तियों को खाती है। इसके बाद फूलों व फलों को भी नुकसान पहुंचाती हैं।

14. कीट नियंत्रण

- 5 लीटर देशी गाय का मठा लेकर उसमे 15 चने के बराबर हींग पीसकर घोल दें, इस घोल को बीजों पर डालकर भिगो दें तथा 2 घंटे तक रखा रहने दें। उसके बाद बोवाई करें। यह घोल एक एकड़ बुवाई के बीजों के लिए पर्याप्त है।
- देशी गाय के गौमूत्र में बीज भिगोकर उनकी बोवाई करें। ओगरा और दीमक से पौधा सुरक्षित रहेगा।
- ओगरा या दीमक से बचाव हेतु बोवाई करने से पहले बीजों को कैरोसिन से उपचारित करें।
- 250 मि.ली. नीम पानी (नीम पानी बनाने के लिए 25 किलो नीम की पत्तियों को अच्छी तरह से पीसकर 50 लीटर पानी में तब तक उबालें जब तक की 20–25 पानी लीटर न रह जाए। उसके बाद उसे उतारकर छानकर उपयोग करें) को 25 मि.ली. माइक्रो झाइम के साथ अच्छी तरह मिलाकर उपयोग करें एवं सुपर 1 गोल्ड मैग्नीशियम 1 कि.ग्रा. 200 लीटर पानी में घोलकर माइक्रो झाइम के साथ मिलाकर अच्छी तरह से तर–बतर कर छिड़काव करें।
- 500 ग्राम लहसुन, 500 ग्राम तीखी हरी मिर्च लेकर बारीक पीसकर 150–200 लीटर पानी में घोलकर फसलों पर छिड़काव करें इससे इल्ली रस चूसक कीड़े नियंत्रित होंगे।
- **चूहों से निजातः** बेशरम के पते 3 किलो एवं धतूरे के फल तोड़कर 3–3 लीटर पानी में उबालें आधा पानी शेष बचने पर उसे छान लें। इस पानी में 500 ग्राम चने डालकर उबालें। ये चने चूहों के बिलों के पास शाम के समय डाल दें, इससे चूहों से निजात मिलेगी। कीट नियंत्रण हेतु क्लोरोपाइरीफॉस 20 इसी 2 मिली दवा प्रति लीटर पानी में मिलाकर फसल पर छिड़काव करें।

15. अरहर की फसल में लगने वाले प्रमुख रोग

अरहर का उकठा रोगः यह रोग फ्यूजेरियम उडम नामक फफूंद से होता है, जो केवल अरहर को ही संक्रमित करता है। पौधे एक माह के बाद किसी भी अवस्था में इस रोग से संक्रमित हो सकते हैं लेकिन जिस समय फूल, फल व पौधे फली अवस्था में होते हैं, इसका प्रकोप अधिक होता है। रोग का मुख्य लक्षण पत्तियों का हल्का पीला पड़कर मुरझाना एवं पौधे का सूख जाना है। खेत में ऐसे सूखे पौधे समूह में जगह–जगह दिखाई पड़ते हैं। रोग ग्रसित पौधे के मुख्य तने की सतह पर जमीन से ऊपर की ओर जाती हुई भूरे रंग की धारी दिखती है। तने के इस भाग का छिलका हटाने पर नीचे भूरे रंग की धारी

दिखती है, मुख्यतः यह एक मृदा जनित रोग है लेकिन इसका फैलाव बीज द्वारा भी पाया जाता है। इसकी रोकथाम हेतु मध्यम प्रभावित क्षेत्रों में दीर्घ कालीन फसल चक्र अपनाऐं एवं अत्यधिक प्रभावित क्षेत्रों में अरहर की खेती न करें।

थीरम एवं कार्बेन्डाजिम को 2:1 के अनुपात में मिलाकर 2 ग्राम दवा प्रति कि.ग्रा. बीज दर से बीजों को उपचारित करना चाहिए।

अरहर की बाँझचितेरीः यह रोग एक विषाणु द्वारा होता है जिसे अरहर बंध्यता चितेरी विषाणु के नाम से जाना जाता है। इसके संचरण *एसेरिया कैजनी* नामक सूक्ष्म कीट द्वारा होता है, इस रोग का प्रमुख लक्षण यह है कि पौधा बौना, झुरमुटी आकार एवं हलके रंग का हो जाता है। पत्तियों का आकार सामान्य से काफी छोटा एवं पतला हो जाता है तथा उन पर अनियमित आकार की हलकी हरी एवं गहरी चित्तियाँ पड़ जाती है। रोग ग्रस्त पौधे लम्बाई में छोटे रह जाते हैं तथा इनमे अनेक शाखाएं निकल आती हैं जिससे यह झाड़ीनुमा दिखने लगता है। ग्रसित पौधे में प्रजनन अंगों का विकास रुक जाता है जिससे इसमें फूल एवं फलियाँ नहीं लगती, इसलिए इसे बाँझ रोग कहते है।

***अल्टरनेरिया* अंगमारीः** इस रोग का कारक *अल्टरनेरिया अल्टरनेटा* एवं *अल्टरनेरिया टेंयुसीमा* नामक फफूंद है। अरहर की पत्तियों पर छोटे – छोटे गोलाकार भूरे धब्बे पाया जाना इस रोग के लक्षण हैं। ये धब्बे आपस में मिलकर बड़े धब्बे के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं जिससे पत्तियां झुलस कर झड़ जाती हैं और शाखाएं सूख जाती है। इसके धब्बे फली पर भी पाए जाते हैं।

***फाइटोफ्थोरा* तना अंगमारीः** इस रोग का कारक एक फफूंद है जिसे *फाइटोफ्थोरा ड्रेशलेरी* के नाम से जाना जाता है। यह केवल अरहर तथा सम्बंधित कुल के पौधों को ही संक्रमित करता है। यह मृदा जनित रोग है, इस बीमारी से अरहर के पौधे का पर्ण भाग तथा तना प्रभावित होता है। जड़ की इस बीमारी द्वारा 1–7 सप्ताह तक के पौधे रोगग्रस्त होते हैं। यह बीमारी शीघ्र पकने वाली अरहर की प्रजातियों में मध्यम तथा देर से पकने वाली प्रजातियों की अपेक्षा अधिक लगती है। खेत में ज्यादा पानी भरना इस बीमारी का मुख्य कारण है इसलिए रोग का संक्रमण खेत के निचले भाग में अधिक होता है जहाँ जल निकास का उचित प्रबंध न होने के कारण जल भराव अधिक होता है।

16. रोग नियंत्रण

बीमारी आने पर इलाज करने से अच्छा है कि बीमारी आने ही न दें। इसलिए किसान को फसल में हर 15 दिन बाद नीम पानी माइक्रो झाइम मिलाकर छिड़काव करते रहना चाहिए। अगर रोग आ ही गया है तो उस फसल को तत्काल उखाड़कर जला देना चाहिए और तत्काल हर हफ्ते नीम पानी और झाइम का छिड़काव करते रहना चाहिए जब तक फसल रोगमुक्त न हो जाए। रोगमुक्त, विषमुक्त और तंदुरुस्त बीज की बोवनी करनी चाहिए, अगर किसान जैविक खेती कर रहा है तो उपरोक्त बीमारियाँ आने की संभावना ही नहीं है।

17. कटाई

अरहर की फसल प्रजातियों के अनुसार 120–130 दिन में पककर तैयार हो जाती है। अगेती फसल नवम्बर– दिसंबर व देर से पकने वाली फसल मार्च – अप्रैल में काटी जाती है। फसल को अच्छी प्रकार सुखाकर डंडों से झुराई कर लेते हैं या इसके लिए पुलमैन थ्रेशर भी काम में लाया जाता है।

18. उपज

अरहर की उन्नतशील प्रजातियों की उपज 15–30 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तथा डंठल की उपज 60–70 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक प्राप्त हो जाती है। अन्तः फसल पद्धति में अरहर की उपज सह फसलों की पंक्तियों के आधार पर निर्भर करती है। सामान्यतः अन्तः फसल पद्धति में अरहर की उपज 12–16 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक प्राप्त हो जाती है।

19. भंडारण

दाने को अच्छी प्रकार सुखाकर जब उसमें नमी 10–12 प्रतिशत रह जाए तब इसे भण्डार में रखना चाहिए।

हिन्दी संस्कृत की बेटियों में सबसे अच्छी और शिरोमणि है।

– ग्रियर्सन

केंचुआ खाद, जैविक सोनाः कृषि के लिए वरदान

राहुल कुमार [1], आर. के. गुप्ता [2], एकता [3], सोनिया सिंह [4] एवं अजय [5]

1., 2. प्राणी विज्ञान एवं मत्स्य पालन विभाग, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार, हरियाणा

3. प्राकृतिक संसाधन, प्रबंधन विभाग, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार, हरियाणा

4. बागवानी विभाग, महाराणा प्रताप बागवानी विश्वविद्यालय, करनाल, हरियाणा,

5. कृषि महाविद्यालय, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार, हरियाणा

"हरित क्रांति के कारण हम बढ़ती आबादी को खाद्य सामग्री प्रदान करने में सक्षम तो हुए हैं परंतु बड़ी मात्रा में पशुओ और पौधों के अवशेषों का उत्पादन भी बढ़ा है और साथ में दिन प्रतिदिन रासायनिक खादों, कीटनाशको, शाकनाशी तथा अन्य रासायनिक पदार्थो का अत्याधिक मात्रा में उपयोग से मिट्टी प्रदूषण का प्रमुख कारण भी बना हैं। इसके कारण लाभदायक जीवो और जीवांश कार्बन का स्तर लगातार कम होता जा रहा है। परिणामस्वरूप मिट्टी की उर्वरता में कमी आई है। मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने के लिए हमें प्राकृतिक खाद की आवश्यकता होती है जैसे कि केंचुआ खाद (वर्मीकम्पोस्ट), कम्पोस्ट, हरी खाद आदि। आजकल कचरा प्रबंधन गंभीर समस्या बन गया है। भूमि का भराव सभी समस्याओं का समाधान नहीं है क्योंकि इससे भूमिगत जल प्रदूषण हो सकता है। सतत विकास के लिए अपशिष्ट पदार्थों को उपयोगी उत्पादों में परिवर्तित किया जाना चाहिए।" इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए केंचुआ खाद बहुत महत्वपूर्ण हैं, जिसमें निर्णायक तत्व होते हैं।"

केंचुए के लाभदायक उपयोग के कारण ही, अरस्तू ने केंचुए को "पृथ्वी की आंत" और डार्विन ने "किसान के मित्र" के रूप में संबोधित किया है। सम्पूर्ण विश्व में केंचुओं की अनुमानित 3200 प्रजातियाँ पाई जाती है। भारत वर्ष में लगभग 509 प्रजातियाँ पाई जाती है। केंचुओं की उन प्रजातियों का चयन केंचुआ खाद निर्माण हेतु किया जाना चाहिए जो मौसम की प्रतिकूलता को सर्वाधिक सहन करने की क्षमता रखता हो तथा गोबर, घास-पूस, पेड़-पौधों की पत्तियों को आसानी से खाकर खाद बना सकें।

केंचुआ खाद (वर्मीकम्पोस्ट): विशेष प्रजाति के केंचुए समृद्ध खनिज मिट्टी व जैविक अवशेषों (बायोडिग्रेडेबल सामग्री) को निगलकर अपनी पाचन नली से गुजारते हैं जिससे वह छोटे महीन खाद में परिवर्तित होते हैं और अपने शरीर से बाहर छोटे-छोटे कास्टिंग (केंचुआ मलमूत्र) के रूप में निकालते हैं, यही केंचुआ खाद है। कृषि में केंचुआ खाद के महत्वपूर्ण उपयोग के कारण इसे जैविक सोना कहा जाता है।

दैनिक रूप से, केंचुए अपने भोजन के रूप में बड़ी मात्रा में जैविक अवशेषों (लगभग अपने शरीर के वजन के बराबर) ग्रहण करते हैं। केंचुए गिजर्ड द्वारा जैविक अवशेषों को 2-3 माइक्रोन (छोटे- छोटे कणों) में बदलते हैं और इसके बाद आंतों से एंजाइमी प्रक्रिया के लिए पारित किया जाता है। बायोरिएक्टर (गिजार्ड और आंत) एमाइलेज, प्रोटीज, लाइपेस, सेल्युलस और काइटिनेस जैसे विभिन्न एंजाइमों को छोड़ते हैं जो अपशिष्ट पदार्थों को जैविक रासायनिक रूपांतरण में लाते हैं। आखिरी में कास्टिंग जारी की जाती है जिसमें सूक्ष्मजीव होता है। ये सूक्ष्मजीव आगे चलकर जैविक कचरे के क्षय में मदद करते हैं।

केंचुआ खाद उत्पादन की विधियां

- व्यक्तिगत आवश्यकता को पूरा करने के लिए छोटे पैमाने पर केंचुआ खाद तैयार की जाती है। आवश्यकता के अनुसार, छोटे टब और गड्ढे के आकार का चयन करते हैं। इन छोटे से टब और गड्ढे में 60 और 40 के अनुपात में गाय का गोबर और फसल के अवशेषों को मिलाते हैं। तब तक इंतजार किया जाता है जब तक कि खाद दानेदार और भूरे रंग की न हो जाए। इसमें लगभग 90 दिन लगते हैं।
- वाणिज्यिक स्तर पर केंचुआ खाद उत्पादन के लिए बड़े पैमाने पर बड़ी मात्रा में जैविक कचरे को पुनर्चक्रण किया जाता है।

1. इसमें चार कक्ष होते हैं जो एक दीवार (1.5 मीटर चौड़ाई, 4.5 मीटर लंबाई और 0.9 मीटर ऊंचाई) से घिरे होते हैं। दीवारें विभिन्न सामग्रियों जैसे सामान्य ईंट, खोखले ईंट,

शबज पत्थर, एस्बेस्टस शीट और स्थानीय रूप से उपलब्ध चट्टानों से बनी हैं।

2. इस मॉडल (नमूना) में एक कक्ष से दूसरे कक्ष में केंचुओं की आसान आवाजाही की सुविधा के लिए छोटे छेद वाली विभाजन दीवारें हैं।
3. मामूली ढलान के साथ प्रत्येक कक्ष के एक कोने पर एक छेद होता है जहाँ से अतिरिक्त पानी के संग्रह की सुविधा होती है, जिसे बाद में पुनः उपयोग किया जाता है।
4. एक टैंक के चारो कक्ष, एक के बाद एक पौधे के अवशेषों से भरे जाते हैं।
5. पहले कक्ष में गोबर की परत के साथ पौधे के अवशेषों से परत भर दी जाती है और फिर केंचुओं को छोड़ दिया जाता है।
6. दूसरे कक्ष में भी परत दर परत भरा जाता है।
7. एक बार पहले कक्ष में सामग्री तैयार हो जाती है, तो केंचुए दूसरे कक्ष में चले जाते हैं, जो पहले से ही भरा होता है और केंचुओं के लिए तैयार होता है। यह पहले कक्ष से विघटित सामग्री को हटाने की सुविधा प्रदान करता है। इस प्रकार से केंचुओं को डालने और हटाने के लिए श्रम की बचत भी करता है।

आजकल बाजार में बना बनाया केंचुआ बिस्तर (वर्मी बेड) मिल जाता है। जिसे उपलब्ध स्थान के अनुसार रखा जा सकता है। लेकिन इसमें खाद से केंचुए निकालने की जरूरत होती है और इसके लिए विभाजक (केंचुआ सेपरेटर) की आवश्यकता होती है।

चित्र 2 : शेड के नीचे केंचुए बिस्तर

चित्र 3 : केंचुआ बिस्तर

चित्र 4 : केंचुआ खाद विभाजक (सेपरेटर)

चित्र 5 : केंचुआ खाद युक्त टब

क्रमांक	मानक	मात्रा
1.	पी. एच.	6.8
2.	ईसी. (mmhos/cm)	11.70
3.	कुल नाइट्रोजन	0.50–10 प्रतिशत
4.	फास्फोरस	0.15–0.56 प्रतिशत
5.	पोटेशियम	0.06–0.30 प्रतिशत
6.	कैल्शियम	2.0–4.0 प्रतिशत
7.	सोडियम	0.02 प्रतिशत
8.	मैग्नेशियम	0.46 प्रतिशत
9.	आयरन	7563 पीपीएम
10.	जिंक	278 पीपीएम
11.	मैगनीज	475 पीपीएम
12.	कॉपर	27 पीपीएम
13.	बोरोन	34 पीपीएम
14.	एल्यूमिनियम	7012 पीपीएम

केंचुआ खाद जैविक खेती प्रणाली में एक प्रमुख घटक के रूप में लोकप्रिय हो रहा है क्योंकिः

1. यह आसानी से अपनाने योग्य कम लागत वाली तकनीक है।
2. यह एक स्थिर और समृद्ध मृदा कंडीशनर है।
3. यह स्थिर, बारीक दानेदार जैविक खाद है, जो इसके भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों में सुधार करके मिट्टी की गुणवत्ता को समृद्ध करता है।
4. यह कल्लों को बढ़ाने और फसल उत्पादन के लिए अत्यधिक उपयोगी है।
5. महत्वपूर्ण पोषक तत्व जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम, कैल्शियम आदि प्रदान करता है।
6. फसल के विकास को बढ़ावा देने वाले हार्मोन जैसे ऑक्सिन, साइटोकाइनिन, सिबरलिन आदि प्रदान करता है।
7. लाभकारी मृदा सूक्ष्मजीववाद जैसे कि राइजोबियम, एजोटोबैक्टर, एजोस्पिरिलम, स्यूडोमोनास आदि प्रदान करता है।
8. रोगजनक रोगाणुओं को रोकने के गुण हैं।
9. खेत/बगीचे के सामान्य प्रजनन स्तर में बहुत सुधार होता हैं।
10. जल धारण क्षमता में वृद्धि करता हैं।
11. इससे खेती करने में आसानी होती हैं।
12. यह मिट्टी के कटाव को कम करता है और बाढ़ के खतरों को कम करता हैं।
13. भूमि को सुरक्षित रूप से अधिक गहराई से जोता जा सकता हैं।
14. मिट्टी में वातन अधिक होता हैं।
15. मिट्टी में ह्यूमस बढ़ता हैं।
16. शुष्क मौसम में भी लाभ देता हैं।
17. यह रासायनिक उर्वरकों के उपयोग को कम करता हैं।
18. यह खरपतवार प्रतिरोधी हैं।
19. केंचुआ खाद के निरंतर उपयोग से वर्ष दर वर्ष खाद की आवश्यकता में कमी आती हैं।
20. इसमें कोई गंध नहीं है।
21. यह प्रतिरोधी पौधे लगाने के लिए बहुत अधिक प्रतिरक्षक है।
22. कीटों का खतरा न्यूनतम हो जाता है।
23. बीजों को किसी रासायनिक उपचार की आवश्यकता नहीं होती है।
24. जो जानवर जैविक आहार उत्पादित चारा खाते हैं, वे स्वस्थ रहते है।
25. भोजन का स्वाद अधिक बेहतर हो जाता है।
26. यह मिट्टी की जल धारण क्षमता में सुधार करता है।
27. यह जैविक कचरे/फसल/पशु अवशेषों का कुशल रूपांतरण प्रदान करता है तथा पोषक तत्व चक्र में मदद करता है।

केंचुआ खाद उत्पादन के दौरान विशेष सावधानियां

1. केंचुओं की *आइसीनिया फोटिडा, यूडिलस यूजिनी* प्रजातिया खाद उत्पादन के लिए आदर्श है। अधिकांश भारतीय प्रजातियाँ इस उद्देश्य के लिए उपयुक्त नहीं हैं।
2. केंचुआ खाद तैयार करने में केवल पौधे–आधारित सामग्री जैसे घास, पत्तियों या सब्जियों के छिलके तथा गोबर व बायोगैस संयत्र से निकलने वाली स्लरी का उपयोग किया जाना चाहिए।
3. केंचुओं को अधिक गर्मी से बचने के लिए 15–20 दिन पुराने गोबर का उपयोग करना चाहिए।
4. अनुकूलतम नमी का स्तर (30 से 40 प्रतिशत) बनाए रखा जाना चाहिए।

5. उचित विघटन के लिए 18 से 25 डिग्री सेल्सियस तापमान बनाए रखा जाना चाहिए।
6. केंचुआ बिस्तर (वर्मी बेड) बनाने हेतु छायादार शेड होना चाहिए। बिस्तर या गड्ढे को धूप व वर्षा से बचायें।
7. पशु उत्पत्ति की सामग्री जैसे अंडे के छिलके, मांस, हड्डी, चिकन अपव्यय आदि खाद बनाने के लिए उपयोग नहीं करने चाहिए।
8. ग्लिरिसिडिया और तंबाकू के पत्ते, केंचुओं के पालन के लिए उपयुक्त नहीं हैं।
9. केंचुओं को पक्षियों, दीमक, चींटियों और चूहों से बचाना चाहिए।
10. प्रक्रिया के दौरान पर्याप्त नमी बनाए रखी जानी चाहिए। स्थिर पानी या नमी की कमी केंचुओं को मार सकती है।
11. प्रक्रिया के पूरा होने के बाद, केंचुआ खाद को नियमित अंतराल पर बिस्तर से हटा दिया जाना चाहिए और इसके स्थान पर ताजा अपशिष्ट पदार्थ डाल दिया जाना चाहिए।
12. मिट्टी में केंचुओं के प्रवास को रोकने के लिए इकाई का फर्श ठोस होना चाहिए।
13. जैविक कचरे को प्लास्टिक, रसायन, कीटनाशक और धातुओं आदि से मुक्त होना चाहिए।
14. केंचुए के उचित विकास और गुणन के लिए वातन को बनाए रखना चाहिए।

राष्ट्रभाषा हिन्दी का किसी क्षेत्रीय भाषा से कोई संघर्ष नहीं है।

– अनंत गोपाल शेवड़े

हिन्दी ही राष्ट्रभाषा बनने की सच्ची अधिकारिणी है

– सुभाष चन्द्र बोस

मूँगफली उत्पादन की वैज्ञानिक तकनीक

दीप सिंह सासोड़े, एकता जोशी, वर्षा गुप्ता, नीलम सिंह एवं नम्रता चौहान
राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

1. जलवायु : मूँगफली उष्ण–कटिबन्धीय जलवायु का पौधा है। इसके लिये लम्बे और गर्म मौसम की जरूरत पड़ती है। फसल की वृद्धि के लिये सर्वोत्तम तापक्रम 70° से 80° फारेनहीट होता है। निम्नतम तापक्रम 58° फारेनहीट होता है। पाला पड़ने पर सम्पूर्ण फसल नष्ट हो जाती है।

उन स्थानों में जहाँ पर 60–130 सेमी वार्षिक वर्षा होती है, मूँगफली की अच्छी फसल उगाई जा सकती है। 50 सेमी से कम वार्षिक वर्षा वाले प्रदेशों में मूँगफली की सफल खेती के लिये सिंचाई साधनों का होना आवश्यक होता है। बहुत अधिक वर्षा भी मूँगफली की सफल खेती के लिये हानिकारक होती है। फसल कटने के समय स्वच्छ वातावरण तथा तेज धूप होना लाभप्रद होता है।

2. भूमि : अच्छे जल निकास वाली, बलुई दोमट भूमि जिसमें प्रचुर मात्रा में जीवांश तथा कैल्शियम मौजूद हो, मूँगफली की खेती के लिये उपयुक्त होती है। बहुत भारी, गहरे काले रंग की मिट्‌टी, छिलकों को बदरंग कर देती है। अच्छे गुणों एवं रंग वाली मूँगफली हल्की मिट्टियों में ही पैदा होती है। इसमे "पेग" आसानी से भूमि में अंदर जा सकते हैं। भूमि का पी.एच. मान 6.0 से 7.0 के मध्य होना चाहिए। मूँगफली के लिए अम्लीय तथा क्षारीय भूमि सर्वथा अनुपयुक्त होती है।

3. बीजोपचार : 3 ग्राम थीरम या 2 ग्राम कार्बेन्डाजिम दवा प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार करें। पौधों के सूखने की समस्या वाले क्षेत्र में 2 ग्राम थीरम– 1 ग्राम कार्बेन्डाजिम प्रति किलोग्राम बीज मिलाकर उपचारित करें या जैविक उपचार ट्रायकोडर्मा 4 ग्राम चूर्ण प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपयोग करें। इसके पश्चात् 10 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज के मान से रायजोबियम कल्चर से भी उपचार करें।

4. बीज की मात्रा : मूँगफली की गुच्छेदार एवं मोटे दाने की प्रजातियों की बीज दर 80–100 कि.ग्रा / है. प्रयोग की जाती है जबकि फैलने वाली अथवा छोटे दाने की प्रजातियों में 60–80 कि.ग्रा / है. बीज दर रखना चाहिए।

5. बोनी का समय एवं तरीका : वर्षा प्रारम्भ होने पर जून के मध्य से लेकर जुलाई के प्रथम सप्ताह तक बोनी करना चाहिए। कतार से कतार की दूरी 30–45 सेमी तथा पौधे से पौधे की दूरी 15–20 सेमी रखना चाहिये। बीज 4–6 सेमी गहराई पर बोयें। बोनी कतारों में सरता, दुफन या तिफन से करना चाहिये। एवं पौधो की संख्या 43,600 पौधे / हैक्टेयर तथा 1,45,000 पौधे / हैक्टेयर दूव वाली बुवाई में आती है।

6. प्रजातियाँ : जे.एल. 24, जे.जी.एन.3, जे.जी.एन 23, ज्योति, ए.के. 12–24, एस.बी. 11 (जूनागढ़–11), टी.जी. 24, टी.जी. 26, जी.जी. 20

7. खाद एवं उर्वरक: यदि जायद की फसल के बाद मूँगफली की खेती की जा रही हो तो 100 से 150 क्विंटल सड़ी गोबर की खाद या कम्पोस्ट खाद खेत की तैयारी करते समय आखिरी जुताई में डालकर अच्छी तरह से मिला देना चाहिए। लेकिन फिर भी 20 कि.ग्रा. नत्रजन, 30 किलो फॉस्फोरस तथा 45 किलो पोटाश तत्व के रूप में तथा 300 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर जिप्सम डालना अति आवश्यक है। नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा तथा जिप्सम की आधी मात्रा बुवाई के समय कूड़ों में बीज के नीचे 2–3 सेमी गहराई पर चोंगा या नाई से डालना चाहिए। जिप्सम की शेष आधी मात्रा मूँगफली में फूल आने की अवस्था में टॉप ड्रेसिंग के रूप में डालना चाहिए। टॉप ड्रेसिंग द्वारा जिप्सम देने के बाद खुरपी से खेत में मिला देना चाहिए।

8. सिंचाई: उत्तर भारत में मूँगफली की खेती खरीफ ऋतु में की जाती है। इसके लिए सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती। मूँगफली की फलियों के विकास एवं वृद्धि के समय भूमि में पर्याप्त मात्रा में नमी की आवश्यकता होती है। अतः केवल फलियों के सम्पूर्ण वृद्धि एवं विकास के लिये 2–3 सिंचाईयों की आवश्यकता होती है। भारी वर्षा के कारण जब खेत में पानी इकट्‌ठा हो जाये तो पानी खेत से तुरंत निकाल देना चाहिए।

9. फसल चक्र: मूंगफली (खरीफ) – गेहूँ ं(रबी), मूँगफली (खरीफ) – मक्का (ग्रीष्म), मूंगफली (खरीफ)–चना (रबी), मूंगफली (ग्रीष्म) – कपास (खरीफ), मूंगफली (ग्रीष्म) – मक्का–ज्वार–कपास (खरीफ)

10. अंतरवर्तीय फसलें: अंतरवर्तीय फसल के रुप में मक्का, ज्वार, सोयाबीन, मूंग, उड़द, तुअर, सूर्यमुखी आदि फसलों को 4:2, 2:1, 8:2, 3:1, 6:3, 9:3 अनुपात में आवश्यकतानुसार लिया जा सकता है।

सिंचाई की सुविधा होने पर अवर्षा से उत्पन्न सूखे की अवस्था में पहला पानी 50–55 दिन में तथा दूसरा पानी 70–75 दिन में दिया जाना चाहिये।

11. निंदाई – गुड़ाई : फसल बोने के 15–20, 25–30 तथा 40–45 दिन की अवस्था में डोरा या कोल्पा चलावें, जिससे समय–समय पर नींदा नियंत्रण किया जा सके। नींदानाशक दवाओ के उपयोग से भी नींदा नियंत्रण किया जा सकता है।

12. खरपतवार प्रबंधन : बुवाई के 15 दिन बाद पहली एवं बुवाई के 35 दिन बाद दूसरी तथा जिप्सम भुरकाव के बाद आवश्यक हो तो निराई–गुड़ाई करें। खुटियाँ (पेगिंग) बनते समय निराई–गुड़ाई नहीं करना चाहिए। साथ ही खरपतवार नियंत्रण भी अति आवश्यक है। अच्छी पैदावार लेने के लिये खरपतवार निकालना बहुत ही आवश्यक हैं। रसायनों द्वारा खरपतवार नियंत्रण हेतु फ्लूक्लोरलीन 1.0 मि.ग्रा. सक्रिय तत्व/हे. बुवाई के पूर्व खेत में छिड़काव कर मिलायें अथवा बोनी के तुरन्त बाद एलाक्लोर 1.0 कि.ग्रा. या पेन्डीमेथालीन 1.0 कि.ग्रा. या ऑक्सीफ्लोरोफेन 0.15 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व/हे. की दर से 500 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। 30 दिन की फसल अवस्था पर 1 बार हाथ से निंदाई करें।

खड़ी फसल में बोनी के 15–20 दिन बाद इमेजाथाइपर 75–100 ग्राम सक्रिय तत्व/हे. या क्यूजालोफोप 50 ग्राम सक्रिय तत्व/हे. का छिड़काव कर नींदा नियंत्रण करें।

13. पौध संरक्षण

अ. कीड़े

- **बोडला कीट (व्हाइट ग्रब) :** मई–जून के महीने में खेत की दो बार जुताई करना चाहिए। अगेती बुवाई 10–20 जून के बीच करना चाहिए। मिट्टी में फोरेट 10जी या कार्बोफ्यूरॉन 3जी 10 किलोग्राम प्रति एकड़ डालना चाहिए। बीज को फफूंदनाशक उपचार से पहले क्लोरपायरीफॉस 12.5 मि.ली. प्रति किलोग्राम बीज को उपचार कर छाया में सूखाकर बोनी करना चाहिए।
- **कामलिया कीट :** मिथाइल पेरामिथान 2 प्रतिशत चूर्ण का 10 –12 किलोग्राम प्रति एकड़ प्रारम्भिक अवस्था में भुरकाव या पैराथियान 50 ईसी का 280–300 मि.ली. प्रति एकड़ के मान से छिड़काव करें।
- **माहों, थ्रिप्स एवं सफेद मक्खी :** इनके नियंत्रण के लिये मोनोक्रोटोफॉस 36 ईसी का 220 मि.ली. प्रति एकड़ या डाईमिथोएट का 30 ईसी का 200 मि.ली. प्रति एकड़ 200 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रयोग करें।
- **सुरंग कीट –** क्यूनालफास 25 ईसी का 400 मि.ली., या मोनोक्रोटोफॉस 36 एस.एल. का 240 मि.ली. प्रति एकड़ के मान से छिड़काव करें। चूहा एवं गिलहरी, यह भी मूंगफली को नुकसान करते हैं, अतः इनके नियंत्रण पर ध्यान दें।

ब. रोग

- **टिक्का पर्ण धब्बा :** बोने के 4–5 सप्ताह से प्रारम्भ कर 2–3 के अंतर से दो–तीन बार कार्बेन्डाजिम 0.05 प्रतिशत या डायथेन एम–45 का 0.2 प्रतिशत का छिड़काव करना चाहिए।
- **कालर सड़ना/शुष्क जड़ सड़न :** बीज को 5 ग्राम थीरम अथवा 3 ग्राम डाइथेन एम–45 या 1 ग्राम कार्बेन्डाजिम प्रति किलो ग्राम बीज दर से उपचार करना चाहिए।
- **गेरूई :** इस रोग के लक्षण सर्वप्रथम पौधों की निचली पत्तियों में गहरे भूरे रंग के धब्बे ऊपर की सतह की तुलना में अधिक पाये जाते है। अत्यधिक संक्रमण होने पर पौधों की समस्त पत्तियाँ गिर जाती हैं तथा पौधा सूख जाता है। जिनेब 0.2 प्रतिशत घोल को 10–15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करना चाहिए।

14. फसल कटाई: जैसे ही फसल पीली पड़ने लगे तथा प्रति पौधा 70–80 प्रतिशत फली पक जावें उस समय पौधों को उखाड़ लेना चाहिए। फलियों को धूप में इतना सुखाना चाहिए कि नमी 8–10 प्रतिशत रह जाए, तभी बोरों में रखकर भण्डारण नमी रहित जगह पर करें। बोरियाँ रखने के बाद उन पर मेलाथियान दवा का छिड़काव करना चाहिए।

15. उपज : मूँगफली की उपज मौसम के आधार पर अलग–अलग पाई जाती है। खरीफ की फसल में उपज 25 से 30 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती हैं। इसी प्रकार जायद की फसल में उपज 28 से 30 क्विंटल प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है।

हिन्दी का सम्मान करें, देश का मान करें।

मसूर की उन्नत खेती

मुकेश कुमार मीणा एवं सुरेश कुमार तिवारी

भा.कृ.अनु.प.–खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

मसूर एक दलहनी फसल है, और दलहनी फसलों में मसूर की खेती का प्रमुख स्थान है जिसकी खेती प्रायः भारत के हर राज्य में की जाती है। मसूर के दानों का उपयोग दाल में एवं अन्य पौष्टिक व्यंजन बनाने में किया जाता है। इसके अतिरिक्त मसूर का भूसा भी उपयोगी होता है। जिसे जानवर बड़े चाव से खाते हैं। इसे गरीब की अरहर कहें तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाये रखने में भी मसूर की खेती बहुत सहायक होती है।

जलवायु – मसूर के लिए समशीतोष्ण जलवायु की आवश्यकता होती है। मसूर की फसल रबी के मौसम में अक्टूबर से नवंबर के बीच में बोई जाती है। उन सभी स्थानों पर जहाँ 80 से 100 से.मी. तक वार्षिक वर्षा होती है। मसूर की फसल बिना सिंचाई के भी उगाई जा सकती है। पौधों की वृद्धि के लिये अधिक ठंड की आवश्यकता होती है। परन्तु पाले से फसल पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। फसल को पकने के लिये उच्च तापमान की आवश्यकता होती है। तभी फलियों में दाना शीघ्र पकता है।

भूमि – दलहनी फसल होने के कारण मसूर की खेती सभी प्रकार की कृषियुक्त भूमि में की जा सकती है। क्षेत्र का चुनाव करते समय इस बात का अवश्य ध्यान रखना होता है कि वहां पानी का भराव नहीं होना चाहिए। मसूर के लिए दोमट एवं रेतीली दोमट भूमि सबसे अधिक अच्छी होती है। लेकिन काली मिट्टी भी इसके लिये उपयुक्त है।

राज्यानुसार उन्नतशील प्रजातियाँ–

मध्यप्रदेश– के–75, पंत 639, एल 9–12, मलिया, जवाहर मसूर–1, जवाहर मसूर–3, नूरी (आईपीएल–81), एल–4076 –मलका मसूर

उत्तरप्रदेश– पंत एल 234, पंत एल–243, पंत एल 406, पंत एल 639, टी–36, टी–8, पूसा–4, पूसा–6, मलिका (12–75), मसूर 103, आईपीएल–81

दिल्ली– पूसा 4, पूसा 6, पंत 639, टी–36

हरियाणा–एल 9-12, पंत 639, पूसा 6, पी.एल.–4

राजस्थान– टी–36, पंत 639, एल 9–12, पी.एल.–4

बीजदर – बीज दर बोने के समय, बीज का आकार, भूमि की उर्वरा शक्ति और बुवाई की विधि पर निर्भर करता है। अक्टूबर–नवम्बर में बोई जाने वाली छोटे दाने वाली मसूर के लिए 25 से 30 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर एवं बड़े दाने वाली मसूर के लिए 35 से 40 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है। देर से बोनी अर्थात दिसम्बर में 50 से 55 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है ।

अन्तरण – सामान्यतः अगेती फसल के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 25–30 से.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 10 से.मी. एवं पछेती फसल के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 20–25 से. मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 6–8 से.मी. एवं बीज की गहराई 4–5 से. मी. पर उपयुक्त होती है।

बीजोपचार – बीज को उपचारित करने के लिए 2 ग्राम थायरम अथवा 1 ग्राम साफ (कार्बेन्डाजिम 12 प्रतिशत + मेनकोजेब 63 प्रतिशत) प्रति किलो बीज के हिसाब से हल्का पानी छिड़क कर अच्छी तरह मिलाए, जिससे दवा की एक परत बीज पर चढ़ जाए एवं बीज को छायादार स्थान पर सुखाये। तत्पश्चात आधे घंटे के अन्तराल में 5 ग्राम राइजोबियम एवं 5 ग्राम पीएसवी कल्चर प्रति किलोग्राम बीज की दर से मिलाकर थोड़ा पानी छिड़क कर अच्छी तरह से मिलायें जिससे कल्चर बीज से चिपक जायें। इस तरह बीजोपचार के बाद बीज को छाया में सुखाकर फिर बोनी करें।

खाद एवं उर्वरक – भूमि का मृदा परीक्षण कराना अति आवश्यक है, उसके आधार पर ही खाद उर्वरक देना चाहिए, 100–125 क्वि. प्रति हेक्टेयर के हिसाब से गोबर की खाद या कम्पोस्ट खाद देना चाहिए। गोबर की खाद देने के बाद उर्वरकों की मात्रा आधी करना उचित रहता है। मध्यम व कम उर्वरा शक्ति वाली भूमि के लिये 20–25 कि.ग्रा. नत्रजन, 50–60 कि.ग्रा. फास्फोरस एवं 20–30 कि.ग्रा. पोटाश का उपयोग प्रति हेक्टेयर करना चाहिए।

सिंचाई – सामान्यतः मसूर की फसल में पानी की आवश्यकता कम होती है और इसलिए इसको असिंचित में ही लगाया जाता है बुवाई के समय भूमि में पर्याप्त नमी होने से बीच का अंकुरण सही आता है। यदि भूमि में नमी कम हो तो बुवाई के बाद 2 से 3 घंटे की स्प्रिंकलर की आवश्यकता होती है। इसके बाद एक सिंचाई शाखायें बनने एवं फूल आने से पूर्व (बोने के 40–50 दिन के बाद) करना आवश्यक है। कभी भी सिंचाई फूल आने के समय पर ना करें तथा दूसरी सिंचाई फलियां बनते समय आवश्यकतानुसार करना चाहिए। यद्यपि सिंचित क्षेत्रों में असिंचित क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक उत्पादन प्राप्त होता है।

नींदा नियंत्रण – फसल बोने के 30–35 दिन बाद निंदाई की जाती है। छिड़काव विधि से बोनी करने पर खुरपी की सहायता से एवं लाइन में बोनी होने पर हो यंत्र की सहायता से निदाई की जा सकती है। रसायनिक विधि द्वारा नीदा नियंत्रण से लिये फ्लुक्लोरालिन अथवा पैंडीमेथालिन 750 ग्राम सक्रिय तत्व, ऑक्सीफ्लोरफेन 250 ग्राम सक्रिय तत्व, प्रति हेक्टेयर की दर से 0–3 दिन के भीतर (बोनी के पश्चात् परन्तु अंकुरण के पूर्व) रसायन का छिड़काव फ्लेटफेन नोजल की सहायता से करना चाहिए, जिससे सकरी पत्ती एवं कुछ चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार का नियंत्रण किया जा सकता है।

कीट एवं बीमारियाँ – मसूर में पत्ती छेदक, फली छेदक एवं माहू का प्रकोप होता है जो कि पत्तियों एवं फलों का रस चूसकर फसल को नुकसान पहुंचाते हैं। इसके लिए इण्डोसल्फॉन अथवा मोनोक्रोटाफॉस 1.0 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

मसूर में मुख्यतः उक्टा रोग का प्रकोप होता है यह बीमारी मसूर उगाने वाले क्षेत्रों में बहुतायत में पाई जाती है। इस रोग में पौधे पीले पड़ जाते हैं और बाद में पौधे बिना फली के सूख जाते हैं। यह एक भूमि जनित रोग है। इस बीमारी के नियंत्रण के लिए मृदा उपचार एवं बीजोपचार करना अति आवश्यक है इसके अलावा मसूर में भूतिया रोग भी होता है। इस रोग में पत्तियों की निचली सतह पर छोटे छोटे धब्बे दिखाई देते हैं। बाद में दोनों सतह पर सफेद धब्बे बन जाते हैं और इसी सफेद धब्बों के कारण इस रोग को भूतिया रोग कहते हैं। इसके रोकथाम के लिए रोग ग्रसित पौधों को उखाड़ कर जमीन में दूर गाड़ देवें और रोग बढ़ने की स्थिति में 3 किलो सल्फेक्स प्रति हेक्टेयर 600 मि.ली. पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।

कटाई एवं गहाई – फसल पकने की अवस्था में पत्तियां एवं फलियां हरे से भूरे रंग की होने लगती है तब फसल कटाई योग्य हो जाती है। फसल की कटाई सुबह करना उचित होता है क्योंकि उस वक्त थोड़ी ठंड और नमी रहती है जिससे फलियां/बीज कम झड़ते हैं। फसल को कटाई के बाद खलियान में फैलाकर सुखाना चाहिए। फिर डंडो से पीटकर एवं बैलों अथवा ट्रेक्टर से गहाई करवाकर पंखे से उड़ावनी कर साफ करना चाहिए। भंडारण से पूर्व यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि बीज अच्छे से सूख जाये।

उपज – मसूर की उपज किस्म एवं क्षेत्र पर निर्भर करती है। किस्म के अनुसार असिंचित क्षेत्रों में 12–15 क्विंटल एवं सिंचित क्षेत्रों में 20–25 क्विंटल तक प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त होती है।

इस प्रकार से मसूर की खेती करने पर अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। साथ ही भारत को दलहनी उत्पादन में आत्म निर्भर बनाने हेतु एक कदम आगे अग्रसित हो सकते हैं।

"मानस भवन में आर्यजन जिसकी उतारें आरती।
भगवान भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती।"

–मैथिलीशरण गुप्त

"सच्चा राष्ट्रीय साहित्य राष्ट्रभाषा से उत्पन्न होता है।"

–वाल्टर चेनिंग

चना उत्पादन की वैज्ञानिक तकनीक

दीप सिंह सासोड़े, एकता जोशी, वर्षा गुप्ता, नीलम सिंह एवं नम्रता चौहान
राजमाता विजयाराजे सिंधिया, कृषि महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

1. जलवायु : भारत में चना 400–700 मिमी वर्षा वाले क्षेत्रों में रबी फसल के रूप में उगाया जाता है। चने के लिये इष्टतम तापमान 24°C से 30°C है। फली सेट और बीज विकास 5°C से कम और 30°C से अधिक तापमान से प्रभावित होता है। चना आमतौर पर शीतोष्ण और भूमध्यसागरीय क्षेत्रों में सर्दियों के दौरान संग्रहित नमी पर उगाया जाता है। यह एक लम्बे दिन का पौधा है जिसमें प्रतिदिन 12 से 16 घण्टे तेज धूप की आवश्यकता होती है।

2. भूमि : मोटी बालू वाली मृदा इसकी खेती के लिये अनुपयुक्त होती है। अच्छी जल निकास वाली बलुई अथवा बलुई दोमट भूमि चने की खेती के लिये उपयुक्त होती है। इसकी वृद्धि के लिये इष्टतम पी.एच. 6.0 से 7.5 है। यह जल भराव, खारा और क्षारीय स्थितियों से प्रभावित होता है।

3. बीज उपचार : चना का बीज सदैव स्वस्थ और बीमारी रहित होना चाहिए। बीज को बोने के पूर्व कवकनाशी जैसे – कैप्टान अथवा थीरम अथवा एग्रोसन जी.एन. 2.5 ग्रा./कि.ग्रा. बीज दर से उपचारित करना चाहिए।

4. बीज दर : 60 कि.ग्रा/है. की दर से बीज तथा 25–30 पौधे प्रति वर्गमीटर इष्टतम होता ।

5. बुवाई का समय एवं तरीका : धान या सोयाबीन या अन्य खरीफ फसलों की कटाई के पश्चात अक्टूबर के दूसरे पखवाड़े से नवम्बर के पहले पखवाड़ा बुआई हेतु उपयुक्त समय होता है। चने की बुवाई छिड़काव विधि द्वारा की जाती है। परन्तु पंक्तियों में बुवाई करने से अधिक उपज प्राप्त होती है जिसमें पंक्ति से पंक्ति की दूरी 25–30 सेमी एवं पौधे से पौधे की दूरी 8–10 सेमी रखी जाती है।

6. प्रजातियाँ

- वर्षा आधारित प्रजातियाँ – जे.जी. 11, जे.जी. 130, जे.जी. 63, जे.जी. 226 आदि
- आंशिक रूप से सिंचित – जे.जी. 315, जे.जी. 218, जे. जी. 16, जे.जी. 130 आदि
- देर से बोई जाने वाली सिंचित प्रजातियाँ – जे.जी.के. 1, जे.जी.के. 2, जे.जी.के. 3, गुलाबी जे.जी.जी. 1 आदि
- शीध्र पकने वाली प्रजातियाँ – जे.जी. 14, जे.जी. 412, जाकी 9218 आदि

7. खाद्य एवं उर्वरक : चने की अधिक उपज प्राप्त करने के लिये फसल को 20–25 कि.ग्रा. नत्रजन, 50–60 कि.ग्रा. फास्फोरस तथा 20–30 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टेयर देना चाहिए। नत्रजन, फास्फोरस तथा पोटाश की सम्पूर्ण मात्रा बुवाई के समय खेत में छिड़क दी जाती है। जस्ते की कमी वाले क्षेत्रों में 15 कि.ग्रा./है. जिंक सल्फेट बुवाई के समय प्रयोग करना चाहिए।

8. फसल चक्र

- असिंचित क्षेत्रों में : चना–गेहूँ/जौ/चना, चना–लाही/तारामीरा, चना–बाजरा–गेहूँ
- सिंचित क्षेत्रों में : मक्का–आलू–चना, मक्का–गेहूँ–चना, धान–गेहूँ–चना, धान–चना, सोयाबीन–चना, मक्का–चना

9. सिंचाई : चना की फसल रबी ऋतु में बोई जाती है इसलिये सिंचाई की आवश्यकता होती है। पौधों में शाखाऐं निकलते समय तथा फलीयों में बीज बनते समय यदि वर्षा न हो तो सिंचाई करनी चाहिए।

10. खरपतवार नियंत्रण : फसल की बुवाई के 35–40 दिन तक खेत में खरपतवार होने से चना की उपज में काफी कमी हो जाती है। फसल बोने के 20–25 दिन पश्चात् पहली निराई तथा 35–40 दिन पश्चात् दूसरी निराई कर देने से खरपतवार पूर्ण रूप से नियंत्रित हो जाते है। मेट्रिब्यूजिन 250–300 ग्रा./है. एवं पेन्डिमेथालिन 750–1000 ग्राम/ है. 0–3 दिन में करने पर चौड़ी पत्ते एवं सकरी पत्ती के खरपतवारों को नियंत्रित करता है।

11. पौध संरक्षण :

(अ) कीट : प्ररोह मक्खी (एथेरीगोना न्यूडीसैटा), फली बेधक, एफिड, लीफ माइनर कर्तन कीट/ (एगरोटिस इरिसलान) ।

रोकथाम

- प्रभावित पौधों को उखाड़ कर जला देना चाहिए।
- 15 कि.ग्रा/है. थीमेट खेत की तैयारी के समय भूमि में अच्छी तरह मिला देना चाहिए।
- नीम का तेल 12.5 लीटर/है. अथवा फॉसालोन 35 ईसी 1.25 लीटर/है. की दर से स्प्रे करे।

(ब) रोग : वाली का कंडुआ (*स्फेसैलोथेका डैस्ट्ररूअन्स*), बीज सड़न (*मैलानोम्या पेनिसि*), पत्ती की धारी दार रोग (*सूडोमोनास पेनिसिमिलासेई*),

रोकथाम

- बीजों को 55 डिग्री सेल्सियस तापमान पर प्रतिशत 7–10 मिनट तक डूबोने से बीजाडु मर जाते हैं।
- बुवाई से पूर्व बीजों को एग्रोसन जी एन अथवा कैप्टान 2.5 ग्राम/कि.ग्रा. बीज दर से उपचारित करना चाहिए।
- बीजों को 5 प्रतिशत मैग्नीशियम आरसीनेट 1 ग्राम/कि. ग्रा. बीज दर से उपचारित करने से पत्ती की धारी दार रोग नियंत्रित होती है।

12. फसल कटाई एवं भण्डारण : चना की फसल 65–70 दिन में पककर तैयार हो जाती है। जब चना की बाली दो तिहाई तक पक जाये तब फसल की कटाई कर देनी चाहिए। भण्डारण करते समय दानों में 10–12 प्रतिशत से अधिक नमी नहीं होनी चाहिए।

13. उपज : उन्नतशील सस्य क्रियाओं को अपनाकर चना के दानों की उपज 20–25 क्विंटल/हैक्टेयर तथा भूसे की उपज 15–20 क्विंटल/हैक्टेयर तक प्राप्त की जा सकती है।

"आज का लेखक विचारों और भावों के इतिहास की वह कड़ी है जिसके पीछे शताब्दियों की कड़ियाँ जुड़ी हैं।"

–माखनलाल चतुर्वेदी

"यदि स्वदेशाभिमान सीखना है तो मछली से, जो स्वदेश (पानी) के लिये तड़प–तड़प कर जान दे देती है।''

–सुभाषचंद्र बसु

भारत में बीटी कॉटन

प्रकाश एन. तिवारी, निशी मिश्रा, विनोद कुमार साहू, कीर्ति तंतवाय,
सुषमा नेमा एवं एल. पी. एस. राजपूत
जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय जबलपुर (म.प्र.)

बीटी कपास आनुवंशिक रूप से संशोधित फसल है जो मिट्टी के जीवाणु, *बेसिलस थुरिंजिएंसिस* से प्राप्त एक कीटनाशक प्रोटीन को व्यक्त करता है, जिसे आमतौर पर बीटी कहा जाता है। *बी. थुरिंजिएंसिस* की कई उप–प्रजातियाँ कीड़ों के विभिन्न जनन के लिए विषाक्त हैं लेकिन अन्य जीवों के लिए सुरक्षित हैं। बीटी की खोज सबसे पहले वर्ष 1901 में एक जापानी वैज्ञानिक इशिवाता ने की थी। बीटी का उपयोग 1938 से संयुक्त राज्य अमेरिका और फ्रांस में एक कीटनाशक के रूप में और बाद में भारत सहित कई अन्य देशों में एक पंजीकृत कीटनाशक के रूप में आईपीएम कार्यक्रमों में संग्रहित अनाज के कीटों के नियंत्रण के लिए छिड़काव के रूप में किया गया। इस प्रकार बीटी विषाक्त पदार्थों का उपयोग कई दशकों से कीटों के चयनात्मक नियंत्रण के लिए किया जा रहा है, जो गैर–लक्ष्य जीवो के लिए पूरी तरह से सुरक्षित है। वर्तमान में, *बी. थुरिंजिएंसिस* की 67 उप–प्रजातियां को मान्यता दी गई है, जिसमें से अधिकांश प्रजातियां बीजाणु और कीटनाशक प्रोटीन का उत्पादन करती हैं।

बी. थुरिंजिएंसिस उपभेद मुख्य रूप से तीन प्रकार के कीटनाशक विष प्रोटीन, क्रिस्टल (क्राय), साइटोलिटिक (साइट) और वनस्पति रूप से व्यक्त कीटनाशक प्रोटीन (वीआईपी) का उत्पादन करते हैं। ये विष कुछ कीट प्रजातियों के लिए बहुत विशिष्ट हैं। कुल 229 क्राय (Cry1Aa से Cry72Aa), 11 साइट (cyt1Aa से cyt3Aa) और 102 वीआईपी (vip1Aa1 से vip4Aa1) विषाक्त पदार्थों की पहचान 2012 तक की जा चुकी है।

Cry1Ac प्रथम बीटी जीन था जिसका उपयोग पहली बीटी–कपास किस्म विकसित करने के लिए किया गया। एग्रोबैक्टीरियम ट्यूमिफेसिएंस एक जीवाणु का उपयोग करते हुए, इस जीन को कपास के जीनोम में स्थानांतरित किया गया। इस संशोधित कोशिकाओं को बीटी–कपास, एक पूर्ण अनुवांशिक रूप से संशोधित पौधों में विकसित किया गया। Cry1Ac टॉक्सिन्स कीड़ों की प्रजातियों के लिए अत्यधिक विशिष्ट है और इससे अन्य जीवित प्रजातियों को कोई नुकसान पहुंचाए जाने की कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है।

वर्तमान में, भारत में व्यवसायिक खेती के लिए तीन जीन Cry1Ac, Cry2Ab vkSj Cry1C स्वीकृत किए गए हैं। भारत में, उपलब्ध बीटी कपास संकर मुख्य रूप से मोनसेंटो (Cry1Ac और Cry1Ac + Cry2Ab), मेटाहेलिक्स (Cry1C), जेकेबीज (Cry1Ac) और चीनी कृषि विज्ञान अकादमी नाथ बीज (संशोधित Cry1Ac फ्यूजनजीन) द्वारा विकसित किए गए हैं। वर्तमान में, बायरक्राप Cry1Ab + Cry2Ae के साथ और डॉउ एग्रोसाइंस Cry 1Ac + Cry 1F जीन का क्षेत्र परीक्षण कर रहा है। सन् 2012 तक, भारतीय बाजार में 1128 बीटी–कपास संकर उपलब्ध थे, जिन्हें 40 से अधिक बीज कंपनियों द्वारा विकसित किया गया था।

बीटी कॉटन की जरूरत

भारत में वर्ष 2001 तक, 747 करोड़ रुपये मूल्य के लगभग 9400 मैट्रिक टन कीटनाशकों का उपयोग कपास कीट नियंत्रण के लिए किया गया परंतु अप्रभावी रहा। इन कीटनाशकों में से लगभग 70% कीटनाशकों का उपयोग बॉलवर्म नियंत्रण और शेष का उपयोग रस–चूसने वाले कीड़ों के लिए किया गया। पादप प्रजनन में उपयोग की जाने वाली कपास जनन द्रव्य में प्रतिरोधक क्षमता उपलब्ध ना होने के कारण कपास की कीट प्रतिरोधी किस्मों का विकास असफल रहा है।

बीटी कपास के विकल्प के रूप में, कपास कीट प्रबंधन के लिए कई तकनीकी हैं लेकिन उनमें से कोई भी बीटी–कपास की तरह कुशल नहीं है। सभी वैकल्पिक विधियां अनुप्रयोग के बाद उसकी प्रभावशीलता के लिए मौसम की स्थिति पर ज्यादातर निर्भर करती हैं। बार–बार अनुप्रयोगों की आवश्यकता खेती की लागत को बढ़ाती है। जैविक कपास की खेती तभी लाभकारी रूप से हो सकती है, जब बुके वर्म्स का प्रकोप न हो और गुलाबी और चित्तीदार बोलवर्म के प्रबंधन के लिए इको–फ्रेंडली तकनीक उपलब्ध हों।

इसलिए वर्तमान में, बीटी–तकनीक बोलवर्म प्रबंधन के लिए सभी उपलब्ध विकल्पों में से सबसे श्रेष्ठ, प्रभावी और पर्यावरण के अनुकूल है। बीटी–कपास के साथ सबसे बड़ा लाभ यह है कि यह बोलवॉर्म के प्रकोप से निरंतर सुरक्षा प्रदान करता है, जो कपास की फसल को अधिकतम नुकसान पहुंचाता है।

बीटी कपास की खेती करने वाले देश

संयुक्त राज्य अमेरिका, मैक्सिको और ऑस्ट्रेलिया में व्यवसायिक खेती के लिए पहला कीट प्रतिरोधी बीटी–कपास 1996 में cry1Ac के साथ जारी किया गया था। इसके बाद इसे

विश्व के कई देशों में लाभप्रद खेती के लिए जैसे चीन (1997), अर्जेंटीना (1998), दक्षिण अफ्रीका (1998), कोलम्बिया (2002), भारत (2002), ब्राजील (2005), कोस्टा–रिका (2008), बुर्किनाफासो (2009) और वर्तमान में म्यांमार और पाकिस्तान (2010) में जारी किया गया। बीटी कपास की खेती करने वाले देशों में भारत 112 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल के साथ अग्रणी है।

भारत में बीटी प्रौद्योगिकी का विकास

भारत में व्यवसायिक खेती के लिए अब तक छह बीटी कपास की प्रक्रियाओं को मंजूरी दी गई है। बीटी कॉटन प्रक्रिया में Cry1Ac, Cry1C और Cry2Ab2 को निम्न विभिन्न स्रोतों से भारत में विकसित किया गया है :

1. मोनसेंटो : MON531 (Cry1Ac) प्रक्रिया बोलार्ड
2. मोनसेंटो : मोनॉल 985 (Cry 2 Ab2) प्रक्रिया बोलार्ड–II
3. जेके बीज : जे के प्रक्रिया–1 (Cry1Ac)
4. चीनी कृषि विज्ञान अकादमी, चीन : GFM Cry1A (Cry1Ac) प्रक्रिया
5. एन.आर.सी.पी.बी. नई दिल्ली और यू.ए.एस. धारवाड़, भारत : BNLA601 (Cry1Ac) प्रक्रिया सी.आई.सी.आर., नागपुर
6. इंडियाः प्रक्रिया 9124 (Cry1C)

भारत में उपलब्ध बीटी हाइब्रिड

भारत में बीटी–कपास तकनीक को पहली बार 2002 में जी.ई.ए.सी. (जिनेटीक इंजीनियरिंग एप्राइसल कमेटी) द्वारा केंद्रीय और दक्षिण भारतीय कपास उत्पादक जोन में तीन संकर MECH-12, MECH-162 और MECH–184 को व्यावसायिक खेती के लिए अनुमोदित किया गया था। बाद में 2004 में, जी.ई.ए.सी. ने केंद्रीय और दक्षिणी क्षेत्रों में खेती के लिए RCH–2 (रासी बीज) को मंजूरी दे दी। 2005 में व्यावसायिक खेती के लिए 16 संकरों को और मंजूरी दी गई। 2006 तक 62 बीटी–संकर, 2007 तक 138 बीटी–संकर, जुलाई 2008 तक 283 बीटी–संकर, 564 बीटी–संकर, अगस्त 2009 तक एक बीटी–किस्म, 809 और मई 2012 तक 1128 बीटी कपास संकर व्यावसायिक खेती के लिए बाजार में उपलब्ध थे।

अन्य बीटी फसलों की आवश्यकता

वर्तमान में, वैश्विक जलवायु परिवर्तन के कारण नए कीटों और बीमारियों का उभरना दुनिया की बढ़ती आबादी की मांगों को पूरा करने के लिए प्रमुख चुनौतियां हैं। जनन द्रव्य के भीतर आनुवंशिक परिवर्तनशीलता की सीमित उपलब्धता के कारण पारंपरिक प्रजनन विधियां चुनौतियों का सामना करने में असमर्थ होते हैं। इसलिए, पारंपरिक प्रजनन के साथ पारजीनी तकनीक का प्रयोग सदाबहार क्रांति लाने के साथ–साथ हमारे देश में खाद्य उत्पादन में आत्मनिर्भरता बनाए रखने के लिए एक अच्छा विकल्प होगा।

भारत में धान, कपास और अरहर तीनों फसलों में कीटनाशकों का प्रयोग अधिकतम होता है। 2010 में भारतीय कृषि में कीट प्रबंधन के लिए 4215 करोड़ रुपये के कीटनाशकों का उपयोग किया गया था, जिसमें से कुल खपत का 30% धान पर, 21% कपास पर और 8% अरहर पर इस्तेमाल किया गया। अन्य फसलों जैसे कि मिर्च में 5.5%, सोयाबीन में 3.7%, बेन्गल चना में 3.5% और बैंगन में 3.1% की मात्रा में कीटनाशक उपयोग हुआ। कीटनाशकों के भारी उपयोग के बावजूद, इन फसलों में कीटों के कारण फसल के नुकसान का अनुमान 30 से 50% तक हुआ, जो कि मुख्यतः कीटों, जैसे बोर्लवर्म, बोरर्स (फली, तना, फल और गोली बोरर्स) के कारण हुआ।

Cry विष का उपयोग करके जीएम फसलों जैसे धान, अरहर, सोयाबीन और मिर्च के विकास से खाद्य फसलों पर खतरनाक कीटनाशकों के उपयोग को कम किया जा सकता है क्योंकि बीटी खाद्य फसलें जैसे बीटी–मक्का और बीटी–सोयाबीन के लगभग एक दशक तक सीधे उपभोग करने के बावजूद Cry 1 Ab या Cry 1 Ac की विषाक्तता गैर–लक्षित जीवों जैसे कि मानव और पक्षियों आदि के लिए कोई प्रमाणिक वैज्ञानिक रिपोर्ट नहीं है।

संदर्भ

क्रांती, के. आर. (2012), बीटी कपास के सवाल और जवाब, इंडियन सोसाइटी फॉर कॉटन इंप्रूवमेंट (आई.एस.सी.आई.), मुंबई।

मंजूनाथ, टी.एम. (2007), भारत में बीटी कॉटन पर क्यू एंड ए, ऑल इंडिया क्रॉप बायोटेक्नोलॉजी एसोसिएशन (ए.आई.सी.बी.ए.), नईदिल्ली।

विलायती बबूल : आजीविका का एक साधन

अंकिता वर्मा, वर्षा गुप्ता, डी.एस. सासोडे, एकता जोशी एवं बी. एस. कसाना
राजमाता विजयाराजे सिंधिया, कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

विलायती बबूल जिसका वानस्पतिक नाम *प्रोसोपिस जूलिफलोरा* (*Prosopis juliflora*) है, यह झाड़ीदार छोटे प्रकार का वृक्ष है तथा शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में सभी प्रकार की भूमियों में आसानी से उग आता है। इसका मूल निवास मैक्सिको, दक्षिण अमेरिका और कैरेबियन है। इसको पशुआहार, लकड़ी एवं पर्यावरण प्रबंधन के लिये उपयोग में लाया जाता है। इसको 'अंग्रेजी बबूल', 'काबुली कीकर', 'विलायती खेजरा / खेजड़ी' भी कहते हैं।

यह वृक्ष 12 मीटर लम्बा व तने का व्यास 1.2 मीटर तक होता है। इसकी जड़े इतनी गहराई तक चली जाती हैं कि यह एक कीर्तिमान है। एरिजोना के पास एक खुली खान में, इसकी जड़े 53.3 मीटर गहराई तक प्रवेश कर गई थी। यह ईंधन की समस्या को नियंत्रित करने में बहुत मददगार हुआ है। ग्रामीण क्षेत्र में इसका प्रयोग ईंधन के रूप में किया जाता है। इस वृक्ष की लगभग 45 प्रजातियाँ पाई जाती हैं। यह वृक्ष शुष्क क्षेत्रों में रहने वाले गरीब किसानों की आजीविका में अहम भूमिका निभाता है, किन्तु इस प्रजाति के लिये भारत के साथ–साथ अन्य देशों में भी वाद–विवाद हो रहा है कि यह प्रजाति एक आक्रामक खरपतवार का रूप ले रही है। बड़े किसानों ने केन्द्र व राज्य सरकारों पर इस वृक्ष को बड़े पैमाने पर उखाड़ फेंकने या इसके पौधारोपण को प्रतिबंधित करने के लिये लगातार दबाब बनाया किन्तु कोई सफलता हासिल नहीं हुई। अनेक प्रयासों के पश्चात् इसको उचित तरीके से अमल में लाने का प्रयास किया गया, जिसमें लवण प्रभावित क्षेत्रों में इस अवांछित वृक्षरूपी खरपतवार को एक उत्पादक, लाभदायक तथा स्थिर रोजगार की आजीविका का संसाधन बनाकर गरीबी कम करने हेतु वैकल्पिक स्त्रोत के रूप में परिवर्तित करने का प्रयास किया गया।

विलायती बबूल विदेशों से आई प्रजाति है। गुप्ता एवं बलारा (1972) ने बताया कि भारत में *प्रोसोपिस* सन् 1857 में मेक्सिकों से आया था। इसी प्रकार कोन्डा रेड्डी (1978) ने बताया कि यह वृक्ष तत्कालीन मद्रास राज्य के कुडप्पा जिले के कामडापुर में सन् 1876 में उस समय के वन संरक्षक आर.एच. बेडोमे द्वारा लाया गया था, तथा वहाँ से भारत के अन्य भागों में इसका फैलाव हुआ। राजस्थान में इसका उपयोग आजीविका के साधन के रूप में किया जाता है। यह वृक्ष कृषि प्रणाली का एक महत्वपूर्ण भाग है तथा राजस्थान के सीमांत एवं लघु कृषकों तथा गरीब लोगों को चारा, ईंधन की लकड़ी तथा शाक–सब्जी प्रदान करते है। जिस भूमि में ज्यादा खेजड़ी उगा होता है उस भूमि की अच्छी कीमत लगाई जाती है।

लवणता तथा क्षारीयता के प्रति सहनशीलता

प्रोसोपिस प्रजाति के वृक्षों को मृदा एवं जलीय लवणों के प्रति अत्यधिक प्रतिरोधी बताया गया है। एक रिर्पोट के आधार पर इसे समुद्री जल लवणता के समकक्ष मृदा लवणता की परिस्थितियों में भी उगाया जा सकता है। टेक्सास ए. एवं आई. विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने पाया कि *प्रोसोपिस* की सभी प्रजातियॉ वृद्धि में आंशिक कमी के साथ 6000 मिलीग्राम प्रति लीटर लवणता को सहन कर सकती है। *प्रोसोपिस वेलूटिना* 12000 मिग्रा प्रति लीटर लवणता स्तर तक सहन कर सकती है। भारतीय अध्ययन के अनुसार 27 डेसीसीमन प्रति मीटर या अधिक वैद्युत चालकता वाली मृदाओं में भी विलायती बबूल की वृद्धि संतोषप्रद होती है।

इसी प्रकार यह क्षारीयता के प्रति भी सहनशील होता है कई प्रक्षेत्र अध्ययन दर्शाते हैं कि पी.एच. मान 10.0 तक वाली मृदाओं में भी *प्रोसोपिस* प्राकृतिक रूप से उगा होता है। अर्थात् पी.एच. मान 10.0 से अधिक होने पर इसके जीवित रहने व वृद्धि करने की संभवना सीमित हो जाती है। केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान (सी.एस.एस.आर.आई.), करनाल के वैज्ञानिकों ने उच्च पी.एच. मान वाली मृदाओं में प्रोसोपिस को उगाने हेतु बर्मे (ऑगर हॉल) का विकास किया है। इस तकनीक द्वारा रोपण करने से 8–10 वर्ष बाद भी *प्रोसोपिस* प्रजाति के वृक्ष 80 प्रतिशत जीवित रह सकते हैं। इस विधि में ट्रैक्टर चलित बर्मे द्वारा 20–25 सेमी व्यास तथा लगभग 120 सेमी गहरे गड्ढ़े बनाए जाते हैं जो अत्यधिक क्षारीय मृदाओं में लगभग एक मीटर की गहराई पर स्थित कैल्शियम कार्बोनेट के कठोर स्तर को भेद देते हैं। इन गड्ढ़ों को वास्तविक क्षारीय मृदा, 3–4 किलोग्राम जिप्सम ($CaSO_4$-$2H_2O$) तथा 7–8 किलोग्राम गोबर की खाद के मिश्रण द्वारा पुनः भर कर *प्रोसोपिस* की पौध का रोपण कर दिया जाता है।

विलायती बबूल द्वारा मृदा सुधार

प्रोसोपिस जूलिफ्लोरा अन्य वृक्षों की तुलना में लवणग्रस्त मृदाओं को सुधारने में ज्यादा प्रभावकारी है। लवणग्रस्त मृदाओं में *प्रोसोपिस* की पत्तियों, टहनियों का कचरा जमीन पर गिरकर मृदा में ह्यूमस की मात्रा बढ़ा देता है। सड़े हुए कचरे से पैदा हुए कार्बनिक अम्ल स्थानीय कैल्शियम कार्बोनेट से क्रिया करके कैल्शियम को मुक्त करते हैं, जो विनिमय श्रृखंला से सोडियम को बदल लेते हैं। ये अम्ल क्षारीय मृदाओं में पहले से उपस्थित अवक्षेपित कैल्शियम कार्बोनेट को घोलने में सहायता

करते हैं। इस प्रकार विलायती बबूल का रोपण करके भूमि को फसल उत्पादन हेतु तैयार किया जा सकता है।

बबूल लकड़ी की गुणवत्ता

बबूल की लकड़ी में एक विशेष गुण पाया जाता है, जो अन्य वृक्षों की लकड़ी में बहुत कम होता है। इसकी लकड़ी नगण्य मात्र (4.17%) को सिकुड़ती है। इस कारण इसका प्रयोग फर्नीचर बनाने में भी किया जाता है। इसके अतिरिक्त ईधन में, खंभो व बल्लियों को बनाने में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

विलायती बबूल से प्राप्त होने वाले उत्पाद

विलायती बबूल से भिन्न–भिन्न उत्पाद प्राप्त किये जा सकते हैं, जो निम्न हैं :

1. बायोमास उत्पाद : इस बहुउद्देशीय वृक्ष की बायोमास उत्पादन क्षमता अन्य वृक्षों की तुलना में सर्वाधिक है। इसमें 6.1 टन/हैक्टेयर/वर्ष इसके अवशेष प्राप्त किये जाते है, जिसका प्रयोग बायोमास उत्पादन में किया जाता है।

2. फली का उत्पादन : *प्रोसोपिस* के पेड़ों पर पशुओं व मनुष्यों के आहार के लिये खासी मात्रा में उत्तम प्रोटीन व शर्करायुक्त फलियाँ एक साल में 2–3 बार लग जाती हैं।

3. बिजली उत्पादन : बिजली उत्पादन हेतु बायोमास प्राप्त करने के लिये *प्रोसोपिस* उगाने में रूचि बढ़ रही है। एक अध्ययन के अनुसार 1.4 किलोग्राम बायोमास से एक यूनिट बिजली पैदा की जा सकती है।

4. चारकोल उत्पादन : *प्रोसोपिस* के 80 प्रतिशत से अधिक क्षेत्रों को चारकोल उत्पादन के लिये प्रयोग किया जाता है। इसमें वृक्षों को 3–4 वर्ष में काटा जाता है।

5. शहद उत्पादन : *प्रोसोपिस* प्रजाति के फूलों से बना हुआ शहद आकर्षक खुशबू के साथ गुणवत्ता में श्रेष्ठ पाया गया है। भारत में हर वर्ष लगभग 100 टन शहद गुजरात वन विभाग द्वारा गुजरात के कच्छ जिले में उगे *प्रोसोपिस* से पैदा किया जाता है।

निष्कर्ष

उपरोक्त निष्कर्ष से यह सिद्ध होता है, कि विलायती बबूल (*प्रोसोपिस जूलिफलोरा*) काँटेदार झाड़ी, वृक्ष होने के बाबजूद भी अनेक लाभकारी गुणों के कारण अपनाया गया है। इस प्रकार *प्रोसोपिस* द्वारा भारत में गरीबी को घटाने, भूमि सुधार करने तथा लाभदायक उत्पादन में सहायता करता है। दिन–प्रतिदिन *प्रोसोपिस* प्रजाति में होने वाली कमी के कारण इसे राष्ट्रीय संपदा के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है।

हिंदी में बात है क्योंकि हिन्दी में जज्बात है।

''जब तक जीवन तब तक सीखना''
अनुभव ही जगत में सर्वश्रेष्ठ शिक्षक है।
– स्वामी विवेकानंद

भारतीय गर्म एवं शुष्क क्षेत्र के पादप आनुवंशिक संसाधनों में उपलब्ध विविधता

करतार सिंह [1], नीलम शेखावत [1], दमाराम [2], मनोज चौधरी [3], लक्ष्मण सिंह राजपूत [4]

धर्मेन्द्र चौधरी [5] हनुमान राम [6] एवं सुभाष चन्द्र [7]

1. भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, क्षेत्रीय कार्यालय, जोधपुर 2. कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर

3. भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय समेकित नाशीजीव प्रबंधन अनुसंधान केंद्र, नई दिल्ली

4. भा.कृ.अनु.प.–भारतीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इन्दौर 5. भा.कृ.अनु.प.– केन्द्रीय आलू अनुसंधान संस्थान, शिमला

6. भा.कृ.अनु.प.–विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोरा 7. भा.कृ.अनु.प.–खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

मानव विरासत का एक हिस्सा, पादप आनुवंशिक संसाधन (पी.जी.आर.) कृषि–जैव विविधता के सबसे महत्वपूर्ण घटक हैं। वे नयी फसलों के विकास और मौजूदा फसलों के पुनर्गठन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जिनमें एक या दूसरे गुणों की कमी होती है। पीजीआर में आधुनिक किस्में, खेती की कई पादप प्रजातियाँ/किस्में, भू–प्रजाति, प्रजनन लाइन्स, और आनुवांशिक भंडार, जंगली और जंगली संबंधी शामिल हैं। प्राकृतिक बलों के माध्यम से सहस्राब्दियों से निर्मित विशाल आनुवंशिक विविधता और फसलों के जंगली प्रजातियों में मौजूदा, विविधता से पूरित–पादप जीव बदलती पर्यावरणीय परिस्थितियों के अनुकूल होते हैं। यह विविधता पादप प्रजनन के माध्यम से फसल उत्पादकता बढ़ाने के लिए कच्चे माल का एक स्रोत है। यह लोगों द्वारा विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों, दवाओं और कच्चे माल की खपत का स्त्रोत भी है। इस तरह से आनुवंशिक संसाधनों को समाज के सबसे मूल्यवान कच्चे माल के रूप में माना जा सकता है। आनुवंशिक संसाधनों की प्रजातियों की विविधता या आनुवंशिक लाइन के संसाधनों की विविधता में कोई कमी एक अपरिवर्तनीय हानि का कारण होती है, जो नई समस्या और अवसरों के लिए समाज की चुनौतियों से सामना करने की गुंजाइश को कम करती है। कभी असीमित मानी जाने वाली आनुवंशिक भिन्नता तेजी से खत्म हो रही हैं क्योंकि आधुनिक किस्मे बड़े क्षेत्रों में पारंपरिक किस्मों का स्थान ले रही हैं, और फसलों की जंगली प्रजातियों के प्राकृतिक रहवास, मानव गतिविधियों द्वारा नष्ट हो रहे हैं। इसलिए फसल की आनुवंशिक विविधता को नए कीटों और बीमारियों से निपटने के लिए और बदलते वातावरण के लिए बेहतर रूप से अनुकूलित किस्मों का उत्पादन करने के लिए, संरक्षित किया जाना आवश्यक है। पादप आनुवंशिक संसाधन, खाद्य सुरक्षा, गरीबी उन्मूलन, पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।

कृषि–जैव विविधता के लिए शुष्क पश्चिमी क्षेत्र भारत में पाये जाने वाले हॉट स्पॉट में से एक है। इस हॉट स्पॉट में राजस्थान के निम्नलिखित जिले शामिल हैः सीकर, नागौर, पाली, हनुमानगढ़, गंगानगर, जालौर, सिरोही, जोधपुर, जैसलमेर के कुछ हिस्से, बीकानेर, उदयपुर, डूंगरपुर, चूरू और झुंझुनूं। राजस्थान में आदिवासियों की आबादी 7.0 मिलियन है, जो राज्य की आबादी का 12–15% है। प्रमुख जनजातियाँ भील, भील मीना, डमरिया, धनका, गरासिया, कथोड़ी, कोली धोर, मीना, नाइकदा, पटेलिया और सहरिया हैं।

दुनिया के बारह मेगा–विविधता वाले देशों में भारत एक महत्वपूर्ण राष्ट्र है जिसमें दुनिया के विभिन्न हिस्सों में पाए जाने वाली लगभग सभी जलवायु परिस्थितियाँ और पारिस्थितिक क्षेत्र शामिल हैं। राजस्थान का रेगिस्तान, यानी थार रेगिस्तान भारत की जैविक प्रजातियों की विविधता में पारिस्थितिक रूप से महत्वपूर्ण क्षेत्रों में से एक है। पश्चिम भारतीय थार मरुस्थल एक विशिष्ट वातावरण का प्रतिनिधित्व करता है जहाँ पौधों ने विपरीत परिस्थितियों के बीच अनुकूलन प्राप्त किया है। अनियमित वर्षा और उच्च तापमान के साथ कम होता हुआ पानी वनस्पति पर विपरीत प्रभाव डालता है, लेकिन अभी भी कई पौधों की प्रजातियाँ यहाँ पाई जाती हैं, जो अमानवीय परिस्थितियों के बावजूद अच्छी तरह से पनपती हैं। विभिन्न पौधों की प्रजातियां, जो शुष्क वातावरण में आम हैं, में शामिल हैं: *अरवा पर्सिका, अचायरेंथेस एस्पेरा, क्लीकोम विस्कोसा, कोरोकोरस डिप्रेसस, कोरोकोरस ट्रिडेंस, क्रोटोलारिया बुर्हिया, लेप्टेडेनिया पायरोटेक्निका, टेफ्रोसिया परपुरिया, प्रोसोपिस सिनेरारिया, केलोट्रोपिस प्रोसेरा, टेकोमेला उन्दुलाता, जिजिफस* **स्पी.** *सिट्रूलस कोलोसिन्थिस, कैपरिस डेसीडुआ, बेलानिटीज एजियेटियाका, मेटेनस एमरगिनाटा, ओपंटिया डीलीनैनी, पार्किंसोनिया एकुलिएट, सल्वाडोरा ओलेओड्स, सल्वाडोरा परसिका, क्लेरोडेन्ड्रम फ्लोमिडिस, फार्सेटिया हैमिल्टन,* इत्यादि घासों के बीच, *अरस्तिडा फुंसीटाटा, ब्रेकेरिया रैमोसा, सौन्चास स्पीसीज, क्लोरीस बर्जेटा, सिनोडोन डेक्टाइलोन, डेक्टायलोक्टेनियम* स्पी., *टेट्रापोगोन टेनला, ट्रागस रेसमोसस* आदि। बरसात के मौसम के दौरान बड़ी संख्या में खरपतवार बीज/भूमिगत वनस्पति

भागों के माध्यम से निकलते हैं। विदेशी पौधें *वेर्बिसिना* और *पार्थेनियम,* भारतीय रेगिस्तान की प्राकृतिक जैव विविधता को बहुत अधिक नुकसान कर रहे हैं। विशिष्ट रेगिस्तानी पौधे आमतौर पर वसंत ऋतु के साथ–साथ गर्मियों के महीनों में अलग–अलग बीजों का उत्पादन करते हैं। चूंकि भारतीय रेगिस्तान की जलवायु जीवन के लिए प्रतिकूल है, इसलिए विशेष अनुकूलन वाले पादप ही जीवित रहते हैं। भारतीय शुष्क क्षेत्र में, पानी इस क्षेत्र के वनस्पति प्रचलन को निर्धारित करने में मुख्य कारक है। पौधों की वृद्धि और विकास लंबे समय तक नहीं होने वाली बारिश से अवरूद्ध होती हैं, जो पौधों के जीवन को खतरे में डालते हैं। फिर भी, इस क्षेत्र में पौधे विविधता को बनाए रखते है। भारतीय रेगिस्तान के संदर्भ में जैव विविधता का संरक्षण न केवल सबसे नाजुक पारिस्थितिक प्रक्रियाओं और जीवन– समर्थन प्रणाली को बनाए रखने के लिए आवश्यक है, बल्कि प्रजातियों के साथ–साथ पारिस्थितिकी तंत्र के स्थायी उपयोग को सुनिश्चित करने के लिए भी आवश्यक है। अत्यधिक उपयोग के कारण बहुत ज्यादा पादप किस्में शुष्क क्षेत्र से गायब हो गई है और संख्या भी घट गई हैं। ठोस लकड़ी के कारण रेगिस्तानी सागौन के नाम से प्रसिद्ध *टेकोमेला अंडुलाटा* कभी संख्या बाहुल्य पेड़ था, लेकिन वर्तमान में केवल कुछ ही पेड़ उपलब्ध हैं। यह पूरी तरह विलुप्त है और नक्काशीदार फर्नीचर के निर्माण में उपयोग किया जाता है। *कैलिगोनम पॉलीगानोइड्स* एक उच्च अम्लता अनुकूलित झाड़ी है यह रेत के टीलों पर उगता है और इसकी बहुत लंबी सतह चलने वाली जड़ों के कारण, यह एक उत्कृष्ट रेत बांधने के रूप में कार्य करता है। इस झाड़ी के साथ–साथ इसकी व्यापक जड़ प्रणाली की खुदाई एक नियमित व्यवसाय है। सभी पौष्टिक बारहमासी घास सदियों से चराई के लिए उपयोग होती है और उन्हें अल्पकालिक वार्षिक घासों द्वारा प्रतिस्थापित किया जा रहा है, जो गुणवत्ता में अच्छी नहीं हैं।

भारतीय गर्म शुष्क क्षेत्र 3.2 लाख वर्ग किमी में फैला हुआ है, जो ज्यादातर राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, आंध्र प्रदेश और कर्नाटक में स्थित है उसमे से 62 प्रतिशत क्षेत्र राजस्थान में स्थित हैं। गर्म रेगिस्तानी क्षेत्रों में धूप, भूमि और मिट्टी की प्रचुरता है। जल, जैव विविधता की स्थिरता के लिए प्राथमिक सीमित कारक है। उच्च तापमान के साथ संयुक्त कम और अनियमित वर्षा, शुष्क क्षेत्र के पौधे की जैव विविधता पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। थार मरुस्थल, 240–290 N अक्षांश और 700–760 E देशांतर के बीच स्थित है, और दुनिया के अन्य रेगिस्तानों के विपरीत, इसकी जनसंख्या घनत्व और कई उपयोगी पौधों की प्रजातिया प्रचुर है। पौधों की प्रजातियाँ और पशुधन अच्छी उत्पादन क्षमता वाली नस्लें हैं जो वर्षों से कठोर जलवायु परिस्थितियों में विकसित हुई हैं। शुष्क क्षेत्र में वनस्पति बहुउद्देशीय पेड़ों, झाड़ियों, वार्षिक और बारहमासी रेंज–फलियां और रेंज घास का अनूठा मिश्रण है। समृद्ध फसल विविधता भारतीय शुष्क क्षेत्र में प्रजातियों, जीनोटाइप और पारिस्थितिकी दोनों की संख्या के संदर्भ में उपलब्ध है। दुनिया के अन्य गर्म रेगिस्तानों के विपरीत, थार एक बड़ी मानव और पशु आबादी को समाहित करता है और शानदार पुष्प और जीव जंतु विविधता का प्रदर्शन करता है। इस तथ्य का एक प्रमाण ऊँचे पौधों की लगभग 682 प्रजातियों, 68 स्तनधारियों, 300 पक्षियों, छिपकलियों के 23 और रेगिस्तान में 25 साँपों का प्रलेखन है, इनमें से कुछ इस क्षेत्र के लिए स्थानिक हैं। राजस्थान, गुजरात के साथ–साथ सौराष्ट्र क्षेत्र में पश्चिमी शुष्क अर्ध–शुष्क क्षेत्र, बाजरा, ज्वार, गेहूं (सूखा और लवणता सहिष्णुता) की समृद्ध कृषि–जैव विविधता के प्रकार हैं, ग्वार, मोठ, ग्वारपाठा, काला चना, मूंग बीन, सरसों, तिल, मिर्च, ककड़ीदार सब्जियाँ, छोटी सब्जियाँ और फल, रेंज घास, फलियाँ और मसाला फसलें (धनिया, मेथी, अजवाइन और लहसुन)।

पिछली शताब्दी के दौरान, थार ने मानव और पशुधन आबादी में आश्चर्यजनक वृद्धि देखी है। इससे प्राकृतिक संसाधनों पर भारी दबाव पड़ा है। खेती और विकास के उद्देश्यों के लिए एक बार व्यापक घास के मैदानों को मोड़ दिया गया है। पशुपालन से कृषि, विकासात्मक गतिविधियों, पर्यटन के प्रभाव और अन्य कारकों के बीच आधुनिक संचार प्रणाली में परिवर्तन ने पारिस्थितिक पैटर्न में बदलाव लाने में योगदान दिया है। भोजन, चारे और औद्योगिक विकास की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, बड़े क्षेत्रों को खेती के उपयोग में लाया गया है, ज्यादातर सीमांत श्रेणी और चराई संसाधनों की कीमत पर और कुछ सबसे प्रसिद्ध घास प्रजातियों को विनाश का सामना करना पड़ रहा है। वनस्पति आवरण के तेजी से क्षरण ने भूमि को क्षरण के माध्यम से क्षरण की ओर अग्रसर कर दिया, जिससे उनकी उत्पादकता अपरिवर्तनीय रूप से कम हो गई। इसने समग्र रूप से इको–सिस्टम की गतिशीलता को प्रभावित किया है।

पिछले 10,000 वर्षों में फसलीय पौधों में स्थानीय रूप से अनुकूलित जीनोटाइप की असंख्य प्रजातियां बढ़ी हैं। देशी और किसानों की अपनी लोक किस्में पौधे के प्रजनकों के लिए आनुवंशिक भंडार हैं। थार में सबसे समृद्ध जैव विविधता है। यह उच्च पोषक मूल्य की घासों का भंडार रहा है। स्थानिक घास जैसे *लसीसुरस सिंदिकस, सेन्क्रस सिलिअरिस, सेन्क्रस सेटिगेरिस, पैनिकम एंटिडोटेल, डायकेनथियम एनुलेटम* आदि और पेड़ प्रजातियां जैसे *टेकोमेला अडुलाटा, प्रोसोपिस सिनेरेरिया, अकेसिया निलोटिका, अकेसिया सेनेगल, साल्वाडोरा ओलेइड्स, सा. पेर्सिका,* एवम् झाड़िया जैसे की *केपेरिस डेसिदुआ, जिजिफस मोरिटिअना, कैलीगोनम पॉलीगानोइड्स, हेलोक्सिलीन सैलिकोर्निकम* और *कैलोट्रोपिस*

प्रोसेरा रेगिस्तान पारिस्थितिकी तंत्र की जीवन रेखा हैं। आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण प्रजातियों में से कुछ खतरनाक अवस्था में हैं और इनकी विविध आनुवंशिक सामग्रियों को इकट्ठा करने और संरक्षित करने की तत्काल आवश्यकता है। *प्रोसोपिस सिनेरेरिया, साल्वाडोरा* और वेचेलिया स्पी. जैसे महत्वपूर्ण स्वदेशी वृक्ष प्रजातियों के जर्मप्लाज्म को इकट्ठा करने के लिए अन्वेषण किए गए और बड़ी संख्या में पादप आनुवंशिक संसाधनों को एकत्र किया गया और संस्थान में संरक्षित किया गया।

कृषि–बागवानी फसलों में, शुष्क क्षेत्रों के विभिन्न हिस्सों से जर्मप्लाज्म एकत्र किया गया है और मूल्यांकन किया गया है। कृषि प्रजातियों में बाजरा, मोठबीन, मूंगबीन, ग्वार, चवला, कुल्थी, सरसों, गेहूं, ज्वार और तिल शामिल हैं। बागवानी फसलों में *जिजिफस, पुनिका ग्रेनटम, फीनिक्स डेक्टाइलिफेरा, एनोना स्क्वैमोसा, कॉर्डिया मिक्सा, कैरिसा कारैंडस, एम्बेलिका ऑफिसिनैलिस, आइल मार्मेलोस, कैपारिस डेसीडुआ* की खेती के लिए सिफारिश की गई है।

गर्म थार रेगिस्तान की अर्थव्यवस्था पशुधन को बढ़ाने के साथ निकटता से जुड़ी हुई है, जो मुख्य रूप से देशी जंगलों पर निर्भर करता है। बफेल ग्रास (*सेन्क्रस सिलिओरिस*), बर्डवुड ग्रास (*सेन्क्रस सेटिगरस*), सीवन (*लसीरस सिंडीकस*) और ग्रामना (*पैनिकम एंटिडोटेल*) इस क्षेत्र में प्रमुख चारागाह की घास हैं। राजस्थान का रेगिस्तान, घास की आनुवंशिक विविधता के प्राथमिक केंद्र के रूप में जाना जाता है, जिसमें कई आदिम और जंगली रूप शामिल हैं। पश्चिमी राजस्थान में घास की लगभग 106 प्रजातियाँ पाई जाती हैं। समृद्ध फसल विविधता भारतीय शुष्क क्षेत्र में स्थित प्रजातियों, जीनोटाइप और पारिस्थितिकी की संख्या के संदर्भ में उपलब्ध है। इस क्षेत्र में होने वाली आनुवांशिक विविधता इसकी अनुकूलता को देखते हुए और तनाव सहिष्णुता के जीन के भंडार घर बनाने के लिए पर्यावरणीय परिस्थितियों को कठोर करने के लिए बहुत महत्व रखती है। भारतीय शुष्क क्षेत्र मोठ, कुल्थी, बेलपत्र, कुंद्री और गुग्गुल जैसे मूल पौधों की उत्पत्ति का प्राथमिक केंद्र है। इस क्षेत्र में बाजरा की प्रचुर विविधता भी पाई जाती है। भा. कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो के क्षेत्रीय कार्यालय जोधपुर में विभिन्न स्थानों से बड़े पैमाने पर प्राप्त आनुवंशिक स्टॉक को संग्रहित करके रखा जा रहा है। कार्यालय के फील्ड जीन बैंक में इस क्षेत्र में पाई जाने वाली पादप विविधता के लिए 453 जननद्रव्य को जीवित पादप के तौर पर संरक्षित कर रखा हैं। इसके अलावा क्षेत्रीय जीन बैंक एंड राष्ट्रीय जीन बैंक, नयी दिल्ली में यह पाई जाने वाली फसलों के जनन द्रव्यों को संरक्षित किया गया हैं। सेंट्रल एरिड जोन रिसर्च इंस्टीट्यूट (काजरी) और इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ सीड स्पाइसेस जैसे भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थानों ने क्षेत्र से अपनी प्रचलित लोकप्रिय फसलों के मूल्यवान जर्मप्लाज्म एकत्र किए हैं। काजरी ने अपने वनस्पति उद्यान में इस क्षेत्र के औषधीय, सजावटी, रसीले, लुप्तप्राय और दुर्लभ पौधों की प्रजातियों की एक बड़ी संख्या में संरक्षण किया है।

आनुवांशिक संसाधन सीमित और नुकसान के प्रति संवेदनशील होते हैं। कभी–कभी असीमित मानी जाने वाली अनुवांशिक भिन्नता तेजी से नष्ट हो रही है क्योंकि आधुनिक खेती बड़े क्षेत्रों में पारंपरिक खेती की जगह लेती जा रही है, और फसलों की जंगली प्रजातियों के प्राकृतिक आवास नष्ट हो रहे हैं। प्राकृतिक आपदाएं, भूमि और फसल रूपांतरण, कृषि का मशीनीकरण, वनों की कटाई, विकासात्मक गतिविधियाँ जैसे बिजली परियोजनाएँ, सड़क बिछाने, शहरीकरण और पर्यावरण प्रदूषण (परागणकों का नुकसान) नुकसान की स्थिति को बढ़ा रहे हैं। उच्च उपज देने वाली किस्मों के एवज में किसानों द्वारा पारंपरिक किस्मों के परित्याग के कारण जैव विविधता पहले ही लुप्त हो चुकी है और कुछ इसकी कगार पर हैं। शेष बची हुई विविधता संकरण, चयन या आनुवंशिक बहाव के कारण धीरे–धीरे खत्म हो रही हैं। जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न ग्लोबल वार्मिंग, कृषि जैसे जलवायु संवेदनशील क्षेत्र को प्रभावित कर रहा है, जिससे आनुवांशिक क्षरण हो रहा है। परिणामस्वरूप निकट भविष्य में खाद्य और कृषि के लिए आनुवंशिक संसाधनों का मूल्य बढ़ेगा। जलवायु परिवर्तन के अनुकूल होने के लिए, खाद्य सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण पौधों और जानवरों को गर्मी, सूखा, बाढ़ और लवणता जैसे जैविक परिवर्तनों को समायोजित करने की आवश्यकता होगी। जैसे–जैसे जलवायु परिवर्तन नए कीट और बीमारी लाता है, फसल किस्मों द्वारा प्रतिरोध के नए स्रोतों की आवश्यकता होगी। आनुवंशिक विविधता, जो वर्तमान में कम करके आंकी गई है, आने वाले समय में और अधिक उपयोगी हो सकती है।

टमाटर की फसल में कीट एवं रोग प्रबन्धन

विश्वास वैभव[1], मनोज चौधरी[1], अभिषेक यादव[2], करतार सिंह[3],
दमा राम[4], लक्ष्मण सिंह राजपूत[5], धर्मेन्द्र चौधरी[6], हनुमान राम[7] एवं सुभाष चन्द्र[8]

1. भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय समेकित नाशीजीव प्रबंधन अनुसंधान केंद्र, नई दिल्ली
2. सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि विश्वविद्यालय, मेरठ
3. भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, क्षेत्रीय कार्यालय, जोधपुर
4. कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर, 5. भा.कृ.अनु.प.-भारतीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इन्दौर
6. भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय आलू अनुसंधान संस्थान, शिमला
7. भा.कृ.अनु.प.-विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोरा
8. भा.कृ.अनु.प.-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

परिचय

हमारे देश में उगाई जाने वाली विभिन्न प्रकार की सब्जियों में टमाटर का प्रमुख स्थान है। इसके फलों को विभिन्न प्रकार से प्रयोग में लाया जाता है तथा यह किसानों की आय बढाने में भी मुख्य भूमिका निभाता है। इसकी खेती वर्ष भर की जा सकती है। टमाटर में विटामिन "ए" व "सी" की मात्रा अधिक होती है। टमाटर में लाल रंग लाइकोपीन नामक पदार्थ से होता है जिसे दुनिया का प्रमुख एंटीऑक्सीडेंट माना गया है। टमाटर की खेती के अंतर्गत आने वाला क्षेत्रफल 0.80 मिलियन हैक्टेयर है लेकिन उत्पादकता काफी कम है। पिछले कुछ वर्षो में टमाटर की फसल की उत्पादकता घटी हैं इसके उत्पादन में कमी का एक प्रमुख कारण टमाटर के मुलायम होने के कारण कीट व रोगों का प्रकोप अधिक होना है। कीटों व रोगों के प्रकोप के कारण पैदावार में कमी आ जाती है। इसके साथ ही फसल की उत्पादकता व गुणवत्ता पर भी बुरा प्रभाव पड़ता हैं।

टमाटर की फसल के प्रमुख कीट

1. सफेद मक्खी (*बेमीसिया टेबेसाई*)

क्षति का स्वरूप

इस कीट के वयस्क तथा शिशु पीले रंग के तथा पंख पारदर्शी और मोम से ढके हुए होते है। ये आकार मे बहुत छोटे तथा मुलायम होते हैं। वयस्क कीट 1 से 2 मि.मी आकार के हल्के पीले रंग के होते है। सफेद मक्खी के वयस्कों के पंख दूधिया, सफेद मोम जैसी परत वाले होते हैं। वयस्क अक्सर पत्तियों के नीचे समूह में मिलते हैं और पत्ती के हिलने पर उड़ जाते हैं। मादा कीट पत्तियों के निचली सतह पर हल्के पीले रंग के अण्डें देती है। संक्रमित भाग पीला पड़ जाता है तथा पत्तियाँ अन्दर की ओर मुड़ कर अंततः मुरझा जाती हैं। इस कीट से टमाटर की फसल में पीला शीरा मोजेक विषाणु जनित रोग फैलता है। रस चूसने के साथ-साथ ये कीट मधुरस मल त्याग करते हैं जिससे फफूंदी के विकास को बढ़ावा मिलता है तथा प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में बाधा आने से पौधे की वृद्धि रूक जाती है।

नियंत्रण– इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एसएल का 150 मिली अथवा थिओमेथाक्सम 25 डब्ल्यू जी का 200 ग्राम अथवा स्पायरोमेसिफिन 22.9 एससी का 625 मिली अथवा डायमिथोएट 30 ईसी का 990 मिली प्रति हैक्टेयर की दर से 500 लीटर पानी के साथ छिड़काव करें।

2. तेला (*अम्रास्का बिगूटुला बिगूटुला*)

क्षति का स्वरूप

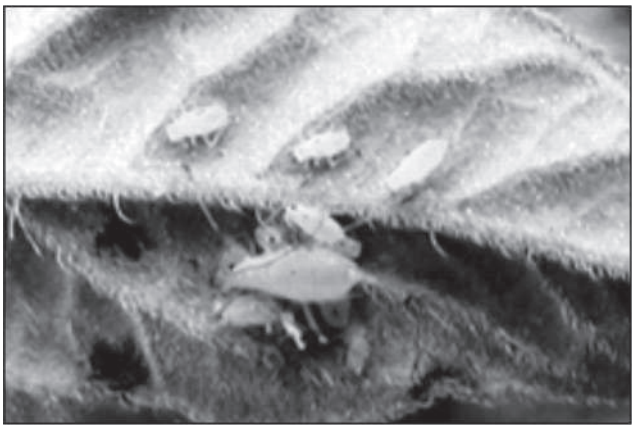

यह बहुभक्षी कीट है जो टमाटर की फसल में फूलों के लगने के समय लगने वाला मुख्य कीट है। ये कीट छोटे, मुलायम शरीर वाले, हल्के पीले तथा हरे रंग के होते हैं ये पत्तियों, डंठल और तने पर बड़ी संख्या में पाए जाते हैं। ये पंखो वाले और बिना पंख वाले होते हैं। वयस्क अवस्था मे इसका रंग काला होता है। ये कीट वयस्क अवस्था में पत्तियों पर मधुरस मल त्याग करते हैं। चेपा, कोमल प्ररोह एवं पत्तियों की निचली सतह से रस चूसते है जिससे पौधे के विकास की प्रक्रिया रुक जाती है तथा यह कीट फूलों को खरोच देता है तथा उससे निकले रस को चूसता है, फलस्वरूप फूल कमजोर एवं झड़ जाते है।

नियंत्रण– थियामेथॉक्सम 70 डब्लूएस 6 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से बीजोपचार करे। आवश्यकता पड़ने पर चेपा कीट के नियंत्रण हेतु डायमिथोएट 30 ईसी का 0.66–1.32 मिली प्रति लीटर अथवा साईएन्ट्रानीलीप्रोल 10.26 ओडी का 1.8 मिली प्रति लीटर की दर से छिड़काव करें।

3. प्रण सुरंगक

इस कीट का मैगट ज्यादा नुकसान पहुंचाता है इस कीट की वयस्क मादा पत्तियों में छेद कर के अंडे देती है, जिन से 2–3 दिनों बाद मैगट निकल कर पत्तियों में टेढ़ी मेढ़ी सुरंगें बनाते हैं। लार्वा पत्ती की ऊपरी और निचली सतह के बीच में सुरंग बनाते है तथा उत्तकों को खाते है तथा पत्तियों के हरे भागों को नष्ट कर देते हैं। युवा लार्वा पत्तियों में छोटी और पतली सुरंगे बनाते हैं। पुरानी पत्तियों में, सफेद लंबी गोलाकार सुरंगे मिलती है जिस कारण पत्तियो के भोजन बनाने की क्रिया प्रभावित होती हैं। नियंत्रण हेतु स्यानट्रानीलीप्रोल 10.26 ओडी का 1.8 मिली./लीटर की दर से छिडकाव करें।

4. फल छेदक कीट : (*हेलिकोवरपा आर्मीजेरा*)

क्षति का स्वरूप

इस कीट की हानिकारक अवस्था सूंड़ी होती है इस कीट की सूंडी के रंगों मे विभिन्नता होती है जो कि हरे से भूरे रंगो की पाई जाती है तथा 3 से 5 सेमी. लम्बी होती है पूरी तरह से विकसित सूंडी के शरीर पर सफेद और गहरे भूरे रंग की अनुदैर्ध्य धारियों के साथ ये हरे रंग की होती हैं। वानस्पतिक अवस्था में सूड़ी पत्ती एवं शाखाओं को खाती है। सूंड़ी फलों में छेद कर के उन के अंदर का गूदा खाती हैं, खाये हुए फल में गोल छेद मिलता है तथा फल खाते समय फल के बाहर उनके शरीर के पीछे का हिस्सा दिखाई देता हैं। कीड़ों के मलमूत्र के कारण कभी–कभी फलो में सड़न शुरू हो जाती है, इससे उत्पादन में कमी के साथ–साथ फलों की गुणवत्ता भी कम हो जाती हैं ।

नियंत्रण

- टमाटर की नर्सरी से 20 दिन पूर्व अलग से गेंदे की पौध तैयार करें।
- टमाटर की प्रत्येक 14 पंक्तियों के बाद 45 दिन पुराने गेंदे के पौधों की एक पंक्ति फसल ट्रैप के रूप में लगानी चाहिए।
- फल बेधक सक्रियता की निगरानी के लिए 5 फेरामोन ट्रैप प्रति हैक्टेयर की दर से लगाएं।
- फल बेधक का अधिक प्रकोप होने पर केवल आवश्यकता होने पर रासायनिक कीटनाशक जैसे क्लोरएंट्रानीलीप्रोल 18.5 एससी 150 मिली या नोवाल्युरोन 10 ईसी का 750 मिली या इन्डोक्साकार्ब 14.5 एससी 400 मिली या लैम्ब्डा–सिहलोथ्रिन 4.9 ईसी 300 मिली प्रति हैक्टेयर की दर से 500 लीटर पानी के साथ छिड़काव करें।

5. मूलग्रंथि सूत्रकृमि

भूमि में सूत्रकृमि की उपस्थिति के कारण टमाटर की जड़ों में गांठें बन जाती हैं जिस वजह से पौधों की बढ़वार रूक जाती है तथा उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

नियंत्रण–

- गर्मी में गहरी जुताई करनी चाहिए जिससे जमीन में छिपे कीटों की अन्य अवस्था नष्ट हो जाए है।
- खेत को खरपतवार से मुक्त रखें जिससे कीटों का प्रकोप कम होता है।
- नियंत्रण हेतु रोपाई से पूर्व 25 किलो कार्बोफ्यूरान 3 जी प्रति हैक्टर की दर से भूमि में मिलावें।

रोग प्रबंधन

1. आर्द्र गलन

पौधो के जमाव से पहले की अवस्था मे आद्र गलन रोग से प्रभावित बीज नरम, भूरे होकर विघटित हो जाते हैं। इस रोग के प्रकोप से पौधे का जमीन की सतह पर स्थित तने का भाग काला पड़ जाता है और नन्हें पौधे गिरकर मरने लगते हैं। यह रोग भूमि एवं बीज के माध्यम से फैलता है। यह रोग ज्यादातर नर्सरी में आता है।

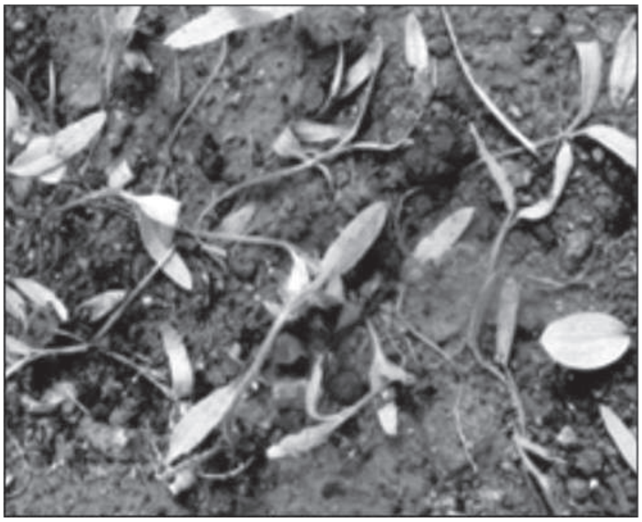

- नर्सरी की बुवाई से पहले मिट्टी को 0.45 मिमी मोटी पालीथीन शीट से 2–3 सप्ताह तक ढ़ककर मिट्टी का सूर्य तापीकरण करें, इस दौरान मिट्टी में पर्याप्त नमी बनी रहें।
- नर्सरी के आसपास की भूमि 4 से 6 इंच उठी हुई बनावें।
- नर्सरी के दौरान मृदा जनित बीज के रोगों के नियंत्रण हेतु बीज को ट्राइकोडर्मा के प्रभावी स्ट्रेन से 4 ग्राम प्रति किग्रा बीज से उपचार करें।
- नियंत्रण के लिए कैप्टान 75 डब्ल्यूपी 0.25 प्रतिशत अथवा कैप्टान 75 डब्ल्यूएस 0.3 प्रतिशत की दर से आवश्यकता पड़ने पर प्रयोग करें।

2. अगेती झुलसा

आमतौर पर यह बीमारी नये पौधों की तुलना में पुराने पौधों में अधिक प्रभावी होती हैं और निचली पत्तियां ऊपर की तुलना में अधिक संवेदनशील होती हैं । पत्तियों पर छोटे, काले, गोलाकार घाव धब्बे विकसित होते हैं। पत्तियों पर धब्बे तेजी से बढ़ते हैं, और पत्तियाँ पूरी तरह से धब्बों में बदल जाती हैं, जिसके परिणामस्वरूप पत्तियाँ मर जाती हैं। तने और किनारे की शाखाओं पर छोटे, काले, थोड़े धँसे हुए घाव बनते हैं जो गहरे भूरे रंग के उभरे हुए धब्बों मे बदल जाते हैं।

- अगेती झुलसा रोग के नियंत्रण हेतु केप्टान 50 डब्ल्यूपी 2.5 किग्रा अथवा केप्टान 75 डब्ल्यूपी 1.6 किग्रा प्रति हैक्टेयर की दर से 1000 लीटर पानी के साथ अथवा मेन्कोजेब 75 डब्ल्युजी 1 किग्रा की दर से प्रति हैक्टेयर 500 लीटर पानी के साथ सुरक्षात्मक छिड़काव करें।
- नियंत्रण हेतु एजोक्सीस्ट्रोबिन 23 एससी का 500 मिली प्रति हैक्टेयर या एजोक्सीस्ट्रोबिन 18.2 या डाइफेनोकोनाजोल 11.4 एससी 500 मिली प्रति हैक्टेयर या मेटालेक्सील 3.3 या क्लोरोथेलोनील 33.1 एससी 1000 मिली प्रति हैक्टेयर की दर से 500 लीटर पानी के साथ छिड़काव करें।

3. पछेती झुलसा

यह रोग पौधे की किसी भी अवस्था में लग सकता है। पौधे के किसी भी भाग पर भूरे बैंगनी या काले रंग के धब्बे दिखाई पड़ते हैं। वातावरण में लगातार अधिक नमी रहने पर इस रोग का प्रकोप बढ़ जाता है। फलों की डंठल भी ग्रसित होकर काले रंग की हो जाती हैं।

- पछेती झुलसा रोग के नियंत्रण हेतु केप्टान 50 डब्ल्यूपी 2.5 किग्रा प्रति हैक्टेयर की दर से या मेन्कोजेब 75 डब्ल्युपी 1.5–2 किग्रा प्रति हैक्टेयर की दर से 750 – 1000 लीटर पानी के साथ सुरक्षात्मक छिड़काव करें।

- पछेती झुलसा के नियंत्रण के लिए आवश्यकता होने पर एजोक्सीस्ट्रोबिन 23 एससी का 500 मिली प्रति हैक्टेयर या एजोक्सीस्ट्रोबिन 18.2 डाइफेनोकोनाजोल 11.4 एससी का 500 मिली प्रति हैक्टेयर कि दर से या मेटालेक्सील 3.3 क्लोरोथेलोनील 33.1 एससी का 1000 मिली प्रति हैक्टेयर की दर से 500 लीटर पानी के साथ छिड़काव करें।

4. पर्णकुंचन व मोजेक विषाणु रोग

यह विषाणु से होने वाला मुख्य रोग है। इस रोग से प्रभावित पौधे बौने रह जाते हैं व पत्तियां ऐंठ कर आकार में छोटी व झुर्रीयुक्त हो जाती हैं। मोजेक रोग के कारण पत्तियो पर गहरे व हल्का पीलापन लिये हुए धब्बे बन जाते हैं। पुराने पत्ते चमड़े के जैसे और भंगुर हो जाते हैं। इस रोग के कारण पौधो की वृद्धि रुक जाती है तथा संक्रमित पौधे कम या कोई फल नहीं देते हैं। इस रोगों को फैलाने में कीट सहायक होते हैं।

- नर्सरी को सफेद मक्खी जैसे रोगवाहकों से बचाने के लिए नर्सरी में नायलॉन नेट (40–50 गेज) का प्रयोग करें।
- सफेद मक्खी जो की विषाणु रोग वाहक है के नियंत्रण हेतु इमीडाक्लोप्रिड 17.8 एसएल का 150 मिली अथवा थिओमेथाक्सम 25 डब्ल्यू जी का 200 ग्राम अथवा स्पायरोमेसिफिन 22.9 एससी का 625 मिली अथवा डायमिथोएट 30 ईसी का 990 मिली प्रति हैक्टेयर की दर से 500 लीटर पानी के साथ छिड़काव करें।

5. म्लानि रोग

रोग से ग्रसित पौधे की निचली पत्तियां पीली हो जाती हैं। पीलापन अक्सर पौधे के एक तरफ शुरू होता है और ऊपर की ओर बढ़ता है। इसके बाद पत्तियों का रंग भूरा पड जाता है तथा पत्तिया सूखने लगती हैं। युवा पौधे संक्रमित होने पर गंभीर रूप से प्रभावित होते हैं।

- नर्सरी की बुवाई से पहले मिट्टी को 0.45 मिमी मोटी पालीथीन शीट से 2–3 सप्ताह तक ढककर मिट्टी का सूर्य तापीकरण करें। इस दौरान मिट्टी में पर्याप्त नमी बनी रहे।
- उकठा रोग से बचाव के लिए पहले से फ्यूजेरियम उकठा संक्रमित खेत मे दोबारा फसल नहीं लगाये।
- उकठा रोग से बचाव के लिए जल भराव और खराब सूखे खेतों से बचें।

निष्कर्ष

पिछले कुछ वर्षो में टमाटर की फसल की उत्पादकता घटी है, जिसमें कीट व रोग की अहम भूमिका रही है। कीटों तथा रोगों के प्रकोप के कारण पैदावार में कमी आ जाती है। इन शत्रु कीटों व रोग का समुचित रुप से प्रबंधन करके इस हानि को कम किया जा सकता है।

सरलता, बोधगम्यता और शैली की दृष्टि से विश्व की भाषाओं में हिन्दी महानतम स्थान रखती है।

– अमरनाथ झा

मक्का उत्पादन की वैज्ञानिक तकनीक

दीप सिंह सासोड़े, एकता जोशी, वर्षा गुप्ता, नीलम सिंह एवं नम्रता चौहान
राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

1. जलवायु

मक्का उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों का एक प्रमुख पौधा है इसके लिये सामान्यतः गर्म एवं आर्द्र जलवायु की आवश्यकता होती है। मक्का के पौधे की अच्छी वानस्पतिक वृद्धि के लिये 9–10 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान से नीचे नहीं होना चाहिए। परन्तु पौधे की सामान्य वृद्धि के लिये 30–35 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान उपयुक्त होता है। बीजों के अंकुरण एवं प्रारम्भिक विकास के लिये 15–17 डिग्री सेंटीग्रेट तापमान उपयुक्त होता है।

2. भूमि

मक्का की खेती के लिये अच्छी उपजाऊ भूमि की आवश्कयता होती है। इसके लिये गहरी दोमट से बलुई दोमट भूमि सर्वाधिक उपयुक्त होती है। हल्की भूमि में मक्का की खेती करने पर अधिक खाद एवं उर्वरकों की आवश्यकता होती है। जिन मृदाओं का पी.एच. मान 6.0 से 7.5 के मध्य हो मक्का की खेती के लिये उपयुक्त होती है।

3. खेत की तैयारी

मक्का की बुआई के पूर्व भूमि की अच्छी तरह से तैयारी करनी चाहिए। भूमि की ग्रीष्मकालीन मौसम में एक गहरी जुताई करने से भूमि में पनपने वाले खरपतवार, कीटों के लार्वा तथा अण्डे एवं बीमारियों के परजीवी आदि अधिक धूप एवं गर्मी से नष्ट हो जाते हैं। इसके पश्चात् खेत में पलेवा करके हैरो अथवा देशी हल से 2–3 जुताई करके मिट्टी को भुरभुरा किया जाता है। जुताई अथवा हैरो की संख्या मृदा की किस्म, उसमें उगाई गई पूर्व फसल, नमी, खरपतवार के प्रकार एवं उनकी संख्या पर निर्भर करती है। खरीफ ऋतु में खेत की नमी का संरक्षण करने के लिये प्रत्येक जुताई के बाद पाटा अवश्य लगा देना चाहिए। आखिरी जुताई के बाद पाटा लगाकर खेत समतल कर देना चाहिए ताकि खेत में पानी निचली जगहों में न भरे।

4. फसल चक्र

मक्का आधारित एक वर्षीय प्रमुख फसल चक्र निम्न हैं।

1.	मक्का	–	गेहूँ / जौ / जई
2.	मक्का	–	मटर / चना
3.	मक्का	–	आलू / सरसों
4.	मक्का	–	गेहूँ – लोबिया – मूँग
5.	मक्का	–	तोरिया – आलू – मक्का (चारा)

5. अन्तः फसल पद्धति

खरीफ मक्का की दो पंक्तियों के बीच में कोई भी दलहनी /तिलहनी फसल जैसे– मूँग, उड़द, लोबिया, सोयाबीन, मूँगफली, तिल आदि को उगाया जा सकता है। इस प्रकार मक्का की एक फसल की अपेक्षा अन्तः फसल से अधिक आमदनी प्राप्त होती है। साथ ही साथ दलहनी फसल उगाने से मक्का में उर्वरकों के प्रयोग में कमी भी की जा सकती है।

6. प्रजातियाँ

खरीफ के मौसम में मक्के की बोवाई जून के अंतिम सप्ताह तक अवश्य कर देनी चाहिए। विभिन्न क्षेत्रों के लिए संस्तुत प्रजातियाँ, बोवाई का समय, क्षेत्र अनुकूलता एवं उपज क्षमता के अनुसार नीचे दर्शायी गई है।

संकुल शीघ्र बोई जाने वाली प्रजातियाँः (80 से 90 दिन) जे.एम. 8, जे.एम. 12, कोहिनूर, धवल ।

मध्यम समय में बोई जाने वाली प्रजातियाः (90 से 100 दिन) जे.एम. 216, डेकन 107, पूसा संकुल 2, विजय, नवजोत, सरताज, जे.एम. 13 ।

देरी से बोई जाने वाली प्रजातियॉ : (100 से 130 दिन) गंगा 3, डेकन 103, डेकन 105, गंगा 11, गंगा सफेद 2, प्रभात।

संकर प्रजातियॉ (हाईब्रिड) : एच.क्यू.पी.एम.1, जे.के.एस. एच. 175, डेकन 103, डेकन 105, त्रिशुलता ।

बेवीकॉर्न प्रजातियाँ : व्ही.एल. 42, प्रभात, त्रिशुलता ।

स्वीट कॉन प्रजातियॉ : माधुरी, अम्वर स्वीट कॉर्न 1, ए.एस.सी. 2 ।

7. बीज बोवाई

बीज दर– खरीफ मक्का को बोने के लिये देशी छोटे दाने वाली प्रजाति के लिए 18–20 कि.ग्रा. तथा संकर एवं संकुल प्रजातियों के लिए 20 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टेयर पर्याप्त रहता है। मक्का की बुआई हल के पीछे कुड़ों में 5 सेमी गहराई पर बोने से बीजों का जमाव अच्छा होता है।

8. पादप घनत्व

खरीफ मक्का की अधिक उपज प्राप्त करने के लिये 65–70 हजार पौधे प्रति हैक्टेयर रखने चाहिए। उचिम मात्रा में पादप घनत्व के लिये पंक्ति से पंक्ति तथा पौधे से पौधे का अंतर 60–75 X 20–25 सेमी रखना चाहिए।

संकर : पंक्ति से पंक्ति की दूरी 60 सेमी, पौधे से पौधे की दूरी 25 सेमी (80000–85000 पौधे प्रति हैक्टेयर)।

संकुल : पंक्ति से पंक्ति की दूरी 60 सेमी, पौधे की दूरी 25 सेमी (85000–90000 पौधे प्रति हैक्टेयर)।

9. बुवाई का समय

खरीफ में ली जाने वाली मक्का की फसल में बुवाई का विशेष ध्यान रखना चाहिए। खरीफ मक्का की बुवाई जून के मध्य से अंतिम सप्ताह तक अवश्य कर देनी चाहिए। सिंचित क्षेत्रों में मक्का की बुवाई मानसून शूरू होने के 10–15 दिन पूर्व कर देनी चाहिए। असिंचित क्षेत्रों में मानसून की वर्षा शुरू हो जाने के उपरांत जब मृदा में पर्याप्त मात्रा में नमी हो मक्का की बुवाई कर देनी चाहिए।

10. पोषक तत्व प्रबंधन

यदि मिट्टी में जीवांश पदार्थ की कमी हो तो बुवाई से लगभग 15–20 दिन पहले 6–8 टन/हैक्टेयर की दर से गोबर की खाद खेत में डालकर मिट्टी में अच्छी प्रकार से मिलाना चाहिए। सामान्यतः पूर्णकालिक किस्मों के लिए 120–150 कि.ग्रा./हैक्टेयर नाइट्रोजन तथा मध्यम व जल्दी पकने वाली किस्मों के लिए क्रमशः 80–100 व 60–80 कि.ग्रा./हैक्टेयर नाइट्रोजन पर्याप्त होती है। जबकि 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस व 40 कि.ग्रा./हैक्टेयर पौटेशियम सभी वर्गों की किस्मों के लिए आवश्यक होती है। यदि मक्का की बुवाई बलुई मिट्टी में की जाती है या खेत में जिंक की कमी हो तो 25 कि.ग्रा./हैक्टेयर की दर से जिंक सल्फेट को खेत में बुवाई से पूर्व डालना चाहिए। नाइट्रोजन की एक–चौथाई तथा फॉस्फोरस, पौटेशियम व जिंक सल्फेट की पूरी–पूरी मात्रा बुवाई से पहले अंतिम जुताई के समय मिट्टी में मिला दें। नाइट्रोजन की शेष बची मात्रा को दो बराबर भागों में बांटकर घुटने तक ऊंचाई वाली व झंडे निकलने से पहली अवस्था पर खड़ी फसल की पंक्तियों में बिखेर दें। यदि मिट्टी बलुई हो तो नाइट्रोजन को चार बराबर भागों में बांट कर बुवाई, घुटने की ऊंचाई वाली अवस्था, झंडे निकलने से पहले तथा झंडे निकलने वाली अवस्था पर डालना चाहिए।

मक्का के किस्मों के पकने के आधार पर उर्वरक प्रबंध

खरीफ			
खाद की मात्रा	**नत्रजन**	**फास्फोरस**	**पोटाश**
संकर	120	60	40
संकुल	100	50	40
देशी	60	30	30

11. सिंचाई

खरीफ ऋतु में जिन क्षेत्रों में वर्षा का समान वितरण तथा पर्याप्त मात्रा में नमी होने से मक्का की फसल असिंचित दशाओं में उगाई जा सकती है। फसल की बढ़वार एवं भुट्टे बनते समय वर्षा न होने की दशा में 1–2 सिंचाई से फसल की उपज में वृद्धि हो जाती है। मक्का का पौधा जल भराव के साथ–साथ कम नमी होने के प्रति बहुत ही सहिष्णु होता है। मक्का का फूल आने एवं दाना भरते समय पानी की कमी नहीं होनी चाहिए। अतः ऐसी स्थिति में वर्षा न होने पर सिंचाई अवश्य कर देनी चाहिए।

12. खरपतवारों की रोकथाम कैसे करें :

- शुद्ध एवं स्वस्थ बीज जो खरपतवार के बीजों से ग्रसित न हो, उन्हे बोनी हेतु प्रयोग करें।
- अच्छी सड़ी हुई गोबर या कम्पोस्ट खाद का ही उपयोग करना चाहिए।
- फूल आने से पहले ही खरपतवारों को जड़ से निकाल देना चाहिए।
- खेत, मेढ़ों व सिंचाई नालियों को साफ रखें।
- खेत में उपयोग से पूर्व कृषि यंत्रों को ठीक से साफ कर काम में लेवें।
- पौधे के साथ खरपतवारों के पौधे को नहीं रहने दें।
- कृषि यंत्रों की सहायता से खरपतवार प्रबंधन करें हस्त चलित यन्त्र, पशुचलित यंत्र, शक्ति चलित आदि यंत्रों को उपयोग में लें।
- ग्रीष्म कालीन गहरी जुताई 2–3 साल में एक बार अवश्य करें।
- पलवार (मल्चिंग) कतारों के बीच में सूखी घास, पुआल या भूसा आदि बिछाकर भी कुछ सीमा तक खरपतवारों का नियंत्रण संभव है।
- लगातार एक खेत में एक ही प्रकार की फसल लेने से खरपतवारों की समस्या बढ़ जाती है। अतः समुचित फसल–चक्र अपनाया जाना चाहिए।

खरपतवार प्रबंधन

कतार में बोई गई फसल में हेन्ड हो या व्हील हो या निंदाई गुडाई आदि यांत्रिक विधियों से खरपतवारों की रोकथाम पर नियंत्रण किया जा सकता है।

बुवाई के तुरन्त बाद किन्तु अंकुरण के पूर्व एट्राजिन 0.5–1.0 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व/हैक्टेयर या पेन्डीमेथालिन

1.0–1.5 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व/है. या एलाक्लोर 1.0 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व/हैक्टेयर या पेन्डीमेथालीन + एट्राजिन 500–750 ग्रा/हैक्टेयर, टोप्रामेजान 25 – 33 ग्रा/हैक्टेयर या टेम्बोट्रीआन + एट्राजिन 120 + 500 ग्रा/हैक्टेयर बुवाई के 15–20 दिन बाद की दर से 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

खड़ी फसल में 2,4–डी 0.5 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व/हैक्टेयर का छिड़काव बुवाई के 25–30 दिन बाद करने से चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों का नियंत्रण किया जा सकता है।

नोट : यदि मक्का के बाद आलू की खेती करनी हो तो एट्राजिन का प्रयोग न करें।

13. मक्के में लगने वाले प्रमुख कीट

कलमा कीट– इस कीट की गिडारें पत्तियों को बहुत तेजी से खाती है और फसल को काफी हानि पहुंचती है, इसके शरीर पर रोएँ होते है।

पत्ती लपेटक कीट– इस कीट की सूंडियाँ पत्ती के दोनों किनारों को रेशम जैसे सूत से लपेटकर हरे भाग को खा लेती है जिससे पत्तियाँ सिरे से सूखने लगती है।

तना छेदक– इस कीट की सुंडियां तनों में छेद करके अन्दर ही खाती रहती है, जिससे मरात्गोब बनता है और हवा चलने पर तना बीच से टूट जाता है।

टिड्डी– इस कीट के शिशु तथा प्रौढ़ दोनों ही पत्तियों को काफी हानि पहुंचाते हैं।

कीट नियंत्रण

5 लीटर देशी गाय का मठा लेकर उसमे 15 चने के बराबर हींग पीसकर घोल दें, इस घोल को बीजों पर डालकर बीज भिगो दें तथा 2 घंटे तक रखा रहने दें उसके बाद बोवाई करें। यह 1 एकड़ घोल के बीज की बोवनी के लिए पर्याप्त है। 5 लीटर देशी गाय के गोमूत्र में बीज भिगोकर उनकी बोवाई करें उगरा और दीमक से पौधा सुरक्षित रहेगा। उगरा एवं दीमक से बचाव हेतु बोवाई करने से पहले बीजों को केरोसिन से उपचारित करें। 250 मिली नीम पानी को 25 मिली माइक्रो झाइम के साथ प्रति पम्प अच्छी तरह मिलाकर – तर बतर कर छिडकाव करें। 500 ग्राम लहसुन, 500 ग्राम तीखी चटपटी हरी मिर्च लेकर बारीक पीसकर 150–200 लीटर पानी में घोलकर फसलों पर छिडकाव करें इल्ली जैसे– रस चूसक कीड़े नियंत्रित होंगे।

14. मक्के की फसल में लगने वाले प्रमुख रोग

पत्तियों का झुलसा रोग– इस रोग में पत्तियों पर बड़े लम्बे अथवा कुछ अंडाकार भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते है, रोग के उग्र होने पर पत्तियां झुलसकर गिर जाती है।

तुलासिता रोग– इस रोग में पत्तियों पर पीली धारियां पड़ जाती है, पत्तियों के नीचे की सतह पर सफेद रुई के समान फफूंदी दिखाई देती है। ये धब्बे बाद में गहरे अथवा लाल भूरे पड़ जाते है। रोगी पौधे में भुट्टे कम पड़ते है या बनते ही नहीं है।

तना सड़न– यह रोग अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में लगता है, इसमें तने की पोरियों पर जलीय धब्बे दिखाई देते हैं जो शीघ्र ही सड़ने लगते हैं और उनसे दुर्गन्ध आती है, पत्तियां पीली पड़कर सूख जाती है।

रोग नियंत्रण

रोग आने पर उपचार करने से अच्छा है कि रोग आने ही न दें, इसलिए किसान को फसल में 15 दिन बाद नीम पानी माइक्रो झाइम मिलाकर छिडकाव करते रहना चाहिए। अगर रोग आ ही गया है तो उस फसल को तत्काल उखाड़कर जला देना चाहिए और तत्काल हर हफ्ते नीम पानी और झाइम का छिड़काव करते रहना चाहिए। जब तक फसल रोगमुक्त न हो जाए। रोगमुक्त, विषमुक्त और तंदुरुस्त बीज की बोवाई करना चाहिए, अगर किसान जैविक खेती कर रहा है तो उपरोक्त बीमारियों का खतरा नहीं हेता है। अतः किसान अपने खेतों से तंदुरुस्त फसल की कटाई तुड़ाई कर बीज खुद तैयार करें।

मक्के की कटाई की दो विधियाँ प्रचलित हैः

1. खड़ी फसल में पके हुए भुट्टों को तोडना
2. पौधों को भुट्टों सहित काटना

चारे के लिए मक्के की फसल को उस समय काटना चाहिए जब फसल की बालियों में दाने दुग्धावस्था में हों। यदि चारे का साइलेज बनाना हो तो फसल को उस समय काटते है जब दानों में गाढ़ा दूध या गुंथे हुए आंटे जैसा हो रहा हो। मक्का के भुट्टे से दाना निकालने के लिए आज कल यंत्र चालित शैलर, हस्त चालित शैलर तथा पैदल चालित शैलर का प्रयोग किया जा रहा है।

15. उपज

मक्का की देशी प्रजातियों की औसत उपज 10–15 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है, जबकि संकर तथा संकुल प्रजातियों की औसत उपज 30–40 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है। भुट्टों के लिये उगाई जाने वाली मक्का में औसतन 50–75 हजार भुट्टे प्रति हैक्टेयर तक प्राप्त होते हैं। मक्का की दाने वाली फसल से लगभग 50–90 क्विं. प्रति हैक्टेयर तक कड़वी प्राप्त हो जाती है। चारे के लिये उगाई गई मक्का को भुट्टे

निकलते समय काटने पर 225–250 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक हरा चारा प्राप्त हो जाता है।

16. अधिक उत्पादन लेने के लिये प्रमुख बातें–

- सही समय पर बोनी करें।
- सही किस्म का चुनाव करें।
- खेत की जुताई अच्छी तरह करें।
- उपचारित बीज की बोनी करें।
- खाद व उर्वरक का संतुलित मात्रा में तथा निर्धारित समय पर उपयोग करें।
- खेत में पानी का निकास अच्छा रखें।
- झंडे निकलने एवं दाना भरने की अवस्था में यदि आवश्यकता हो तो सिंचाई करें।
- पौध संरक्षण उपाय समय पर अपनायें।

हिन्दी दिवस मनायें

आओ हिन्दी दिवस मनाये
हिन्दी के गुण गायें मिलकर
इसको सब महान बनाये

भाषाई भेद छोड़ परस्पर,
जन-जन के दिल जोड़ परस्पर,
सोच, संकोच छोड़ परस्पर,
आओ इसको महान बनाये,
आओ..........................

धर्मनिर्पेक्ष जब राष्ट्र हमारा,
विश्व विख्यात संविधान हमारा,
हिन्दी भाषा की जिसमें धारा,
राजभाषा को फैलाना कर्त्तव्य हमारा,
आओ इसे विश्व व्यापी बनाये,
आओ हिन्दी....................

भाषा मांगे आज बलिदान,
छोड़े झूठी अंग्रेंजी की शान,
करो प्रयोग निज भाषा शान,
इससे बढ़ेगा हिन्दी का मान,
आओ इसकी पहचान बढ़ायें,
आओ हिन्दी......................

इसमें रचे हैं वेद पुरान,
जो भारत की मूल पहचान,
इसमें पुरातत्व संस्कृति की शान,
इसका व्याकरण सर्व महान,
आओ इसका मान बढ़ायें,
आओ हिन्दी......................

हिन्दी है वैज्ञानिक भाषा,
इसका उच्चारण सब को भाता,
इसे विश्व भाषा बनने की आशा,
इसमें छन्द, रस, अंलकार परिभाषा,
आओ इसको हम अपनाएं,
आओ हिन्दी.........................

रविन्द्र नाथ की गीतांजली ऐ,
जयशंकर की कमायनी ऐ,
तुलसीदास की रामायनी ऐ,
गुरूनानक की गुरू वाणी ऐ,
आओ इसे सरल बनाये,
आओ हिन्दी.........................

हिन्दी का किसी भाषा बैर नहीं,
सब अपने हैं कोई गैर नहीं,
व्यापार, मिल्मों से बढ़ रहीं है,
पीछे इसके पैर नहीं,
दूसरे नंबर में अभी है,
नंबर वन में दैर नहीं,

आओ हिन्दी दिवस मनाये
हिन्दी के गुण गायें मिलकर
इसको सब महान बनाये

जी.आर. डोंगरे
भा.कृ.अनु.प.-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय

पलवार का कृषि में उपयोग एवं लाभ

एकता खत्री, वी. के. चौधरी, एस. के. पारे, संतोष कुमार एवं इति राठी
भा.कृ.अनु.प.–खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

कृषि में कई वर्षो से विभिन्न नई विकसित तकनीकों, कृषि क्रियाओं एवं संसाधनों का उपयोग किया जा रहा है। देश के कई क्षेत्रों में विषम जलवायु, जल स्त्रोतों की कमी तथा विभिन्न प्राकृतिक आपदाओं जैसे– पाला, ओला, सूखा आदि के बावजूद खेती का महत्व बढ़ रहा है। किसान पिछले कई सालों से मृदा में नमी संरक्षण के लिए विभिन्न उपायों जैसे– सूखी पत्तियां, नारियल का बुरादा, सूखी राख, फसल अवशेष, सूखी घास, गन्ने की सूखी पत्तियां, कागज आदि को अपनाकर मृदा में नमी संरक्षण करता रहा है।

खरपतवार की वृद्धि को रोकने एवं मृदा तापमान को संतुलित बनाये रखने में यह विभिन्न तरह के पलवार (मल्च) मृदा में अनुकूल जलवायु का निर्माण करते है। इस प्रकार पलवार (मल्चिंग) संयुक्त रूप से पौधों के आस–पास के सतह को ढकने की प्रक्रिया है जो पौधे व उसके जड़ को तापमान के उतार चढ़ाव व खरपतवार से बचाने में प्रभावकारी होता है।

पलवार के प्रकार

पलवार मुख्यतः कार्बनिक या अकार्बनिक हो सकती है। कार्बनिक पलवार पौधों से प्राप्त होते है (जैसे घास की कतरन और कम्पोस्ट)। वे अपेक्षाकृत जल्दी या कभी–कभी एक मौसम में, कार्बनिक पदार्थों और पोषक तत्वों के रूप में विघटित होकर मृदा की उर्वरता एवं उत्पादकता बढ़ाते है। जबकि अकार्बनिक पलवार का उपयोग व्यापक रूप से सब्जी उत्पादन में किया जाता है, उदाहरण के लिए काला प्लास्टिक। जिसका उपयोग कभी–कभी मुख्य फसलों में प्रयोग किया जाता है।

प्लास्टिक पलवार

वर्तमान समय में कार्बनिक पलवार की बड़ी मात्रा में आसानी से उपलब्धता नहीं होने तथा ज्यादा लागत की वजह से, प्लास्टिक पलवार का उपयोग एक अच्छा विकल्प है। यह आसानी से उपलब्ध है एवं एक जगह से दूसरी जगह ले जाने व बिछाने में भी आसान होती है। प्लास्टिक फिल्म का उपयोग जब पलवार के रूप में किया जाता है, तो उसे प्लास्टिक पलवार कहते है। इन्हीं सभी गुणों के कारण आज प्लास्टिक फिल्म पलवार का अधिकतर उपयोग हो रहा है। यह विभिन्न रंगो जैसे– काले, पारदर्शी, पीला/काला, सफेद/काला, लाल/लाल पलवार के रूप में उपलब्ध होती है। सामान्यतः काली या सफेद काले रंग की प्लास्टिक पलवार उपयोग में ली जाती है।

कम्पोस्ट

कम्पोस्ट खाद को भी मल्च के रूप में उपयोग किया जा सकता है। मिट्टी के ऊपर एक मोटी परत (3–8 सेमी.) खरपतवारों को दबाती, नमी का संरक्षण करती, पौधों की वृद्धि में सहायक होकर उन्हें बीमारी से बचाने में मदद करती है। रोपाई के बाद कम्पोस्ट को मल्च के रूप में अवश्य प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि कुछ बीज (जैसे बीन्स एवं लेट्यूस) ताजे पलवार में अंकुरित होते हैं।

घास की कतरने

लॉन की घास काटने पर घास की कतरन प्राप्त होती है वह घास की कतरन एक पसंदीदा और सस्ती गीली घास है। शुरूआती बसंत में फसल के उभरते अंकुरों पर कतरनों की एक पतली परत फैलाएं, बाद में कतरनों की एक मोटी परत बिछावें (2.5–5 सेमी.)। मोटी परत के लिए सूखी कतरनों का उपयोग करना बेहतर है, क्योंकि गीली घास एक गर्म बदबूदार, अवायवीय चटाई में परिवर्तित हो सकती है। लॉन में खरपतवारों के बीज बोने से पहले घास काटना सुनिश्चित करें और उन कतरनों से बचें जिन पर व्याधीनाशकों का प्रयोग किया गया है।

पत्ते

दांतेदार पत्ते एक अच्छा पलवार हो सकता है और विशेष रूप से गाजर और चुकन्दर जैसी देर से होने वाली जड़ फसलों पर प्रभावी हैं। घास काटने की मशीन की सहायता से ऐसी पत्तियों को काटकर बैग में कटी हुई पत्तियों को इकट्ठा करके इसकी एक परत 10–15 सेमी (4–6 इंच) मोटी बिछाई जा सकती है।

सूखे हुए फसल/घासपात अवशेष

हल्के रंग के पुआल और घास सूर्य के प्रकाश को परिवतर्तित कर मिट्टी को ठंडा रखते है। घास पात कभी–कभी अवांछित खरपतवार बीज लाती है, लेकिन एक अतिरिक्त मोटी परत खरपतवार संक्रमण को बढ़ने से रोकने में मदद करती है। अवशेष में कार्बन बहुत अधिक होता है और यह अवशेष सभी उच्च कार्बन सामग्री के साथ मृदा में फैलने के ठीक बाद मृदा से कुछ नाइट्रोजन अवशोषित कर लेता है। अतः मृदा नाइट्रोजन की क्षतिपूर्ति करने के लिए फसलों से शुरूआत में अतिरिक्त नाइट्रोजन का उपयोग करता है या अधिक नत्रजन युक्त फसल अवशेषों का उपयोग करता है।

कटी फसल अवशेषों की 10–15 सेमी. की परत या भूसी की 5–7.5 सेमी. की परत बनाने पर उचित परिणाम प्राप्त होता है।

पलवार के लाभ

1. पलवार मृदा की सतह से नमी का वाष्पोत्सर्जन द्वारा होने वाली हानि को कम करता है।
2. प्लास्टिक पलवार खरपतवार की वृद्धि को नियंत्रित करता है।
3. प्लास्टिक पलवार वर्षा से होने वाले क्षरण, कटाव आदि को कम करता है।
4. पलवार मृदा व फलों एवं सब्जियों के बीच पतली परत का निर्माण करती है, जिससे फल एवं सब्जियां खराब होने से बच जाती है।
5. पलवार मृदा के अनुकूल तापमान को संतुलित रखती है, जिससे नये बीज का अंकुरण शीघ्र व पौधा जल्दी स्थापित होता है। साथ ही जड़ो का बेहतर विकास होता है।
6. मिट्टी और पानी का क्षरण कम करता है। शुष्क क्षेत्रों में कृषि के लिए मृदा जल संरक्षण और कटाव को नियंत्रित करता है। यह शुष्क भूमि वाले क्षेत्रों में फसल उत्पादन में सुधार करता है।
7. मृदा अपरदन पर नियंत्रण के माध्यम से मृदा जल स्तर में सुधार एवं मिट्टी पर वर्षा के दुष्प्रभाव को कम करता है।
8. वाष्पीकरण को कम करके मिट्टी की लवणता को कम करके, बाद में लवणों की कमी को कम किया जा सकता है। जिससे वाष्पीकरण दमन द्वारा, यह लवण युक्त पानी के उदय को रोका जा सकता है।
9. कार्बनिक पदार्थो के अलावा, मिट्टी के सूक्ष्म जीवों की संख्या और पौधों के जड़ों के फैलाव के माध्यम से मिट्टी के जैविक तंत्र को प्रभावित करता है।
10. पलवार उपयोग से उर्वरक की बचत होती है और मृदा में लीचिंग के माध्यम से होने वाले पोषक तत्वों के नुकसान को कम किया जा सकता है।
11. पलवार रात के समय भी एक गर्म तापमान बनाए रखता है। जिससे बीज जल्दी अंकुरित होते हैं और युवा पौधों के लिए तेजी से एक मजबूत जड़ विकास प्रणाली स्थापित होती है। यह बीज के अंकुरण में सुधार करता है।
12. सिंथेटिक पलवार मिट्टी की सौर प्रक्रिया में एक प्रमुख भूमिका निभाते है।
13. अपारदर्शी पलवार मृदा में सूर्य के प्रकाश के प्रवेश को रोकता है जिससे खरपतवारों के बीजों का अंकुरण कम होता है।

प्लास्टिक पलवार फिल्म का चयन

प्लास्टिक पलवार फिल्म का चयन खेती की जरूरत के अनुसार जैसे– नमी संरक्षण नियंत्रण, मृदा तापमान को बढ़ाना, रोग नियंत्रण इत्यादि के लिए एवं फसल के प्रकार व उसकी अवधि के अनुसार किया जाता है। प्लास्टिक फिल्म का रंग काला, पारदर्शी, दूधिया, प्रतिबिम्बित, नीला एवं लाल आदि हो सकता है। खेती की जरूरत के अनुसार प्लास्टिक पलवार फिल्म का चयन करना चाहिए।

विवरण	पलवार के प्रकार
बरसात	छिद्रित फिल्म
फलवाटिका बगीचा	मोटा मल्च
मृदा सूर्यीकरण	पतला एवं पारदर्शी फिल्म
फसलों में खरपतवार नियंत्रण	काली फिल्म
गर्मी की फसल	काली फिल्म
कीट अवरोधक	सिल्वर फिल्म
शीघ्र अंकुरण	पतली फिल्म

प्लास्टिक पलवार का प्रयोग करके फसलों की उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है। खेत में लगे पौधों की जमीन को चारों तरफ से प्लास्टिक फिल्म के द्वारा सही तरीके से ढक दिया जाता है। यह फिल्म कई प्रकार और कई रंग में आती है।

काली फिल्म– काली फिल्म भूमि में नमी संरक्षण, खरपतवार से बचाने तथा भूमि के तापक्रम को नियंत्रित करने में सहायक होती है। बागवानी में अधिकतर काले रंग की प्लास्टिक पलवार प्रयोग में लायी जाती है।

दूधिया या सिल्वर युक्त प्रतिबिम्बित फिल्म– यह फिल्म भूमि में नमी संरक्षण, खरपतवार नियंत्रण के साथ–साथ भूमि का तापमान कम करती है।

पारदर्शी फिल्म– मृदा सूर्यीकरण के साथ साथ ठंडे मौसम में खेती करने के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है।

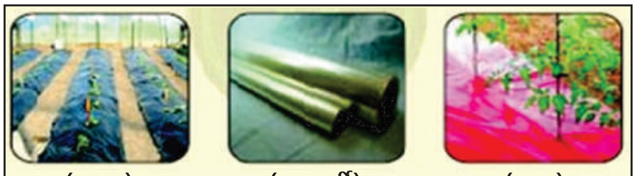

(काला) (पारदर्शी) (लाल)

(पीला) (प्रतिबिंबित) (नीला)

फिल्म की चौड़ाई– प्लास्टिक पलवार के प्रयोग में आने वाली फिल्म का चुनाव करते समय उसकी चौड़ाई पर विशेष ध्यान रखना चाहिए जिससे यह कृषि कार्यो में भरपूर सहायक हो सके। सामान्यतः 80–100 सेमी. तक की चौड़ाई वाली फिल्म ही प्रयोग में लायी जाती है।

फिल्म की मोटाई– प्लास्टिक पलवार में फिल्म की मोटाई फसल के प्रकार व फसल की आयु के अनुसार होनी चाहिए।

सब्जियों की फसल में पलवार का प्रयोग– जिस खेत में सब्जी वाली फसल लगानी है उसे पहले अच्छे से जुताई करके फिर उसमें गोबर की खाद और मिट्टी परीक्षण करवाकर उचित मात्रा में खाद देना चाहिए। फिर खेत में उठी हुई मेड बना लें। फिर उनके ऊपर ड्रिप सिंचाई की पाइप लाइन को बिछा लें। फिर 25 से 30 माइक्रोन को प्लास्टिक मल्च फिल्म जो कि सब्जियों के लिए बेहतर रहती है उसे उचित तरीके से बिछा दे फिर फिल्म के दोनो किनारों को मिट्टी की परत से दबा दिया जाता है।

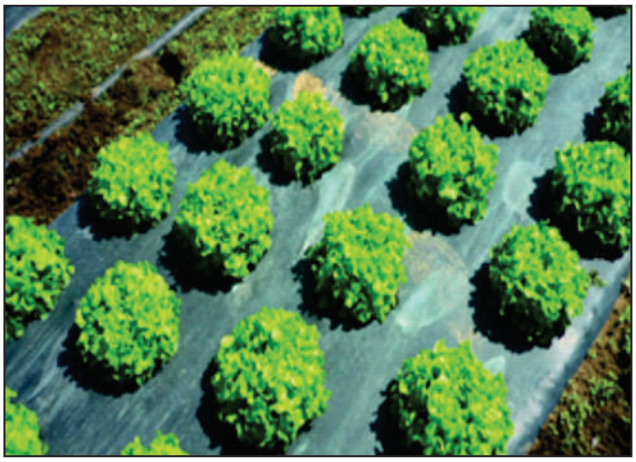

सब्जियों की फसल में पलवार का प्रयोग

इसे ट्रैक्टर चालित यंत्र से भी दबा सकते है। फिर उस फिल्म पर गोलाई में पाइप से पौधों से पौधों की दूरी तय कर के छिद्र कर ले। किये हुए छेदों में बीज या नर्सरी में तैयार पौधों का रोपण कर लें।

फल वाली फसल में पलवार का प्रयोग

फलदार पौधों के लिए इसका उपयोग जहां तक उस पौधे की छांव रहती है। वहां तक करना उचित रहता है। इसके लिए फिल्म मल्च की लंबाई और चौड़ाई को बराबर करके कटिंग करें। उसके बाद पौधों के नीचे उग रही घास और खरपतवार को अच्छी तरह से उखाड़ के सफाई कर ले उसके बाद सिंचाई की नली को सही से सेट करने के बाद 100 माइक्रोन की प्लास्टिक की फिल्म मल्च जो कि फल वाले पौधों के लिए उपयुक्त रहती है। उसे हाथों से पौधे के तने के आसपास अच्छे से लगानी है। फिर उसके चारों कोनों को 6 से 8 इंच तक मिट्टी की परत से ढँकते हैं।

फूल की फसल में पलवार का प्रयोग

फलों एवं सब्जियों के लिए उपयुक्त पलवार एवं उनका प्रभाव

फसल	पलवार की मोटाई (माइक्रोन)	उपज में वृद्धि
फल		
अमरूद	100	25–30
स्ट्राबेरी	25	40–50
अनार	100	25–30
केला	50	35–40
अनन्नास	50	30
आँवला	100	20–25
नीबू	100	20
सब्जियाँ		
मिर्च, भिण्डी	25	50–60
आलू, बैंगन	25	30–40
शिमला–मिर्च, टमाटर, फूलगोभी	25	40–50

सिंचाई व्यवस्था

पलवार लगाई गई फसलों में ड्रिप (बूंद–बूंद) सिंचाई विधि उपयुक्त होती है। इस विधि में लेटरल को पलवार के नीचे रखा जाता है जिससे सिंचाई एवं उर्वरकीकरण में आसानी रहती है तथा भूमि में नमी का संरक्षण रहता है। अंतःशस्य क्रियाओं की स्थिति में लेटरल एवं ड्रिपर को पलवार के ऊपर रखते हुए पतली पाईप के माध्यम से या पलवार में छिद्र करके पानी का प्रवाह सुनिश्चित किया जाता है।

प्लास्टिक पलवार को बिछाना

पलवार को बीजाई एवं रोपाई के पूर्व ही लगाया जाता है। खेत में मेड बनाने के साथ ही पलवार को बिछा कर किनारे से दबा दिया जाता है। इस प्रक्रिया को श्रमिकों के द्वारा करवाने से समय व धन का व्यय होता है। अतः वर्तमान में ट्रेक्टर द्वारा पलवार बिछाने वाली मशीन भी उपलब्ध है।

ट्रैक्टर द्वारा पलवार को बिछाना

अंकुरित स्थापित कद्दु वर्गीय पौधे

खेतों में प्लास्टिक मल्चिंग करते समय सावधानियाँ

1. प्लास्टिक फिल्म हमेशा सुबह या शाम के समय लगानी चाहिए।
2. फिल्म में ज्यादा तनाव नहीं रखना चाहिए।
3. फिल्म में जो भी सल हो उसे निकलने के बाद ही मिट्टी चढ़ावें।
4. फिल्म में छेद करते वक्त सावधानी रखें एवं सिंचाई नमी का ध्यान रख के करना चाहिए।
5. छेद एक जैसे करें और फिल्म न फटे इस बात का ध्यान रखना चाहिए।
6. मिट्टी चढ़ाने में दोनों साइड एक जैसी होनी चाहिए।
7. फिल्म की घड़ी हमेशा गोलाई में करना चाहिए।
8. प्लास्टिक फिल्म को अधिक गर्मी वाले दिनों में नहीं लगाना चाहिए।
9. फिल्म को फटने से बचाए ताकि उसका उपयोग दूसरी बार भी कर पाए और उपयोग होने के बाद उसे अच्छे तरह से सुरक्षित रखना चाहिए।
10. पौधों की रोपाई एवं बीजो की बुवाई पलवार के छिद्रों में करनी चाहिए।

पलवार को हटाना एवं निस्तारण

पलवार को फसल की कटाई के बाद खेत से हटा कर सही तरह से दुबारा उपयोग के लिए रख देना चाहिए। अगर यह प्रक्रिया नहीं की जाती है तो पलवार मिट्टी में अपघटित नहीं होती है जिससे खेत में प्लास्टिक प्रदूषण की समस्या हो जाती है।

सारांश

पलवार फसलों की वृद्धि एवं विकास में सहायता करने के साथ–साथ खरपतवारों को बढ़ने से रोकता है एवं मृदा जल को वाष्पोत्सर्जन से होने वाली नुकसान से बचाता है। पलवार मृदा क्षरण को रोकता है, जिससे मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों का पौधे उचित ढंग से प्रयोग करते हैं। पलवार की किस्म के आधार पर यह मृदा के तापमान को नियंत्रित करता है जिसका लाभ पौधे अपने वृद्धि एवं विकास में लगाते है। हालांकि पलवार के उपयोग में खर्च आता है। अतः अपने आस–पास उपलब्ध पलवार को पहले प्रयोग करना चाहिए या अपने समर्थ के अनुसार पलवार का उपयोग कर अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करना चाहिए।

कैसे निज सोऐ भाग को कोई सकता है जगा,

जो निज भाषा–अनुराग का अंकुर नहिं उर में उगा।

– हरिऔध

रामतिल–आदिवासी बाहुल्य क्षेत्रों की प्रमुख तिलहनी फसल

निशा सप्रे, रजनी बिसेन एवं आनंद पाण्डे
जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

रामतिल को सामान्यतः रामतिल अथवा जगनी (हिन्दी), रामताल (गुजराती), कारला या खुरासणी (मराठी), हेचिलू (कन्नड़), पयेलू (तमिल), वेनीनुपुलु (तेलगू), अलसी (उड़िया), सरगुजा (बंगला) तथा सोरगुजा (असमिया) के नाम से देश के विभिन्न हिस्सों में जाना जाता है। यह आदिवासी बाहुल्य क्षेत्रों की प्रमुख तिलहनी फसल है। रामतिल प्राचीन काल से ही सीमान्त एवं उपसीमान्त आदिवासी किसानों द्वारा उगाई जाने वाली तिलहनी फसल है। देश की कुल तिलहनी फसल उत्पादन में 3 प्रतिशत रामतिल का योगदान है। इसकी फसल न केवल किसानों के लिए आय का जरिया है, बल्कि व्यापारियों के लिए भी इसका विशेष महत्व है। विदेशों में पक्षियों के दाने हेतु इसका उपयोग किया जाता है। भारत वर्ष में इसका उपयोग तेल निकालने के लिए किया जाता है। रामतिल के दानों में 35–45% तेल, 25–35% प्रोटीन पाया जाता है। तेल निकालने के बाद इसकी खली का उपयोग मवेशियों के आहार के लिए किया जाता है। इस फसल को कीट व्याधि एवं जानवरों से ज्यादा नुकसान नहीं होता। रामतिल की फसल उगाने के लिए बहुत अधिक उपजाऊ भूमि या अतिरिक्त प्रबंधन की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। इसे कम उपजाऊ एवं पठारी क्षेत्रों में भी साधारण प्रबंधन की सहायता से उगाया जा सकता है। इसके पौधे से विशेष गंध आती है, जिससे मित्र कीट इसकी ओर आकर्षित होते हैं। एक एकड़ के खेत में 4–5 मधुमक्खी के डिब्बे रखकर इससे अतिरिक्त लाभ कमाया जा सकता है और मधुमक्खी के द्वारा अधिक परागण होने के कारण उपज में भी दोगुना तक फायदा मिलता है। रामतिल की फसल भूमि कटाव को रोकने के लिए भी उपयोगी है इसके पौधों की जड़ों में माइक्रोराइजल सहजीविता होती है जिसके कारण इस फसल के बाद ली जाने वाली फसल का उत्पादन अच्छा होता है। उपरोक्त धनात्मक गुणों के कारण इसकी फसल अधिकतर ढालनुमा जनजातीय क्षेत्रांतर्गत सीमांत एवं उपसीमांत भूमि पर ली जाती है। रामतिल देश में प्रमुख रूप से पर्वतीय जनजातीय क्षेत्रांतर्गत अनुपजाऊ भूमि में लगभग 5.42 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में उगाया जाता है जिसका वार्षिक उत्पादन लगभग 1.62 लाख टन एवं औसत उत्पादकता 299 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर है। इसकी औसत उपज क्षमता उचित शस्य प्रबंधन होने पर 500–600 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर है। यदि उन्नत तकनीक के साथ उचित अनुशंसित कास्त विधियों को अपनायें तो 1000–1200 कि.ग्रा./हैक्टेयर तक उत्पादन लिया जा सकता है।

मध्यप्रदेश में इसकी खेती 220 हजार हैक्टेयर भूमि में की जाती है तथा इसका उत्पादन लगभग 44,000 हजार टन है। मध्यप्रदेश में इसकी औसत उपज 198 किग्रा. प्रति हैक्टेयर है। मध्यप्रदेश में इसकी खेती मुख्य रूप से छिन्दवाड़ा, बैतूल, मण्डला, सिवनी, डिण्डोरी एवं शहडोल जिले में की जाती है। रामतिल की फसल विषम परिस्थितियों में भी उगाई जा सकती है। फसल को अनुपजाऊ एवं कम उर्वरा शक्ति वाली भूमि के लिए भी उपयुक्त माना गया है। इसका तेल तथा बीज पूर्णतः विषैले तत्वों से मुक्त रहता है तथा कीड़ों, बीमारियों, जंगली जानवरों एवं पक्षियों से होने वाली क्षति के प्रति सहनशील होता है।

उत्पादन के क्षेत्र

देश में रामतिल उगाये जाने वाले प्रमुख राज्य तथा पूरे देश के उत्पादकतानुसार उनका प्रतिशत क्रमशः मध्यप्रदेश (38.8%), उड़ीसा (31.4%), महाराष्ट्र (12.7%), कर्नाटक (7.0%), बिहार (4.5%), आन्ध्रप्रदेश (2.8%) तथा पश्चिम बंगाल (1.2%) है। अपितु देश के उत्पादकता में प्रमुख रूप से भागीदारी निभाने वाले राज्यों में उड़ीसा (46.3%), मध्यप्रदेश (21.1%), महाराष्ट्र (9.6%), बिहार (9.6%), आन्ध्रप्रदेश (3.8%), कर्नाटक (4.4%) एवं पश्चिम बंगाल (2.0%) आते हैं। इसके अलावा भी देश के कुछ अन्य पर्वतीय क्षेत्रों में इसकी खेती की जाती है। यथा– राजस्थान (दक्षिण राजस्थान मुख्यतः उदयपुर, बांसवाड़ा जिला), उत्तरप्रदेश (मिर्जापुर), गुजरात, तमिलनाडु, अरूणाचल प्रदेश तथा असम के उत्तर पूर्वी पहाड़ी क्षेत्र में फसल की सफलतापूर्वक विशेषतः अच्छी संरचना एवं उचित जल निकासी वाली दोमट भूमि में उगाया जा सकता है। इसके अलावा सभी प्रकार की भूमि में इसकी खेती की जा सकती है। मुख्यतः रामतिल खरीफ मौसम में ली जाने वाली फसल है किन्तु यह रबी मौसम में भी उगाई जा सकती है।

मध्यप्रदेश/छत्तीसगढ़ के लिए अनुशंसित किस्में एवं उनकी विशेषताएं

जेएनसी –6 : इसकी औसत उपज 650–700 किग्रा./हैक्टेयर इसमें 37.38 प्रतिशत तेल की मात्रा पायी जाती है एवं यह 95–100 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसका दाना चमकीला काला होता है इस प्रजाति को म.प्र., बिहार महाराष्ट्र, कर्नाटक, राजस्थान राज्यों के लिये अनुशंसित किया गया है।

जेएनसी –1 : इसकी औसत उपज 650–700 किग्रा. /हैक्टेयर इसमें 38.40 प्रतिशत तेल की मात्रा पायी जाती है एवं यह 91–100 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसका दाना चमकीला काला होता है इस प्रजाति को म.प्र., बिहार, महाराष्ट्र, कर्नाटक, राजस्थान राज्यों के लिये अनुशंसित किया है।

जेएनएस –9 : इसकी औसत उपज 650–700 किग्रा. /हैक्टेयर इसमें 38–40 प्रतिशत तेल की मात्रा पायी जाती है एवं यह 95–100 दिन में पककर तैयार हो जाती है। काला दाना, कम पानी के प्रति संवदेनशील होता है एवं देश के सभी मुख्य रामतिल उगाने वाले राज्यों के लिये अनुशंसित है।

जेएनएस –28 : इसकी औसत उपज 650–750 किग्रा. /हैक्टेयर इसमें 34–36 प्रतिशत तेल की मात्रा पायी जाती है एवं यह 100–110 दिन में पककर तैयार हो जाती है। काला दाना, देश के सभी मुख्य रामतिल उगाने वाले राज्यों के लिये अनुशंसित, *सरकोस्पोरा* धब्बा एवं *अल्टरनेरिया* पत्ती धब्बा के प्रति सहनशील है।

जेएनएस –30 : इसकी औसत उपज 600–700 किग्रा. /हैक्टेयर इसमें 35–37 प्रतिशत तेल की मात्रा पायी जाती है एवं यह 100–105 दिन में पककर तैयार हो जाती है। काला दाना, देश के सभी मुख्य रामतिल उगाने वाले राज्यों के लिये अनुशंसित है, *सरकोस्पोरा* धब्बा एवं *अल्टरनेरिया* पत्ती धब्बा एवं जड़ सड़न के प्रति सहनशील है।

भूमि एवं भूमि की तैयारी

रामतिल विभिन्न प्रकार की मृदा जैसे रेतीली, रेतीली दोमट, दोमट एवं पथरीली भूमि में उगाई जाती है यद्वपि अच्छी जल निकास वाली दोमट भूमि जिसका पी.एच.मान 5.5 से 7.0 के बीच हो उपयुक्त होती है। यह फसल हल्की क्षारीय एवं लवणीय भूमि में भी हो सकती है अधिक दोमट एवं कपास वाली काली भूमियां अधिक उपज के लिये उपयुक्त नहीं होती है ।

खेत की तैयारी

दो बार गहरी जुताई के बाद बखर एवं पाटा चलाकर खेत की मिट्टी भुरभुरी एवं समतल कर ली जाती है जिससे बीज की बुवाई उपयुक्त गहराई पर एवं बाद में पौध वृद्वि अच्छी होती है ।

बुवाई का उपयुक्त समय

रामतिल मुख्यतः खरीफ के मौसम में जुलाई के मध्य से अगस्त की शुरूआत में बोई जाती है परंतु इसे खरीफ में विलम्ब से एवं अर्धरबी मौसम सितम्बर माह में सीमित सिंचाई के साथ सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। यद्वपि यह शरद ऋतु के लिये उपयुक्त फसल है । रबी के मौसम में जीवन रक्षक सिंचाई कर सामान्य उपज प्राप्त की जा सकती है ।

बीज दर

बीज दर, बुवाई की विधि पर निर्भर होती है । साधारणतया एकल फसल के लिये 3.5–4.0 किलो बीज/हैक्टेयर आवश्यक होता है। अन्तर्वर्तीय फसल पद्वति में बीज दर अन्तर्वतीय फसल की कतारों के अंतर व कतारों के अनुपात पर निर्भर होती है ।

बीज उपचार

फसल को बीज एवं मृदा जनित बीमारियों से बचाने के लिये बीज उपचार कर्बेन्डाजिम 5 ग्राम/किलो या *ट्राइकोडर्मा वीरिडी* 10 ग्राम/किलो बीज की दर से बुवाई पूर्व करना चाहिये। स्फुर घोलक जीवाणु (पी.एस.बी.) या एजोटोबेक्टर या एजोस्पाईरिलम 10 ग्राम/किलो बीज की दर से बीज उपचार करने पर अधिक उपज प्राप्त होती है ।

बुवाई विधि

सामान्य तौर पर यह फसल छिटकवां विधि से बोई जाती है। कई क्षेत्रों में बीज छिड़काव के बाद खाली सीडड्रिल कतार से चला दिया जाता है जिससे इसके बीज कतारों में व्यवस्थित हो जाते हैं। मैदानी क्षेत्रों में बुवाई के लिए सीड ड्रिल या देशी हल के पीछे करना लाभप्रद पाया गया है एवं इसे अनुमोदित भी किया गया है । आवश्यक बीज की मात्रा बढ़ाने के लिये बीज की मात्रा का 20 गुना रेत/भुरभुरी गोबर की खाद या राख मिलाई जाती हैं जिससे बीज का एक समान वितरण होता है । बीज ढंकने के लिये हल्का पाटा चलाया जाता है । ढालू भूमि पर मृदा एवं जल संरक्षण तथा उपलब्ध नमी का दक्षतापूर्ण उपयोग के लिये ढाल के विपरीत कतारों में बुवाई की सिफारिश की जाती है ।

बुवाई की गहराई एवं कतारों का अन्तर

रामतिल बीज की बुवाई 2 से 3 से.मी. की गहराई पर भूमि के प्रकार एवं भूमि में उपलब्ध नमी के अनुसार करना चाहिये। अच्छे अंकुरण के लिये बीज की बुवाई पर्याप्त नमी में करना चाहिये । बीज शैया का तापमान 15–20 से.ग्रे. उचित होता है। (10 से.ग्रे.) से कम एवं (35 से.ग्रे.) से अधिक तापमान अंकुरण को प्रभावित करता है । कतार से कतार की दूरी 30 से.मी. एवं पौधों से पौधों की दूरी 10 से.मी. रखनी चाहिये ।

पौध विरलन

उचित पौध संख्या (3.3 लाख/हैक्टेयर) बनाये रखने के लिये पौध विरलन बुवाई के दो सप्ताह बाद या जब पौधे 8–10 से.मी. उंचे हो जाये तब करना चाहिये।

पोषक तत्व प्रबंधन

रामतिल की अधिक उपज प्राप्त करने के लिये 60:40:20 किलो नत्रजन, स्फुर एवं पोटाश/हैक्टेयर की सिफारिश की गई है। नत्रजन की आधी मात्रा एवं स्फुर एवं पोटाश की पूरी मात्रा बोवाई के समय देना चाहिए। बची हुई नत्रजन की आधी मात्रा को दो भागों में विभाजित कर दो बार में देना चाहिए। पहली मात्रा पौध विरलन के बाद एवं दूसरी मात्रा शाखायें बनते समय देना चाहिए। सिफारिश की गई नत्रजन यूरिया से फास्फोरस घोलक जीवाणु 10 ग्राम/किलो बीज से उपचारित करने से बीज की उपज में वृद्वि होती है । गंधक 20–30 किलो/हैक्टेयर देने से बीज की उपज एवं तेलांश में वृद्वि होती है ।

निंदाई

पहली निंदाई, बुवाई के 15–20 के बाद पौध विरलन के साथ करना चाहिये। नत्रजन उर्वरक खड़ी फसल में देने के पहले यदि फसल में खरपतवार की अधिकता हो तब पुनः दूसरी निंदाई, पहली निंदाई के 15 दिन बाद करना चाहिये। कुछ राज्यों जैसे उड़ीसा, में अमरबेल का प्रकोप एक मुख्य समस्या है ऐसी जगह अमरबेल रहित बीज दूसरे क्षेत्रों से प्राप्त करें । यदि अमरबेल के बीज रामतिल के बीज के साथ मिश्रित हो जाए तब 1.0 मि.मी. की छलनी से छानकर अमरबेल की बीज अलग करने के बाद ही बुवाई करना चाहिये । अमरबेल से प्रभावित रामतिल के बीज को 10 प्रतिशत ब्राइन घोल (सामान्य नमक) से उपचारित करने से अमरबेल रहित फसल प्राप्त की जा सकती है। इसके अतिरिक्त पेंडीमोथिलीन 38.7%, 500 ग्रा./हैक्टेयर बुआई के तुरंत पश्चात करने पर अमरबेल एवं संकरी पत्ती के खरपतवार एवं कुछ चौड़ी पत्ती के खरपतवार पर नियंत्रण किया जा सकता है।

सिंचाई

प्रायः रामतिल खरीफ के मौसम में बिना किसी सिंचाई के उगाई जाती है । भूमि में लंबे समय तक मृदा में नमी की कमी होने से पौधों की वृद्वि एवं पौध संख्या पर विपरीत प्रभाव पड़ता है । इन दशाओं में जहां संभव हो, जीवन रक्षक सिंचाई पौधों के प्रारंभिक जमाव एवं अच्छी उपज प्राप्त करने में सहायक होती है । अर्ध रबी फसल के लिये एक या दो आवश्यक सिंचाई फूल आने पर एवं दूसरी दाना भरने की अवस्था पर करने से अधिक उपज प्राप्त होती है ।

फसल पद्वति

सामान्यतः रामतिल खरीफ एवं खरीफ में विलंब से उगाई जाती है। प्रदेश में रामतिल के पहले शीघ्र पकने वाली फसलें जैसे बरबटी एवं फ्रासबीन ली जा सकती है । दोनों फसलों से अधिक उपज प्राप्त करने के लिये पहली फसल इस तरह से बोई जाती है। कि रामतिल की बुवाई शीघ्रातिशीघ्र अगस्त माह में की जा सके।

फसल चक

मूंग – रामतिल

उड़द – रामतिल

कुटकी– (अगेती) रागी – रामतिल

मिश्रित फसल प्रणाली

रामतिल + कोदो (2 : 2)

रामतिल + कुटकी (2 : 2)

रामतिल+ बाजरा (2 : 2)

रामतिल + मूंग (2 : 2)

रामतिल + मूंगफली (6 : 2 / 4 : 2)

रामतिल की फसल को उसकी वृद्वि की विभिन्न अवस्थाओं पर बहुत से कीट एवं बीमारियाँ नुकसान पहुंचाते हैं। नुकसान को कम करने हेतु उपयुक्त नियंत्रण के उपाय अपनाना चाहिये । रामतिल के प्रमुख कीट एवं लक्षण तथा प्रबंधन के अनुशंसित उपाय निम्न तालिका 2 में दिये गये हैं ।

तालिका क्रमांक 1:– विभिन्न कीटों द्वारा नुकसान के लक्षण, संक्रमण की अवस्था एवं प्रबंधन के उपाय

सामान्य /वैज्ञानिक नाम	नुकसान के लक्षण	प्रबंधन के उपाय
राम तिल की इल्ली (*कानडिका कन्डकटा*)	इल्लियां (हरी जिस पर बैंगनी रंग की धारियां होती हैं।) पत्तियों को खाती है जिससे पौधे पत्तीरहित हो जाती हैं।	• खेतों से खरपतवार ठीक तरह से हटाने पर इल्लियों के छिपने के लिये स्थान नहीं मिलता है । • नीम बीज रस की पांच प्रतिशत की दर से घोल बनाकर पर्णीय छिड़काव करें । • कीटों की संख्या अधिक होने पर क्यूनालफॉस (25 ई .सी.) 1.5 मि.ली. /लीटर या क्लोरपायरीफास (20 ई .सी.) 1.5 मि.ली./लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर पर्णीय छिड़काव करें
कट वर्म (*एग्रोटिस इप्सिलोन*)	दिन के समय पत्तियों और सूखे डठलों के नीचे शलभ (माथ) छिप जाते हैं और पत्तियों पर अंडे देते हैं। इल्ली फसल पर आक्रमण करती है और भूमि की सतह पर पौधों को खा जाती है	• दिन के समय इल्लियों को छिपाने के लिये खेतों में घास के गटठे या फसल से निकली हुई घास के गठ्ठे बनाकर क्यूनालफास 1.5% डस्ट 20–25 कि.ग्रा./हैक्टेयर की दर से भुरकाव करें। • कीटों की संख्या अधिक होने पर क्लोरपायरीफास 20 ई.सी. की 1.5 मि.ली./लीटर या क्यूनालफॉस 25 ई.सी. की 1.5 मि.ली./लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर पर्णीय छिड़काव करें।

बिहार रोमयुक्त इल्लियां (*स्पिलोसोमा ऑबलिक्वा*)	बिहार का मुख्य कीट है। आरंभिक अवस्था तक ये पत्तियों की निचली सतह में होती हैं तथा कीट की तीसरी और चौथी अवस्था (इन्स्टार) में उपज को बहुत नुकसान पहुंचाती है।	• अंडों के समूहों और इल्लियों की प्रारंभिक अवस्था (इन्स्टार) को एकत्रित कर नष्ट कर देना चाहिये। • ट्राईकोग्रामा जाति तथा अपनटेलिस आक्सीक्यू अण्ड परजीवी का प्रयोग करें । • पक्षी बसेरा 40–50 प्रति है. की दर से प्रयोग करें। • उचित बीज दर तथा समुचित पौधे से पौधे की दूरी अपनायें। • अंडजन तथा झुण्ड में रहने की अवस्था में इल्लियों को नष्ट करें • *बैसीलस थूरनजेनसिस* का प्रयोग करें। • बाद में कीट का प्रकोप अधिक होने पर आर्थिक क्षति स्तर (2 इल्ली प्रति पौधा) पर नीम बीज रस 5 प्रतिशत या नीम तेल 5 मि.ली. प्रति ली. या ऐजाडायटेक्नि 0.03% प्रतिशत का आवश्यतानुसार एक या दो छिड़काव पानी के साथ करें। • कीट का नियंत्रण उपयुक्त उपायों से न होने पर रासायनिक कीटनाशकों जैसे क्यूनालफास (25 ई.सी.) 1.5 मि .ली / लीटर या प्रोफोनोफास का 2 मि .ली. / ली. पानी के हिसाब से घोल बनाकर बुवाई के 30 तथा 45 दिनों बाद आवश्यकतानुसार पर्णीय छिड़काव करें
माहो (एफिड) / *लिरोल्यूकान कार्थेमी*	फसल की बाढ की अवस्था में इस महत्वपूर्ण रसचूसक कीट के शिशु एवं वयस्क पौधों के विभिन्न भागों से रस चूसकर नुकसान पहुंचाते हैं।	• फसल की शीघ्र बुवाई (अगस्त के प्रथम सप्ताह) की तुलना में देर से बोई गई फसल में कीट का प्रकोप अधिक होता है । • कीटनाशक औषधि डायमिथियेट 30 % ई.सी. 1.5 मि.ली. / लीटर या ईमिडाक्लोरप्रिड 17.8 एस.एल. 0.25 मि.ली. / लीटर पानी के हिसाब से पर्णीय छिड़काव करें।
अर्द्धगोलाकार सुंडी / (*प्लूसिया आरचेलसिया*)	सूंडी पत्तियों को खा जाती है।	• रोमयुक्त इल्लियों के अनुसार
कैप्सूली मक्खी (*डाकसीमा साारकुला*)	मैगट कैपीटुला के अंदर बीज के गूदे को खा जाता है।	• एक प्रकाश प्रपंच प्रति हैक्टेयर की दर से लगायें। • फूल में बीज बनने के समय क्यूनालफास 25 ई.सी. 1.5 मि.ली. / लीटर या नीम बीज रस 5 प्रतिशत के हिसाब से घोल बनाकर पर्णीय छिड़काव करें ।

रामतिल की फसल को उसकी वृद्वि की विभिन्न अवस्थाओं पर बहुत से रोग नुकसान पहुंचाते हैं। नुकसान को कम करने हेतु उपयुक्त नियंत्रण के उपाय अपनाना चाहिये। रामतिल के प्रमुख रोग एवं उनके लक्षण तथा प्रबंधन के अनुशंसित उपाय तालिका क्रमांक 2 में दिये गये हैं।

तालिका कमांक 2 :– विभिन्न रोगों के लक्षण, तथा उनका प्रबंधन

क्रं.	रोग का नाम	लक्षण पहचान	रोग का नियंत्रण एवं उपचार रोग का प्रबंधन
1	सरकोस्पोरा धब्बा (*सरकोस्पोरा गुइजोटीकोला*)	इस रोग से ग्रसित पौधों पर छोटे भूरे धब्बे बनते हैं। जिनके बीच का भाग धूसर रंग का होता है तथा किनारा गहरे रंग के होते हैं तना पर भी भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं।	• थाईरम 2 ग्राम+कार्बेन्डाजिम 1ग्राम 3 ग्राम / कि .ग्रा. अथवा *ट्राईकोडर्मा विरडी* 5 ग्राम / किलोग्रम की दर से बीजोपचार करें • डायथेन जेड 78 को 2.5 ग्राम या साफ 2.0 ग्रम या क्विटाल 1 ग्राम या टायसिन एम 1 ग्राम दवा का प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव रोग प्रारंभ होने पर 15 दिन के अंतर पर 2 बार करें।
2	अल्टरनेरिया पत्ती धब्बा (*अल्टरनेरिया स्पी.*)	पत्तियों पर छोटे गहरे भूरे से काले धब्बे सघन छल्लों के साथ बनते हैं जो बाद में संख्या में बढ़ते हैं जिससे पत्तियां झड़ जाती है।	• रोग प्रतिरोधी जातियां लगायें जैसे जे .एन.सी–6, आई.जी.पी.–76, देवमाली, जी.ए–11, ओ.एन.एस.–18 • डायथेन जेड–78 या डायथेन एम–45 फफूंदनाशक 2.5 ग्राम या साफ 2.0 ग्राम या क्विटाल 1 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव रोग प्रारंभ होने पर 15 दिन के अंतराल पर 2 बार करें ।
3	तना एवं जड़ सड़न (*मेक्रोफोमिना फेजोलिना*)	रोगी पौधे का तना जमीन की सतह के उपर काला हो जाता है तथा छिलका हटाने पर काले स्केलेरोसिया दिखते हैं जिससे संक्रमित जड़ का रंग कोयले के समान काला दिखता है ।	• गर्मी में गहरी जुताई करें एवं फसल चक्र अपनायें। • *ट्राईकोडर्मा विरडी* 5 ग्राम / कि .ग्रा की दर से बीज उपचार करें एवं खेत में 2.5 ग्राम *ट्राईकोडर्मा विरडी* को 100 किलोग्राम कम्पोस्ट मिलाकर खेत में मिलावें ।
4	भभूतिया रोग (*स्फोरोथका स्पी*)	पत्तियों पर सफेद चूर्ण धब्बे दिखाई देते हैं, गंभीर रूप से प्रभावित पत्तियां झड़ जाती हैं। रोग की उग्र अवस्था में धब्बे शाखाओं तथा फल्लियों को भी ढंक लेते हैं ।	• घुलनशील गंधक 3 ग्राम या कार्बेन्डाजिम 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव रोग शुरू होने पर सात दिन के अंतराल से दो बार करें ।

वर्षा जल संचयन आज की आवश्यकता

जी. आर. डोंगरे एवं सुशील कुमार
भा.कृ.अनु.प.-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

पिछले दो दशकों से जल संकट की पृष्ठभूमि में वर्षा जल संग्रहण (रेन-वाटर हार्वेस्टिंग) की चर्चा अक्सर सुनी जाने लगी है। पिछले कुछ वर्षों में जल संग्रहण की आवश्यकता को देखते हुए सरकार भी इसे बढ़ावा देने के हर संभव प्रयास कर रही है। कार्यशालाओं में तकनीकी संगोष्ठियों में तथा स्थाई निकायों से पास होने वाले गृह निर्माण के नक्शों में इस गंभीर विषय पर बहस होने लगी है। कई स्वयं सेवी संस्थायें भी इस विषय में सतत् प्रयासरत् है। समाज के किसान वर्ग से लेकर व्यवसायी तथा बिल्डरों इत्यादि को जोड़कर सर्व की भागीदारी सुनिश्चित की जा रही है। इससे संबंधित सरल प्रचार-प्रसार सामग्री, पर्चे पोस्टर बैनर छपवाकर लोगों को जागरूक किया जा रहा है। प्रिन्ट मीडिया में इस पर लेख छपते हैं। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में भी विषय विशेषज्ञ अपनी राय समय-समय पर देते हैं। पर फिर भी साधारण जन मानस के लिए इस प्रक्रिया का सीधा-सीधा सरल अर्थ, बरसात के पानी को जमीन में जमा करना है। आपसी बोलचाल में वह जल संरक्षण को उपयोग तो करने लगा है पर इस विषय के विभिन्न पहलुओं से अनजान ही है।

बरसात के मौसम में जब धरती पर वर्षा होती है तो उसका कुछ हिस्सा जमीन की गहराई में अपने आप उतर जाता है। यह कार्य प्राकृतिक रूप से खुद ब खुद हो जाता है। यह बिल्कुल सत्य है कि धरती के विभिन्न भागों में पानी को सोखने की क्षमता अलग-अलग होती है, पर कितना पानी जमीन में नीचे उतरेगा, यह मिट्टी के प्रकार एवं उसके नीचे पाई जाने वाली चट्टानों के गुण-धर्म पर निर्भर होता है। रेत और बजरी की परतों और मौसम के बुरे प्रभाव से अपक्षीण चट्टानों में सबसे ज्यादा पानी रिसता और संरक्षित होता है। पानी के नीचे रिसने में बरसात की तीव्रता की भी भूमिका विशेष होती है। तेजी से बरसे पानी का अधिकांश हिस्सा ढाल या उतार के सहारे बहकर दूर चला जाता है। तो धीरे-धीरे बरसने वाले पानी का काफी बड़ा हिस्सा जमीन की गहराईयों में उतर जाता है।

क्षेत्र विशेष का भूमि उपयोग भी पानी के जमीन में रिसने पर असर डालता है। बंजर ऊसर या कठोर जमीन अपारगम्य चट्टानों के ऊपर गिरे पानी का अधिकांश हिस्सा ऊपरी सतह से ही बह जाता है तो रेतीली जमीन और जुताई किये खेत से लगभग 20-22 प्रतिशत पानी ही बहकर आगे की ओर जा पाता है। इस प्रक्रिया को प्रकृति द्वारा संपन्न वर्षा जल संरक्षण (रेन वाटर हार्वेस्टिंग) कहा जा सकता है।

वर्तमान परिदृश्य में वर्षा जल संरक्षण शब्द का अधिकांश प्रयोग कृत्रिम तरीकों से बरसाती पानी के संचयन को बताने में किया जाने लगा है। जिसके लिए विभिन्न कृत्रिम संरचनायें जैसे तालाब, नदियों पर चैकडेम, गेबियन स्ट्रक्चर, स्टॉप डेम तथा परकुलेशन टैंक जमीन के ऊपर और जमीन के नीचे बनाये जाते हैं।

रेन वाटर हार्वेस्टिंग की आवश्यकता दिन प्रतिदिन शहरी क्षेत्रों में भी महसूस की जा रही है। कांक्रीट के जंगल के चलते शहरों में जमीन का कांक्रीटकरण हो रहा जमीन में पानी उतर ही नहीं पाता। इस समस्या से निजात पाने भवन के आस-पास की खाली जगह में जहां पेवर ब्लॉक लगाने से कुछ हद तक पानी का रिसाव जमीन में होता हैं, वहीं दूसरी तरफ छत का संपूर्ण वर्षा जल यदि बोर में डाल दिया जाये तो बोर की चार्जिंग हो जाती है। इसके लिए नगर पालिका निगम ने नियम बनाये हैं कि भवन के नक्शे पास करते समय रेन वाटर हार्वेस्टिंग सिस्टम का प्रावधान करने पर ही उस भवन निर्माण का नक्शा पास किया जाता है जिससे समस्या का कुछ हद तक हल निकल पाता है। वर्षा जल का संरक्षण केवल शहरों में जरूरी है ऐसा नहीं है, गाँवों में भी इसका महत्व उतना ही है। आज की लगातार विषम होती परिस्थितियों में शहरी एवं ग्रामीण इलाकों में समान रूप से वर्षा जल संरक्षण की आवश्यकता है तथा गहराते जल संकट से निजात पाने का प्रमाणिक उपाय है। इसे सही एवं पूर्ण वैज्ञानिक तरीके से अपनाने पर भविष्य में होने वाले जल संकट से निजात मिल सकती है। यह जल की सर्वत्र उपलब्धता सुनिश्चित करने का एक पर्याय है।

रेन वाटर हार्वेस्टिंग के लिए स्थान चयन हेतु आवश्यक तथ्य

1. क्षेत्र के जल स्तर की जानकारी – वर्षा जल संरक्षण हेतु उस क्षेत्र के जल स्तर की जानकारी होना आवश्यक है वर्षा जल संरक्षण उसी क्षेत्र में उपयुक्त होता है जहां बरसात के दिनों में बरसात अच्छी होती हो तथा इन दिनों में भूजल का स्तर जमीनी सतह से काफी नीचे होता है। इस परिस्थिति में ऐसे क्षेत्र में पानी को संचित करने के लिए जमीन के नीचे पर्याप्त खाली स्थान मौजूद होता है। इसके विपरीत यदि उस क्षेत्र में भूजल का स्तर जमीन की ऊपरी सतह के काफी करीब होता है तो वहां बहुत कम पानी का संचय संभव होता है। उथले भूजल स्तर वाले क्षेत्रों में भूजल रिचार्ज करने के बजाय पानी का संचयन तालाबों या टैंकों में करना उचित होता है।

2. उपलब्ध जल की मात्रा का होना – दूसरा तथ्य यह है कि उस क्षेत्र में जमा या संचित करने वाले पानी की मात्रा की पर्याप्त उपलब्धता है या नहीं अर्थात् वहां वर्षा जल कितना उपलब्ध होगा तथा जब तक पानी का संचय उस क्षेत्र की जरूरत से अधिक नहीं होगा तब तक वहां पानी का अभाव बना रहेगा।

3. वर्षा जल संरक्षण हेतु उपयुक्त स्थान का चुनाव करना– स्थान के चयन हेतु यदि पानी का संचय जमीन के ऊपर किया जाना है तो जल संग्रह का उत्तम स्थान, (कैचमेंट) जल ग्रहण क्षेत्र से आने वाले पानी की उपयुक्त मात्रा, उसकी उचित गुणवत्ता एवं पानी के आवक की ग्रीष्म काल के अंत तक उपलब्धता आदि सुनिश्चित करना जरूरी है। इस प्रक्रिया में बरसात की मात्रा गणना हेतु सबसे कम वर्षा वाले वर्ष को ध्यान में रखकर ही करना चाहिए। ऐसा इसलिए कि इससे पानी की कमी की संभावना बहुत कम हो जाती है। यदि पानी का संग्रह भूमि के नीचे एक्वीफर में करना है, तो जल ग्रहण क्षेत्र से आने वाले पानी की उपयुक्त मात्रा एवं गुणवत्ता के साथ–साथ एक्वीफर की जल ग्रहण क्षमता एवं जमीन में पानी प्रवेश कराने वाली उपयुक्त संरचना की जानकारी होना भी अति आवश्यक होता है। जमीन के नीचे पानी के संग्रहण के कार्य को भूजल संवर्धन कहते हैं। चूंकि भूजल संग्रहण/ संवर्धन का कार्य जमीन के नीचे होता है अतः इस कार्य में गलतियां होने की संभावना ज्यादा रहती है। इसलिए इस तरह के कार्य हेतु इस विषय के विशेषज्ञ के द्वारा ही उक्त कार्य कराना उचित होता है।

4. क्षेत्र की उचित भूमि का चयन – वर्षा जल संरक्षण द्वारा भूजल संवर्धन के कार्य को करने के लिए क्षेत्र की भूमि बहुत महत्वपूर्ण होती है। नदी, तटीय इलाकों, कछारों एवं नदी के आस–पास क्षेत्रों में दूर–दूर तक रेत–बजरी और मृदा विशेष की परतें पाई जाती हैं। रेत और बजरी की परतों की जल संग्रहण क्षमता बहुत अच्छी होती है इसलिए इन क्षेत्रों में भू–जल संग्रहकर बहुत ही विशाल भू–जल भंड़ार विकसित किये जा सकते हैं। इस तरह के क्षेत्रों के भू–जल भंड़ार को समृद्ध कर जुड़ी नदियों को बारह मासी बहने वाली नदियों में बदला जा सकता है और जल संकट से मुक्ति पाई जा सकती है। दूसरी ओर चट्टानी क्षेत्रों के एक्वीफर आकार में छोटे एवं ज्यादातर कम गहराई पर उपलब्ध होते हैं। जो बरसात में बहुत जल्दी भर जाते हैं और बरसात बाद जल्दी ही खाली हो जाते है। इन क्षेत्रों में सतही एवं भूजल पर परस्पर निर्भर संरचनायें बनाना उचित होता है।

वर्षा जल संचयन की विभिन्न पद्धतियाँ

वर्षा जल संचयन करने की कई पद्धतियाँ है जिनमें से कुछ वर्षा जल संचयन हेतु बहुत कारगर साबित हुई है वे निम्नानुसार है।

1. सतही जल संचयन पद्धति – इस पद्धति में जमीन की ऊपरी सतह पर जो वर्षा जल गिरकर जमीन के निचले हिस्से में बहकर उतर जाता है अर्थात् गंदे नाले–नालियों में बहने के पहले सतही जल को रोककर जमीन में नीचे भेजने के कार्य को सतह जल संग्रहण कहा जाता है। बड़े ड्रेनेज पाईपों के द्वारा वर्षा जल को कुओं, तालाबों या नदी में संग्रहण कर रखा जाता है तथा गर्मी में पानी की कमी के समय इसे उपयोग किया जाता है।

2. बोरी बांध/स्टॉप डैम निर्माण– छोटे नदी नालों पर किसान सीमेंट इत्यादि की खाली बोरियों में रेत भरकर नदी नाले के कम चौडे तट बंध पर बोरियों को पानी बहाव के रास्ते में जमाकर भी बरसाती पानी का संचयन कर सकते है। छोटे नदियों या नालों पर सीमेंट से उचित स्थान पर (स्ट्रर्क्चर) चैक डैम स्टॉप डेम बनाकर भी पानी का संग्रहण किया जा सकता है। स्टॉप डैम संरचना ऐसी होती है जो अधिक जल प्रवाह आने पर अतिरिक्त जल संरचना के ऊपर से बहकर चला जाता है तथा संरचना को कोई क्षति नहीं होती है।

3. जल संग्रहण हेतु बड़े बांधों का निर्माण – बड़ी नदियों पर उचित स्थान को चयन कर दोनों तट बांधों के बीच बांध बनाकर वर्षाजल को जलग्रहण क्षेत्र से बांध में विशाल पैमाने पर रोका जाता है। जिन्हें बरसात के बाद गर्मी के मौसम में बिजली उत्पादन हेतु तथा नहरों द्वारा खेतों की सिंचाई हेतु तथा पंप हाऊस द्वारा शहरों/गाँवों में पेयजल हेतु फिल्टर कर उपयोग किया जा सकता है।

4. जल संग्रहण तालाब बनाकर – जलग्रहण क्षेत्र को देखकर तालाब को विकसित किया जाता है, जिसमें बरसात के पानी को रोककर एकत्र करके वर्ष भर कृषि कार्य हेतु उपयोग किया जाता है। बड़े तालाबों को छोड़कर छोटे तालाबों का जल पीने हेतु उपयुक्त नहीं होता है। अतः कृषि के कार्य में अधिकांश उपयोग किया जाता है।

5. भूमिगत गड्ढे या टैंकों द्वारा– इस पद्धति द्वारा हम बरसाती जल को जमीन के अंदर संरक्षित रख सकते हैं। इस विधि में बरसाती जल को भूमिगत गड्ढे में भेज दिया जाता है, जिसे सूर्य की धूप में वाष्पीकरण से बचाकर हम हमारे परंपरागत स्त्रोत जैसे कुआं, बावड़ी या बोर वेलों की रिचार्जिंग करा सकते हैं तथा भूजल स्तर गहरा जाने से भी बचा सकते हैं।

6. छत के पानी को रोकनाः– इस पद्धति में हम भवन की छत पर गिरने वाले वर्षा जल को एक विशेष ड्रेनेज पाईप के द्वारा रेन वाटर हार्वेस्टिंग वाले स्ट्रक्चर में जो कुएं या बोर के पास बना होता है उसमें उक्त जल को छोड़ा जाता है, जो प्राकृतिक रूप से ग्रेवल इत्यादि से फिल्टर होकर बोर या कुएं

के जल स्तर को बढ़ा देता है तथ पानी के संकट से मुक्ति मिल जाती है।

वर्षा जल संचयन के लाभ

1. घरेलू काम के लिए ज्यादा से ज्यादा पानी बचा सकते हैं और इस पानी को कपडे साफ करने के लिए, खाना पकाने के लिए तथा घर साफ करने के लिए, नहाने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

2. बड़े–बड़े कारखानों में स्वच्छ पानी को इस्तेमाल में लाकर बर्बाद कर दिया जाता है। ऐसे में वर्षा जल को संचय करके इस्तेमाल में लाना जल को संरक्षित करने का एक बेहतरीन उपाय है। ज्यादा से ज्यादा पानी की बचत और जल संचयन करने के लिए ऊपर दिए हुए तरीकों का उपयोग कंपनी कर सकती हैं।

3. कुछ ऐसे शहर और गांव होते हैं जहां पानी की बहुत ज्यादा कमी होती है और गर्मी के महीने में पानी की बहुत किल्लत होती है। ऐसे में उन क्षेत्रों में पानी को भी लोग बेचा करते हैं। ऐसी जगह में वर्षा के महीने में जल संचयन करना गर्मी के महीने में पानी की कमी को कुछ हद तक कम कर सकता है।

4. वर्षा जल संचयन के द्वारा ज्यादा से ज्यादा पानी एकत्र किया जा सकता है जिससे मुफ्त में गर्मी के महीनों में कृषि करके किसान पैसे कमा सकते हैं तथा सिंचाई पर होने वाले खर्च को भी बचा सकते हैं।

5. वर्षा जल संचयन से ज्यादा से ज्यादा पानी को अलग–अलग जगहों में इकट्ठा किया जाता है जैसे बांधों में, कुओं में और तालाबों में। अलग–अलग जगहों में पानी का संचयन करने के कारण जमीन पर बहने वाले जल की मात्रा में कमी आती है जिससे बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदा को रोकने में मदद मिलती है।

6. वर्षा जल संचयन किसानों के लिए सबसे कारगर साबित हुआ है क्योंकि वर्षा के पानी को बचाकर आज ज्यादातर किसान गर्मियों के महीने में बहुत ही आसानी से फसलों हेतु पानी की कमी को दूर कर पाये हैं।

7. ज्यादा से ज्यादा प्राकृतिक पानी को इस्तेमाल करने से स्वच्छ पीने लायक पानी को हम ज्यादा से ज्यादा बचा सकते हैं। वर्षा जल को शौचालय के लिए, नहाने के लिए और बर्तन धोने के लिए इस्तेमाल में लाया जा सकता है।

आवश्यक सावधानियाँ

1. वर्षा जल संचयन की मदद से जमा किए हुए पानी को इस्तेमाल करने से पहले अच्छे से फिल्टर किया जाना चाहिए जिससे कि इसमें मौजूद अशुद्धियां पानी से अलग हो जाए।

2. वर्षा के पानी को ऐसे बर्तन या पात्रों में रखना चाहिए जो धूप के संपर्क पर आने पर जहरीले तत्व ना बनाते हों।

3. वर्षा जल संचयन द्वारा जमा किए हुए पीने के पानी को अच्छे से उबालना बहुत जरूरी है ताकि इसमें मौजूद जहरीले तत्व और हानिकारक कीटाणुओं का सफाया हो जाये।

“भाषा और राष्ट्र में बड़ा घनिष्ट संबंध है।”

– (राजा) राधिकारमण प्रसाद सिंह

“भाषा की समस्या का समाधान साम्प्रदायिक दृष्टि से करना गलत है।”

– लक्ष्मीनारायण सुधांशु

कृषि में ड्रोन की बढ़ती भूमिका

संदीप धगट एवं मुकेश कुमार मीणा
भा.कृ.अनु.प.-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

समय के साथ कृषि में भी परिवर्तन तेजी से हो रहा है। पहले के समय में कृषि कार्य के लिए ज्यादा मजदूरों की आवश्यकता होती थी और मजदूर आसानी से मिल भी जाते थे, परन्तु बढ़ते समय के साथ कृषि में मजदूरों की संख्या कम होने लगी, इस कमी को पूरी करने के लिए तकनीकी का सहारा लिया जाने लगा है और आज के समय में हम कृषि के लगभग सभी क्षेत्रों में मशीनी टूल्स और कई तरह की तकनीक का उपयोग कर रहे हैं। इन्हीं तकनीको में ड्रोन भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

क्या है ड्रोन ?

ड्रोन एक आधुनिक युग का चालक रहित विमान है, इसे कही दूर से रिमोट या कम्प्यूटर द्वारा चलाया जा सकता है। एक सामान्य ड्रोन की संरचना चार विंग यानि पंखोवाली होती है। इसलिए इसे क्वाड कॉप्टर भी कहा जाता है। असल में यह नाम इसके उड़ने के कारण इसे मिला, यह बिल्कुल एक मधुमक्खी की तरह उड़ता है और एक जगह पर स्थिर भी रह सकता है। ड्रोन को कई तरीकों से वर्गीकृत किया जा सकता है। जैसे उसके उड़ने की ऊंचाई के आधार पर, उसके आकार के आधार पर, उसके वजन उठाने के क्षमता के आधार पर, उसके पहुंच क्षमता के आधार पर इत्यादि। परन्तु मुख्य रूप से इसके वायु गतिकीय के आधार पर वर्गीकृत किया गया है।

कृषि प्रबंधन में ड्रोन का उपयोग

- ड्रोन में लगें उच्च क्षमता वालें कैमरों की मदद से फसलों की देखरेख की जा सकती है। विशेषतः ऐसी ऊंची एवं सघन फसलें जिन क्षेत्रों के अन्दर जाना मुश्किल होता हो अथवा बगीचों में जहां ऊंचाई वालें पौधे जैसे-आम, अमरूद, आंवला इत्यादि फलदार पौधे होते हैं।
- फसलों में सटीक तरह से छिड़काव के लिए ड्रोन का उपयोग किया जा सकता है। फसलों पर कीटनाशकों का छिड़काव जोखिम पूर्ण होता है क्योंकि कीटनाशकों से गंभीर बीमारी होने का खतरा होता है। सबसे ज्यादा मुश्किल गन्ना, ज्वार, बाजरा जैसी ऊंचाई वाली फसलों में आती है। परन्तु ड्रोन सभी फसलों में आसानी से बहुत ही कम समय लेते हुए सुरक्षित रूप से यह काम पूर्ण कर लेता है।
- ड्रोन में लगे विभिन्न प्रकार के सेंसर से फसलों में होने वाली बीमारियों, कीड़े और खरपतवारों का सटीक रूप से पता लगाया जा सकता है।
- ड्रोन की सहायता से मृदा एवं क्षेत्र का आसानी से विश्लेषण किया जा सकता है।
- मृदा की आवश्यकता के अनुसार परिवर्तनीय दर से उर्वरक के छिड़काव में उपयोग किया जा सकता है।
- पशुओं पर नजर रखने के लिए भी इसका उपयोग किया जा सकता है। ब्रिटेन में किसान इस तकनीक से पशुओं पर नजर रखते हैं।
- भूमि में पोषक तत्व की स्थिति एवं मृदा का स्वास्थ्य पर प्रभाव, मृदा में नमी इत्यादि का भी आसानी से पता लगाया जा सकता है।
- ड्रोन की उपयोगिता से कृषि क्षेत्र में प्रयोग में लाए जाने वाले उर्वरक, पोषक तत्व, कीटनाशक आदि की मात्रा में कमी लाई जा सकती है।
- कुछ ड्रोन तो कृषि कार्य में इतने सटीक है कि इसकी मदद से खाद-पानी की जरूरत के साथ-साथ यह भी जांच सकते हैं कि फसल का स्वास्थ्य कैसा है और हाई क्वालिटी कैमरे से फसलों की जड़ से पत्तियों तक की जानकारी इक्ट्ठा कर सकते हैं।

ड्रोन का एक बेहतरीन इस्तेमाल पिछले दिनों महाराष्ट्र में देखने को मिला, जब सूखा राहत के लिए, सूखे का सर्वेक्षण कराने का काम राज्य सरकार ने ड्रोन्स के हवाले किया। ऐसा ही एक और अच्छा उदाहरण हरियाणा में देखने को मिला जब फसल क्षति के मूल्यांकन का काम ड्रोन्स की सहायता से किया गया।

ड्रोन की आवश्यकता

कृषि कार्य करनें वाले कुशल व्यक्ति एवं मजदूरों की कमी व समय पर कार्य खत्म करने का बोझ, सटीकता एवं सुरक्षित तरीके से काम करने की चाहत, इन सब परेशानियों के लिए ड्रोन तकनीक वरदान बनकर किसानों के सामने प्रस्तुत हुई है। इस तकनीक ने कृषि के लगभग सभी क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति शानदार तरीके से दर्ज कराई है।

वर्तमान समय में यह कहना भी गलत होगा की यह तकनीक पूर्ण रूप से स्थाई हो चुकी है क्योंकि अभी भी इसमें बहुत सी कमियां मौजूद है जैसे इसकी वजन उठाने की क्षमता और लघु किसानों के लिए कीमत की समस्या आदि अस्थायी रूप से है,

लेकिन हम यह उम्मीद करते हैं कि समय के साथ इन सब कमियों का भी समाधान हो जाएगा।

खेती किसानी की ओर बढ़ते युवाओं के रूझान ने इस क्षेत्र में टेक्नालॉजी के उपयोग को काफी हद तक बढ़ाया है। साथ ही फसलों की गुणवत्ता के साथ–साथ उत्पादन की मात्रा भी बढ़ी है। चारूसत गुजरात स्थित चरोतर यूनिवर्सिटी ऑफ साइंस एण्ड टेक्नालॉजी से बी. ई. करने वाले दो इंजीनियर्स देवांश आचार्य और श्रेय दलवाड़ी ने खेतों में इस्तेमाल के लिए ऐसे ड्रोन तैयार किए है, जो कि खेत में कीटनाशक छिड़काव, पानी की आवश्यकता नापने, पौधों की वृद्धि नापने जैसे काम करने में सक्षम है। यह ड्रोन पहले से निर्धारित किये हुए रास्ते पर उड़ सकता है। इन दोनों इंजीनियर्स ने ड्रोन में नियर इन्फ्रारेड सेंसर्स और मल्टी–स्पेक्ट्रल कैमरा का इस्तेमाल किया है, जिससे हाई क्वालिटी पिक्चर्स और डेटा कलेक्ट किया जा सकता है। फसल को खाद या पानी कब और कितनी जरूरत है। इससे उनका काम काफी आसान हो गया है।

मशीन लर्निंग और इमेजिंग के जरिए खेती का रखा जाएगा ध्यान

इस बारे में देवांश कहते हैं, 'हमें इस बारे में उस वक्त समझ आया, जब हमने किसानों से बात की और उनकी समस्याओं को समझा। हमने ऐसी टेक्नालॉजी विकसित करने का फैसला किया, जो मशीन लर्निंग और इमेजिंग पर काम कर सके। इसके लिए हमने एक नया सॉफ्टवेयर भी तैयार किया।'

ड्रोन से ली जाती है हाई क्वॉलिटी पिक्चर्स

इस बारे में इस टीम के लोग बताते है, 'एक बार खेत का चयन करने के बाद ड्रोन को सात स्कैनिंग के लिए प्रोग्राम किया जाता हैं। ये सात पैरामीटर्स हैं – कॉन्टूर मैप, ऑर्थोमोजैक, ऊंचाई, डिजिटल टेरेन, 3–डी मॉडल, ज्योमैट्रिक मैप और वेजेटेशन। कैमरे की मदद से यह ड्रोन हाई क्वालिटी पिक्चर्स लेता है, जिससे फसल के स्वास्थ्य और खाद–पानी की जरूरत को मापा जा सकता है।'

ड्रोन द्वारा स्प्रे

ड्रोन द्वारा एक एकड़ में 16 लीटर पेस्टीसाइड का छिड़काव 8 मिनट में कर सकता हैं। ड्रोन किसान को श्रमिकों

द्वारा करवाए गए कार्य से काफी किफायती होने के साथ ही मिट्टी की उर्वराशक्ति, न्यूट्रीसंस, मृदा गुणवत्ता के बारे में सटीक जानकारी उपलब्ध करा सकेगा। किसानों द्वारा मेनुअल पेस्टीसाइड का स्प्रे करने में स्वास्थ्य हानि होने के साथ खर्च भी अधिक आता हैं। ड्रोन स्प्रे करने से कम पेस्टीसाइड में अधिक क्षेत्र में स्प्रे होने से किसान को लाभ होगा। पश्चिमी राजस्थान, गुजरात एवं पंजाब में अक्सर टिड्डी दल के हमले से किसान बहुत परेशान रहते हैं। इसके रोकथाम के लिए ड्रोन का उपयोग किया गया, ड्रोन के द्वारा टिड्डियों को भगाने एवं स्प्रे करके किसानों की फसल को नुकसान होने से बचाया गया। ड्रोन के इस प्रदर्शन से खेती में इसकी उपयोगिता कारगर सिद्ध हुई। ड्रोन से केवल भू–भाग पर ही नही बल्कि फलदार पेड़ पौधों पर भी कीटनाशकों का छिड़काव करने में आसानी होगी।

बदल रही परिस्थितियों को देखते हुए कृषि में ड्रोन का उपयोग खेती कों स्मार्ट बनाने के साथ किसानों की आय को बढ़ाने वाला कदम साबित हो सकता है। इसके अलावा अनुसंधान क्षेत्र में भी इसकी उपयोगिता से नये आयाम सामने आने की संभावना हैं। ड्रोन आने वाले समय में खेती में क्रांति ला सकता हैं क्योंकि यह कृषि उत्पादन की कुल लागत को कम करता हैं और उच्च गुणवत्ता एवं फसल उत्पादन में वृद्धि लाने में कारगर हो सकता है। किसानों के लिए कीटों से समय पर सुरक्षा के उपाय करने में ड्रोन मददगार साबित होता हैं। कृषि उद्योग अब फसल की उपज और मुनाफे को बढ़ाने में उनकी दक्षता के कारण ड्रोन के उपयोग और फायदे को पहचान रहा है।

इज्जत वाली एक भाषा, हिन्दी में मिलती यह आशा।

इनोवेशन (नवाचार) : आज की आवश्यकता

जया सिंह एवं मुकेश कुमार मीणा
भा.कृ.अनु.प.-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

इनोवेशन (नवाचार) आज की आवश्यकता है, नए ज्ञान के प्रयोग से ग्राहकी की अपेक्षानुसार नया उत्पाद या सेवा तैयार करना इनोवेशन (नवाचार) कहलाता हैं। इसमें व्यावसायिक उपयोग या व्यावसायिक सफलता का समावेश अनिवार्य होता हैं वही नया तरीका नवाचार कहलाता है, जो व्यावसायिक रूप से सफल हो सकता हो अर्थात ग्राहकों की आवश्यकताओं को बेहतर तरीके से पूरा कर सकता है।

आज के वैश्वीकरण के युग में जब बाजार ग्राहक की ओर–उन्मुख है, नवाचार हर कंपनी के लिए प्रतिस्पर्धा में बने रहने के लिए अनिवार्य चीज हो चुकी हैं पर इसमें विविधता देखने को मिलती हैं या आविष्कार की तुलना में अधिक व्यापक हैं। इसके लिए ज्ञान का स्त्रोत तकनीकी क्षेत्र से भी आता है और अन्य क्षेत्रों से भी तकनीकी क्षेत्र से निम्नलिखित के बारे में नया ज्ञान आता है :

1. उत्पाद के अवयवों के बारे में;
2. अवयवों को तैयार करने के तरीकों के संबंध में;
3. उत्पाद तैयार करने की प्रक्रिया के बारे में;
4. उत्पादन की तकनीकी के बारे में।

नवाचार प्रक्रिया में केवल तकनीकी क्षेत्र से ही नहीं वरन अन्य क्षेत्रों से प्राप्त ज्ञान का भी बखूबी उपयोग किया जा सकता है। बाजार से भी नया ज्ञान आता है और उसके उपयोग से भी सारी सफलता प्राप्त की जा सकती है। सफलता के चंद स्त्रोत निम्न क्षेत्रों में हो सकते हैं :

1. वितरण चैनलों में सुधार;
2. उत्पाद के उपयोग की प्रक्रिया में सुधार;
3. ग्राहकों की अपेक्षाओं से प्राप्त फीडबैक का उपयोग;
4. ग्राहक से चर्चा द्वारा ग्राहक की अपेक्षाओं में परिवर्तन;
5. तीनों की आम पसंद, आवश्यकताओं, इच्छाओं के संबंध में चर्चा, अपनी राय के बारे में प्रचार, अभियान आदि के द्वारा।

आज ग्राहक की आम अपेक्षाएँ इस प्रकार हैं

1. कीमत कम से कम हो;
2. इसके गुणों में ज्यादा से ज्यादा सुधार हो;
3. नए गुण ऐसे हो जो पहले कभी नहीं देखे गए।

उपरोक्त कारणों से आज न केवल इंजीनियरिंग क्षेत्र में वरन हर प्रकार के उत्पाद क्षेत्रों, यहाँ तक कि सेवा क्षेत्र में भी नवाचार अनिवार्य बन गया है। छोटे बड़े स्टोरों से लेकर दूर दराज के गांवों तक जाने वाली कूरियर सेवाएँ भी इससे अछूती नहीं रही हैं।

नए विचारों की आवश्यकता बढ़ी

नवाचार के संबंध में अब तक चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि आज नए विचारों की आवश्यकता पहले की तुलना में बहुत ज्यादा हो गई है। इसके लिए नए विचारों को उत्पन्न करने वालों को भी बढावा दिया जा रहा है और उपलब्ध नए विचारों को सीधे अपने पक्ष में अपनाने या अपने अनुकूल बनाकर फिर अपनाने का चलन भी जोरों पर है। पर यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि नवाचार के लिए वे ही नए विचार महत्वपूर्ण हैं, जिनकी व्यावसायिक सफलता की संभावना हो। आविष्कार के क्षेत्र में प्रोटोटाइप स्तर तक की सफलता भी महत्वपूर्ण होती है। पर नवाचार तभी सफल होता है जब किये गए निवेश का परिणाम बढ़ता है।

प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार द्वारा नवाचार

एक ओर कंपनियाँ नए विचारो के आधार पर परिष्कृत उत्पाद, सेवाएँ प्रक्रियाएँ या नया उत्पाद तैयार कर रही हैं। वहीं वे अपने संगठनो की संरचना में सुधार, प्रशासनिक प्रक्रिया

में सुधार द्वारा नवाचार को बढावा दे रही हैं। इससे तकनीकी नवाचार भी प्रकाशित हो सकता है और बाजार के बारे में समझ एवं विकास में भी सुधार होता है। इसके अतिरिक्त संगठन के उत्पादन या सेवा परिचालन में नए अवयवों का समावेश भी इसी के माध्यम से किया जाता है। उदाहरण के तौर पर इनपुट पदार्थों, कार्य के स्पेसिफिकेशनों, कार्य के प्रवाह, सूचनाओं के प्रवाह की प्रक्रिया में भी सुधार होता है। उत्पाद तैयार करने के लिए उपकरणों, नई मशीनरी आदि के बारे में भी नई सोच विकसित होती है।

फर्म छोटी हो या बड़ी

उत्पादन करने वाली फर्म छोटी हो या बडीं आजकल सभी इनोवेशन की प्रक्रिया में सहभागी है। बड़ी फर्मों के पास अधिक उत्पादन क्षमता होती हैं तथा अन्य संसाधन भी अधिक होते हैं और इस कारण उनके लिए आविष्कार का व्यवसायीकरण सरल हो जाता है। इन कंपनियों के पास अनुसंधान व विकास की क्षमता होती है तथा अघिक पूँजी व जोखिम उठाने की शक्ति भी होती है। बाजार पर उनका अपेक्षाकृत अधिक एकाधिकार होता है तथा उनके कार्यों, नवाचारों को नकल नहीं कर पाते हैं।

दूसरी ओर छोटी फर्में भी इस मामले मे अधिक पीछे नहीं है। जो पहले से व्यवसाय के क्षेत्र में है तथा जो व्यवसाय के क्षेत्र में पहली बार उतर रही हैं सभी इस प्रक्रिया में बढ़–चढ़कर भाग ले रही हैं।

नवाचार में भी विविधता

यदि मोटे तौर पर वर्गीकरण किया जाये तो दो प्रकार के नवाचार देखने को मिलते हैं पहले प्रकार के नवाचार इन्क्रीमेंटल प्रकार के होते हैं जिनमें नव उत्पन्न ज्ञान वर्तमान ज्ञान से थोड़ा ही भिन्न होता है और इस कारण तैयार उत्पाद या सेवा वर्तमान उत्पाद या सेवा से गुणवत्ता में थोड़ा ही भिन्न होता है।

दूसरे प्रकार का नवाचार ऐसा ज्ञान उत्पन्न होने पर प्रयोग होता है जो वर्तमान ज्ञान से काफी भिन्न होता है और इस प्रक्रिया में एक दम नई सेवा या उत्पाद तैयार होता है। कई बार उत्पाद का स्वरूप व गुणवत्ता बिल्कुल बदल जाते है। इस प्रकार का नवाचार रेडिकल कहलाता है। इस प्रक्रिया में वर्तमान उत्पाद बिल्कुल निरर्थक हो जाते है। उदाहरण के तौर पर इलैक्ट्रॉनिक कैल्कुलेटर्स के आने के बाद पुराने यांत्रिक विद्युत यांत्रिक कैल्कुलेटर निरर्थक हो गए थे। जबकि इन्क्रीमेंटल नवाचार के मामले में वर्तमान उत्पाद भी बाजार में बने रहते है।

इनोवेशन (नवाचार) के कारण उत्पन्न आर्थिक तथा संगठनात्मक सुधार नवाचार के कारण जो उत्पाद तैयार होते हैं, उनमें निम्नलिखित गुण होते हैं:

1. कम कीमत (लागत);
2. पुराने उत्पाद के गुणों में वृद्धि;
3. नए गुणों का समावेश।

उपरोक्त आर्थिक लाभों से संगठन की प्रतिस्पर्धा शक्ति बढती है। उसकी कार्य क्षमता व अनुसंधान क्षमता भी बढती हैं इसके निम्नलिखित प्रभाव होते हैं:

1. नया तकनीकी ज्ञान उत्पन्न होता है,
2. नया बाजार संबंधी ज्ञान उत्पन्न होता है।

उपरोक्त प्रभावों से फर्म और नए उत्पाद तैयार करती है और वर्तमान उत्पादों में सुधार करती है, जिससे फर्म की क्षमता और बढ़ती है तथा उसके ज्ञान वर्द्धन की प्रक्रिया जारी रहती है, जिससे नवाचार का चक्र आगे बढता रहता है।

निवेश के लिए आगे प्रोत्साहन

नवाचार चाहे इन्क्रीमेंटल हो या रेडिकल, फर्म को आगे निवेश के लिए प्रोत्साहन प्रदान करता है। कभी कभार फर्म उलझन में पड़ सकती है क्योंकि एकदम से नया उत्पाद वर्तमान उत्पाद के स्टॉक के आगे प्रवाह में बाधक बन सकता है, जिससे वर्तमान स्टॉक खाली होने में समय लग सकता है। ऐसे में नए उत्पाद को देरी से उतारा जाता है। बाजार में उतरने वाली नई फर्म के मामले में इस प्रकार की कोई समस्या नहीं होती।

यही कारण है कि बाजार में उतरने वाले नए लोग (फर्म) रेडिकल नवाचार का सहारा लेते है क्योकि उसे उन्हें स्थापित होने में सहारा मिलता है। दूसरी ओर पहले से व्यवसाय कर रहे लोग इन्क्रीमेंटल नवाचार पर अधिक विश्वास करते हैं। इसका एक कारण यह है कि अपना स्वभाव, दिनचर्या, प्रक्रिया आदि एक दम से बदलना कठिन होता है। पहले से चले आ रहे तंत्र का निरर्थक हो जाना भी आसानी से हजम नहीं होता है।

हालांकि अनेक मामलों में अपवाद भी देखे गए है। अनेक कंपनियो न जोखिम उठाकर भी नए ज्ञान का उपयोग करके बिल्कुल नए उत्पाद उतारे हैं। इस प्रक्रिया में उनकी बाजार में स्थिति भी प्रभावित हुई है।

नवाचार को अपनाना

जैसा कि हम देख चुके हैं कि आज के ज्ञान के युग में नया ज्ञान इस कदर महत्वपूर्ण हो चुका है कि कंपनियाँ न केवल इसे उत्पन्न करने के लिए तरह तरह के उपाय कर रही है। वरन दूसरी जगह पर उपलब्ध ज्ञान को अपनाने के लिए भी भरपूर उपाय कर रही हैं। ये उपाय इस प्रकार हैं:

1. कंपनियों द्वारा परिसर में विकास,
2. दूसरे स्थानों जैस विश्वविद्यालयों या अनुसंधान संगठनों में स्थित ज्ञान को ग्रहण करना,

3. लाइसेंस के तहत किसी अन्य कंपनी द्वारा विकसित ज्ञान का उपयोग,
4. अपनी शक्ति के आधार पर नए ज्ञान के लिए उपक्रम स्थापित करना,
5. किसी अन्य कंपनी के साथ मिलकर नए ज्ञान के लिए संयुक्त उपक्रम स्थापित करना या ज्ञान प्राप्ति के लिए किसी अन्य संगठन के साथ गठजोड़ करना,
6. कोई व्यक्ति यदि अनुसंधान कार्यक्रम चला रहा है तो उसमें पूँजी निवेश करना, उसमें अनेक प्रकार के बढ़ावा देना,
7. सीखने के लिए या शिक्षा के तौर पर ज्ञान प्राप्त करना ताकि आधुनिकतम बना जा सके।

उपरोक्त प्रक्रियाओं में एक या अधिक का चयन इस आधार पर किया जाता है कि व्यक्ति तकनीक या बाजार से कितना परिचित या अपरिचित है। यदि कंपनी तकनीक व बाजार से परिचित हो तो वह इन्क्रीमेंटल नवाचार के लिए प्रयास कर सकती है और यह कार्य कंपनी परिसर में ही किया जा सकता है। पर यदि तकनीक व बाजार दोनों नए हों तो बेहतर है कि किसी और अनुसंधानकर्ता के प्रायोजन में पूँजी लगाई जाये या शैक्षिक संस्थानों का सहारा लिया जाये। नवाचार जितना अधिक रेडिकल (क्रांतिकारी) होगा, बाहरी सहायता की आवश्यकता उतनी ही अधिक होगी।

नये ज्ञान की गुणवत्ता व परिमाण

नवाचार तभी संभव व प्रभावी होता है जब नए ज्ञान की गुणवत्ता उच्च हो तथा वह नवाचार के लिए पर्याप्त मात्रा में हो, तथा वह इस बात पर भी निर्भर करता है कि आवश्यकता कितनी है, इसके लिए यह, विश्लेषण आवश्यक है। विभिन्न क्षेत्रों का ज्ञान की दृष्टि से वर्गीकरण किया जाये। कुछ क्षेत्र जैसे कोयला, भारी रसायन आदि प्राकृतिक संसाधनों पर अधिक निर्भर करते हैं और उनमें तकनीक या ज्ञान की आवश्यकता कम होती है।

दूसरी ओर वायुयान उद्योग, दवा उद्योग, कम्प्यूटर, साफ्टवेयर, दूरसंचार, मिसाईल, जैव प्रौद्योगिकी, स्वचालन आदि प्राकृतिक संसाधनों पर कम और प्रौद्योगिकी पर बहुत अधिक निर्भर करते है। इन्हें उच्च प्रौद्योगिकी वाले उत्पाद भी कहा जाता है। जटिल होने के कारण इनका विकास कठिन होता है, तथा निर्माण और आगे बेचने की प्रक्रिया भी जटिल होती है, पर इनकी सफल बिक्री आकर्षक परिणाम देती है।

पर यह भी सत्य है कि इनके विकास में भारी निवेश की आवश्यकता होती है। और प्रति इकाई बिक्री में निवेश के अनुसार परिणाम कम होता है। उदाहरण के तौर पर किसी नई दवा के विकास व बाजार में उतरने की लागत 50 करोड़ डॉलर तक होती है, पर पहले दौर में जो दवा की बोतलें, बाजार में लायी जाती हैं, उसमें प्रति भी मुनाफा 0.10 डॉलर ही हो पाता है, इसी तरह नई उपयोगी सॉफ्टवेयर के विकास के लिए कई करोड़ डॉलर लग सकते है। और पहली सी.डी. चंद डॉलरों में ही बिक पाती है।

नेटवर्किंग की भूमिका

अन्य क्षेत्रों की ही भांति इस क्षेत्र में भी नेटवर्किंग की अहम भूमिका होती है, ये नेटवर्क कई प्रकार के हो सकते हैं। जितने ज्यादा लोग इस ज्ञान आधारित उत्पादों का उपयोग करते हैं उत्पाद उतना ही अधिक मूल्यवान हो जाता है। उदाहरण के तौर पर यदि कोई कम्प्यूटर मॉडल अधिक उपयोग होता है, तो उस पर आधारित अधिक सॉफ्टवेयर पैकेज तैयार होते हैं, तथा उनका प्रयोग भी अधिक होता है। लोग इस क्षेत्र में अधिक निवेश कर पाते हैं, यह ध्यान देने योग्य बात है, कि जो प्रौद्योगिकी या नवाचार या ज्ञान प्रारंभ में आगे निकल जाता है उसका विश्वास अधिक विकसित हो जाता है, और वह अधिक प्रयोग होता है। समय के साथ वह आगे बढ़ता ही चला जाता है, अतः फर्म को प्रारंभ में धैर्य रखना चाहिए, तथा निःशुल्क सेम्पल देने, गठजोड बनाने, प्रचार प्रसार करने में संकोच नहीं करना चाहिए।

ज्ञान का स्वरूप व मात्र

नवाचार के लिए आवश्यक ज्ञान में भारी विविधता देखने को मिलती है। साफ्टवेयर निर्माण, औषधीय उद्योग, विमानन उद्योग के लिए ज्ञान की आवश्यकता भिन्न भिन्न होती है। नया ज्ञान भी उनके रूप में उपलब्ध होता है। यह लिखित सामग्री में भी होता है, तथा चित्रों व नक्शों में भी। यह स्पष्ट मौखिक भाषा में भी होता है तथा कूटबद्ध भाषा में भी।

यह व्यक्तिगत अनुभव से भी प्राप्त होता है और स्वयं कार्य करके सीखा जाता है। अनेक मामलों में यह व्यक्ति के व्यवहार में भी छुपा होता है। और संगठन के रोजमर्रा के कार्यो में भी दबा होता है। दूसरी ओर जिन उत्पादों का बड़े पैमाने पर उत्पादन होता है, उनमें ज्ञान की आवश्यक्ता अपेक्षाकृत कम होती है। ज्ञान आधारित उत्पादों में ज्ञान की भारी मांग होती है।

ज्ञान की सुरक्षा

ज्ञान प्राप्त करना जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक है उसकी सुरक्षा करना। ज्ञान के आधार पर इनोवेशन करने वाले को अपने ज्ञान की सुरक्षा बहुत मजबूती के साथ करनी होती है और तभी वह बाजार में लंबे समय तक टिक पाता है। और प्रतिस्पर्धा के क्षेत्र में उसकी शक्ति अपेक्षाकृत अधिक होती है। इसके लिए पेंटेंट, कॉपी राईट, औद्योगिक ट्रेडमार्क, भौगोलिक क्षेत्र संबंधी सुरक्षा आदि ऐसे उपाय है, जिनका उपयोग आज बहुतायत में किया जा रहा है।

अनेक कंपनियाँ इसके लिए विशेष उपाय करती है। यथा कोका कोला, पेप्सी कोला आदि ने अपने ज्ञान को अद्‌भुत तरीके से दशकों से सुरक्षित रखा है।

स्थानीय परिवेश

नवाचार की प्रक्रिया को स्थानीय परिवेश भी प्रभावित करता है। कुछ स्थानों या देशों में परिस्थितियां ऐसी होती है, कि नवाचार अनिवार्य हो जाता है। और इसकी अनुपस्थिति में अस्तित्व भी खतरे में पड़ जाता है। उदाहरण के तौर पर संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेन में औषधीय निर्माण के क्षेत्र में सुरक्षा व प्रभाव के मामलों में कड़े नियम है। इस कारण इन देशों में कंपनियाँ नवाचार में बहुत आगे है। दूसरी ओर फ्रांस में इतने कड़े नियम ना होने के कारण कंपनियाँ पीछे है।

नवाचार को प्रभावित करने वाले अन्य कारक है:

1. मांग की स्थिति;
2. संबंधित तथा सहायक औद्योगिक की स्थिति;
3. फर्म की रणनीति।

नवाचार की सहायता करने वाले कारक इस प्रकार है:

1. प्राकृतिक संसाधन;
2. प्रवीणता युक्त कामगार;
3. पूंजी;
4. शिक्षण संस्थान;
5. अनुसंधान प्रयोगशालायें।

उपरोक्त सभी वैज्ञानिक, प्रौद्योगिकीय तथा बाजार संबंधित ज्ञान देते है, और ये हर देश में अलग–अलग स्वरूप में होते है। उदाहरण के तौर पर यदि स्थानीय मांग की स्थिति अच्छी हो तो स्थानयी फर्म में नवाचार के क्षेत्र में अधिक प्रयास करती है तथा उनके उत्पाद में स्थानीय झलक अलग मिलती है। अनेक कंपनियाँ इस उद्‌देश्य से अपने ग्राहकों से अधिक संपर्क करती है। यदि ग्राहक स्थानीय होगा तो यह संपर्क ज्यादा से ज्यादा होगा और सस्ता व निरापद होगा। स्थानीय ग्राहकों की इच्छायें एवं अपेक्षाऐं जितनी अधिक होंगी। तैयार उत्पाद की प्रतिस्पर्धा शक्ति उतनी ही अधिक होगी। वह दूर –दूर तक सफल होगा। उसमें बाद में शिकायतें कम से कम आयेंगी, और ब्रिक्री के बाद मरम्मत व रखरखाव का खर्च न्यूनतम होगा, इससे सफलता की संभावना बहुत बढ़ जायेंगी। इनके उद्योगों में पुर्जों व सबअसेंबलियों के निर्माता अंतिम उत्पाद की गुणवता में अमूल्य योगदान करते हैं इस कारण इन उद्योगों में अपूर्तिकर्ताओं से विभिन्न स्तरों पर सतत् संवाद चलता रहता है कई बार एक पूर्जे या सबअसेंबली में बदलाव से ही अंतिम उत्पाद की दक्षता में भारी बदलाव आ जाता है एवं कई बार स्थानीय स्पर्घा भी फर्म को नवाचार के लिए प्रेरित व बाध्य करती है। एक दूसरे से आगे निकलने की होड़ में सभी आगे बढ़ते हैं अनेक बार अस्तित्व बचाने के लिए भी नवाचार किया जाता है और कड़ी मेहनत श्रेष्ठ प्रतिस्पर्धीय बना देती है। सरकारी नीतियाँ भी नवाचार की प्रक्रिया को बढ़ावा देती हैं इनके देशों में सरकारें अनुसंधान हेतु अनुदान इस प्रकार से देती है कि उससे नये व बेहतर उत्पाद तैयार हो। इस प्रकार निजी क्षेत्र में भी नवाचार हेतु अनुंसधान के लिए आगे बढ़ने व निवेश करने की प्रवृति पनपती है।

सही रणनीति की आवश्यकता :

यह हर कंपनी के लिए अनिवार्य है कि वह अपना लक्ष्य, अपने समय, अपने कार्य इस तरह करें और अपने संसाधनों को इस प्रकार लगायें कि नये ज्ञान का आधिकारिक उपयोग नये व बेहतर उत्पादों के विकास में हों। सही विकल्पों का शीघ्र उपयोग कंपनी में उचित प्रतिस्पर्धा शक्ति व पूरक संपदा उत्पन्न करता है। आजकल रणनीतियों के मामले में भी विकल्प उपलब्ध है। उदाहरण के लिए :

1. आक्रमण रणनीति;
2. सुरक्षात्मक रणनीति;
3. नकल करने की रणनीति;
4. निर्भर करने की रणनीति;
5. परंपरागत रणनीति;
6. अवसरवादी रणनीति।

आक्रमण रणनीति अपनाने वाला स्वयं अपने आंकलन के अनुसार नया उत्पाद विकसित करता है। और इसके लिए निवेश भी करता है। इस क्रम में उसके पास पर्याप्त क्षमता विकसित हो जाती है ऐसी कंपनियाँ शीघ्र ही राष्ट्रीय स्तर या अंतराष्ट्रीय स्तर की श्रेष्ठ कंपनी हो जाती है। सुरक्षात्मक रणनीति अपनाने वाली कंपनियाँ पहले प्रतिस्पर्धी को नया उत्पाद उतारने देती है और यह देखती है कि इस संबंध में जो अनिश्चित्ताऐं है उनका निराकरण वह किस प्रकार करता है। इस प्रक्रिया के दौरान वह उत्पाद तैयार कर लेती है। और उन कमियों को दूर कर लेती है जो पहले करने वाली कंपनी के उत्पाद या सेवा में रह जाती है। आई.बी.एम. कंपनी ने एप्पल को पहले पर्सनल कम्प्यूटर उतारने दिया इससे उसे आभास हो गया कि इस उत्पाद का बहुत बड़ा बाजार है। उसके बाद वह आगे बढ़ी सुरक्षात्मक रणनीति अपनाने वाली कंपनी भी हर प्रकार से सशक्त होती है। कुछ कंपनियाँ रणनीति के अंतर्गत अपने परंपरागत उत्पाद तैयार करती हैं, ये आवश्यकता अनुसार न्यूनतम परिवर्तन ही करती हैं पर अपने उत्पाद की कीमत न्यूनतम बनाये रखने का प्रयास करती है। अवसरवादी कंपनियाँ बाजार पर कड़ी नजर रखती हैं ये जब पाती हैं कि बाजार में कोई मांग उत्पन्न हो रही है, और अवसर अच्छा है तो अपना उत्पाद उतार देती हैं।

डिजिटल एग्रीकल्चर : तकनीक से आसान हो रही किसानों की जिंदगी

अभय त्रिपाठी
भा.कृ.अनु.प.–खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

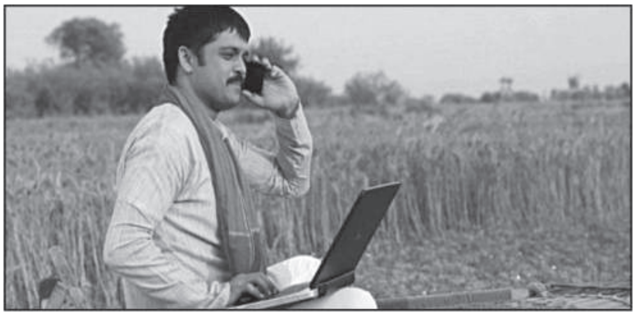

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने ग्रामीण समुदाय के सशक्तीकरण के लिए व गाँवों में डिजिटल इंफ्रास्ट्रक्चर बनाने के लिए 1 जुलाई, 2015 को डिजिटल इंडिया का शुभारंभ किया था। उनके इस प्रयास ने पूरे देश में सेवाओं की डिजिटल डिलीवरी को सक्षम किया और डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा दिया। देश की 68 प्रतिशत आबादी गाँवों में रहती है और कृषि हमारे देश की जनसंख्या का 58 फीसदी आजीविका का मुख्य स्रोत है, इसलिए भारत में डिजिटल कृषि की भूमिका पर ध्यान देना बहुत ज़रूरी है। सुरक्षित, पौष्टिक और किफायती भोजन उपलब्ध कराने के साथ ही खेती को सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय रूप से लाभदायक और टिकाऊ बनाने के लिए सूचना प्रौद्योगिकी यानि आईटी का इस्तेमाल करना ही डिजिटल कृषि कहलाता है।

फिलहाल पूरे विश्व के सामने एक बड़ी समस्या है और वह है खाद्य सुरक्षा यानि दुनिया के हर व्यक्ति को आहार मुहैया कराना। कुछ साल पहले तक किसान पुराने पारंपरिक तरीकों से खेती करते रहते थे। उनके पास इतने साधन और सुविधाएं नहीं थीं कि वे खेती में नए प्रयोग कर पाएं या खेती में होने वाली समस्याओं से निपट पाएं लेकिन पिछले कुछ समय में जिस तरह किसान डिजिटली सक्षम हुए हैं, उससे कृषि क्षेत्र का काफी विकास हुआ है। हाल ही में एक नया टर्म डिजिटल एग्रीकल्चर चलन में आया है। डिजिटल एग्रीकल्चर यानि फसलों की पैदावार बढ़ाने और खेती को सक्षम व लाभदायक बनाने के लिए आधुनिक तकनीकों और सेवाओं का इस्तेमाल करना। किसान अब खेती से जुड़ी अपनी समस्याओं से निपटने, नई कृषि विधियां सीखने और दुनिया भर में हो रहे कृषि प्रयोगों के बारे में जानने के लिए फेसबुक, व्हॉट्सएप, यूट्यूब, सीडी जैसे साधनों से जुड़ रहे हैं। खेती को बेहतर बनाने में सूचना प्रोद्योगिकी से जुड़े ये प्लेटफॉर्म काफी काम आ रहे हैं। भारत में आज भी ज़्यादातर खेती मौसम के हालत पर टिकी है जिसमें ज्यादा जोखिम है, लेकिन किसान घर बैठे कृषि वैज्ञानिकों के बताए तरीकों से इन समस्यायों से निपट रहे हैं।

खेती में आईटी के क्या हैं फायदे

- फसलों को रोपने और बीजाई करने के बारे में नयी तकनीकों के बारे में जानकारी मुहैया कराना।
- एग्रो–क्लाइमेटिक यानी खेती के लिए अनुकूल मौसम आधारित अध्ययन के जरिए जरूरी सूचना देना।
- सभी फसलों के बारे में अलग–अलग तौर पर उनकी मांग और आपूर्ति की जानकारी देना, ताकि ज़्यादा मांग और कम आपूर्ति वाली फसलों के उत्पादन पर वे ज्यादा ज़ोर दे सकें।
- फसल से जुड़े, रोपण, बीज शोधन, कटाई आदि के बारे में जानकारी देना।
- किस मूल्य पर किस बाजार में फसलों को बेचा जाए, इस बारे में समुचित सूचना मिलती है।
- जिन किसानों को ठीक से पढ़ना नहीं आता वे भी वीडियो को देखकर और सुनकर खेती के बारे में जानकारी ले लेते हैं।
- किसानों के लिए कई ऐप्स हैं जिनसे खेती से जुड़ी हर जानकारी चुटकियों में मिल जाती है।
- समय व पैसों की बचत।

सोशल मीडिया का इस्तेमाल

पहले खेत में किसी फसल पर कोई रोग लग जाए तो बिना कृषि विशेषज्ञ को दिखाए उसके बारे में कोई जानकारी नहीं मिल पाती थी और जब तक कृषि सलाहकार खेतों का मुआयना करने पहुंचते थे तब तक उस फसल का समय ही बीत चुका होता था। कई बार तो छोटी सी बीमारी भी जानकारी के अभाव में पूरी फसल के बर्बाद होने का कारण बन जाती थी लेकिन अब किसानों की बहुत सी समस्यायें डिजिटल कृषि की सहायता से चुटकियों में हल हो जाती है।

सोशल मीडिया ने इसमें अहम भूमिका निभाई है। किसानों को खेती से जुड़ी कोई भी समस्या हो वे व्हाट्सऐप या फेसबुक पर बने ग्रुप में समस्या को बताकर उसका निदान पूछते हैं और फटाफट उसके जवाब मिलना शुरू हो जाते हैं। इन ग्रुप में कृषि वैज्ञानिक, कृषि सलाहकार आदि जुड़े रहते हैं। किसान ज़्यादातर जैविक खेती, फसल में लगने वाले रोग, जानवरों से

फसलों को बचाने के तरीके, खेती में उत्पादन, प्रसंस्करण, सरकार की योजनाएं, अनुदान जैसे मुद्दों पर चर्चा करते हैं।

सरकार ने आईटी के ज़रिए शुरू की कई योजनाएं

सरकार ने किसान कॉल सेंटर, ई–चौपाल, किसान चौपाल, ग्रामीण ज्ञान केंद्र, ई–कृषि, किसान क्रेडिट कार्ड जैसी कई योजनाओं की आईटी के ज़रिए शुरुआत की है।

किसान कॉल सेंन्टर

सरकार ने किसान कॉल सेंटर की शुरुआत ऐसे किसानों को ध्यान में रखकर की जो सूदूरवर्ती गाँव में रहते है और वहीं बैठे खेती से संबंधित जानकारी चाहते हैं जैसे कृषि उत्पादकता कैसे बढ़े, उन्नत खेती के तरीके और उससे लाभ कैसे मिले। किसान कॉल सेन्टर के माध्यम से मुफ्त फोन सेवा (18001801551) व मैसेज से जानकारी उपलब्ध कराई जाती है। जैसे किसानों की समस्याएं, मौसम से संबंधित जानकारी स्थानीय भाषा में नियमित रूप से दी जाती है।

ई–चौपाल

ई–चौपाल को किसानों को दलालों और बिचैलियों से बचाने के लिए शुरू किया गया इसमें कृषि संयत्र, मौसम, फसल, कृषि उत्पादों की खरीद ब्रिकी, इंटरनेंट के ज़रिए किसानों को सीधे जोड़ा जाता है और उससे संबंधित सूचना दी जाती है। ई–चौपाल से किसान अपनी उपज ऑनलाइन मंडी के द्वारा उच्च लागत से बेचते है जिससे उनको शुद्ध मुनाफा मिलता है आई.सी.टी. द्वारा किसानों को उनके उत्पादों की गुणवता में सुधार करने में मदद करता है। ई–चौपाल सेवा शुरू होने के बाद से किसानों के उत्पादन की गुणवता तथा पैदावार में वृद्धि सुधार की वजह से उनके आय के स्तर में वृद्धि और लेन देन प्रक्रिया में सुधा हुआ है।

किसान चौपाल

किसान चौपाल को कृषि विज्ञान केन्द्र (के.पी.के.) चलाता है। कृषि वैज्ञानिक किसानों की जरूरत को आंकलन के आधार पर किसान चौपाल गाँव में आयोजित की जाती है। किसान चौपाल में किसानों के खेती, फसल उत्पादन, पशुपालन एवं इससे संबधित समस्याओं को सुना जाता है और वीडियो, पावर प्वाइंट प्रजेंटेशन एवं ऑडियो के ज़रिए सुलझाया जाता है।

ग्रामीण ज्ञान केन्द्र

ग्रामीण ज्ञान केन्द्र, कृषि क्षेत्र में उपलब्ध जानकारी को किसान तक पहुंचाने, फसल उत्पादन से विपणन के लिए शुरू कर सूचना के प्रसार केन्द्र के रूप में कार्य करता है। जिसके माध्यम से कृषि, बागवानी, मत्स्य, पशुधन, जल संसाधन, टेली स्वास्थ, जागरूकता कार्यक्रम, महिला सशक्तिकरण, कंप्यूटर शिक्षा तथा आजीविका सहायता के लिए कौशल विकास/ व्यवसायिक प्रशिक्षण दिया जाता है।

किसान क्रेडिट कार्ड

यह योजना भारत सरकार, रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) ने शुरू की है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य किसानों को समय पर ऋण उपलब्ध कराना है। ऐसे किसान जिन्हें बार–बार कर्ज़ के लिए बैंकों के पास जाना पड़ता एवं बार–बार बैंकिग प्रक्रिया से गुजरना पड़ता था जिससे किसानों को जरूरत के समय कर्ज़ नहीं मिल पाता था। किसान क्रेडिट कार्ड से ऋण किसानों को समय से मिल जाता है और खेती में नुकसान होने पर रकम अदायगी के लिए अवधि में आसानी से बदला जा सकता है, जिससे किसानों को अधिक परेशानी भी नहीं होती है और अतिरिक्त बोझ भी नही पड़ता है।

जीवन के छोटे से छोटे क्षेत्र में हिन्दी अपना दायित्व निभाने में समर्थ है।

– पुरुषोत्तमदास टंडन

कोरोना वायरस से बचाव हेतु निदेशालय में विकसित स्मार्ट हैण्ड सैनेटाईजर डिस्पेंसर मशीन

चेतन सी.आर., जी. आर. डोंगरे, ए. के. चतुर्वेदी, संदीप पटेल, दिबाकर घोष एवं सुभाष चन्द्र

भा.कृ.अनु.प.–खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

इक्कीसवीं सदी के आरंभ में एक विनाशकारी वायरस जिसे कोविड–19 (कोरोना वायरस) नाम दिया जो सर्वप्रथम चीन के वुहान शहर से आया जिसने देखते ही देखते कुछ ही महीनों में पूरी दुनिया में अपने पैर पसार लिए, जिससे भारत भी अछूता नहीं रह सका। अब तक यह लगभग पूरी दुनिया में फैल चुका है। जब कोरोना वायरस से संक्रमित व्यक्ति खांसता या छींकता है तो उसके थूक के बेहद बारीक कण हवा में फैलते हैं। इन कणों में कोरोना के विषाणु होते है संक्रमित व्यक्ति के नजदीक जाने पर ये विषाणुयुक्त कण श्वास के रास्ते मानव शरीर में प्रवेश कर सकते हैं, अगर हम किसी ऐसी जगह को छूते है जहां ये वायरस संयुक्त कण गिरे है और फिर उसके बाद उसी हाथ से अपनी आँख, नाक या मुँह को छूते हैं तो यह कण हमारे शरीर में पहुँच जाते हैं और शरीर में पहुँचने के बाद कोरोना वायरस फेफड़ों मे संक्रमण करता है। इस कारण सबसे पहले बुखार फिर सूखी खाँसी आती है, बाद में श्वास लेने में समस्या होती है। इस वायरस के कारण तापमान 37.8 डिग्री सेन्टीग्रेड से अधिक तक बढ़ सकता है जिस कारण व्यक्ति का शरीर गर्म हो सकता है और उसे ठण्डी एवं कपकपी महसूस हो सकती है जिसके कारण गले में खराश, सिरदर्द और डायरिया भी हो सकता हैं। हाल में आये एक ताजा शोध के अनुसार स्वाद एवं गंध महसूस ना होना भी कोरोना वायरस का लक्षण हो सकता है। इस वायरस के संक्रमण के लक्षण दिखने में औसतन पाँच दिन लगते है हालांकि विश्व स्वास्थ संगठन के अनुसार वायरस के शरीर में पहुँचने एवं लक्षण दिखने में 14 से 24 दिनों का समय भी लग सकता है। बीमारी के शुरूआती लक्षण सामान्य सर्दी एवं फ्लू जैसे होते है जिससे कोई भी आसानी से भ्रमित हो सकता हैं। अस्पताल में भर्ती होने की जरूरत तब होती है जब व्यक्ति को श्वास लेने में दिक्कत आनी शुरू हो जाये तब मरीज के फेफड़ो की जाँच कर डॉक्टर इस बात का पता लगाते हैं कि संक्रमण कितना बड़ा है एवं क्या मरीज को ऑक्सीजन या वेंटीलेटर की जरूरत है। इंटेंसिव केयर यूनिट (आई.सी.यू.) अस्पताल के खास वार्ड होते है जहाँ गंभीर रूप से बीमार मरीज को रखा जाता है जहाँ कोरोना वायरस के मरीज को मुँह पर ऑक्सीजन मास्क लगाकर या नाक से ट्यूब के जरिये ऑक्सीजन की पूर्ति की जाती है जो लोग गंभीर रूप से कोरोना वायरस से ग्रसित हैं उन्हें वेंटीलेटर पर रखा जाता है। यहाँ सीधे फेफड़ों तक ऑक्सीजन की अधिक सप्लाई पहुंचाई जाती है इसके लिए मरीज के मुँह में ट्यूब लगाया जाता है या फिर नाक एवं गले में चीरा लगाकर वहाँ से फेफड़ो में ऑक्सीजन दी जाती है। कोरोना वायरस का इलाज इस बात पर आधारित होता है कि मरीज के शरीर को श्वास लेने में मदद की जाये और शरीर की रोगप्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाया जाये ताकि व्यक्ति का शरीर खुद वायरस से लड़ने मे सक्षम हो जाये। कोरोना वायरस संक्रमण के कारण बूढ़े व्यक्तियों और पहले से ही श्वाँस की बीमारी से परेशान लोग, मधुमेह, हृदय रोगों जैसी बीमारी का सामना करने वाले लोग यदि इस वायरस से संक्रमित होते हैं तो उनकी स्थिति अधिक गंभीर हो सकती है।

कोरोना वाइरस के संक्रमण से बचने के कुछ उपाय

1. नियमित नाक, मुँह पर मास्क का प्रयोग किया जाये।
2. खांसते या छींकते समय टिशू का इस्तेमाल करें टिशू नहीं होने पर अपने बाजू का इस्तेमाल करें ।
3. अपने हाथों को कम से कम 20 सेकण्ड तक साबुन या हेण्डवॉश से अच्छी तरह से धोना चाहिए या अपने हाथों को सैनेटाईजर से नियमित रूप से सेनेटाईज करना चाहिए।
4. बिना हाथ धुले या सैनेटाईज किये बिना अपने चेहरे नाक, मुँह और आँखों को नहीं छूना चाहिए।
5. भीड़–भाड़ वाले इलाकों में जहाँ तक हो सके जाने से बचना चाहिए तथा सोशल डिस्टेंसिंग का पालन करना चाहिए।
6. अत्याधिक आवश्यकता होने पर ही घर से बाहर निकलें।

निदेशालय में विकसित स्मार्ट हैण्ड सैनेटाईजर मशीन

7. सरकारी गाइडलाइन के अनुसार आरोग्य सेतु एप को डाउनलोड करें जो कि कोरोना वाइरस से बचने में सहायक है।
8. कोरोना वाइरस के लक्षण दिखने पर सरकारी हेल्पलाइन नम्बर या सरकारी अस्पताल से संपर्क करना चाहिए।

कोरोना वायरस इस दुनिया में बहुत तेजी से अपने पैर पसार रहा है इसके बचाव हेतु सैनेटाईजर का इस्तेमाल कारगर साबित हो रहा है।

इसकी महत्वता को दृष्टिगत रखते हुए भा.कृ.अनु.प. –खरपतवार अनुसंधान निदेशालय ने इसे चुनौती के रूप में स्वीकार किया एवं एक ऐसी मशीन अपने वर्कशॉप में बनाई जिससे कोई भी व्यक्ति मशीन को बिना स्पर्श किए अपने हाथों को सैनेटाईज कर सकता है जो कि इस संस्थान की उपलब्धि है। जिसे स्मार्ट हैण्ड सैनेटाईजर नाम दिया गया है। यह मशीन स्थानीय सामग्री से बनायी गयी है जो आसानी से स्थानीय बाजार में उपलब्ध है जब किसी व्यक्ति के द्वारा इस मशीन में लगे सेंसर के सामने हाथ रखा जाता है। तब सैनेटाईजर बूंद–बूंद करके उसके हाथ में आ जाता है एवं हाथ अलग करने पर स्वतः ही सेंसर बंद हो जाता है। यह मशीन कोविड–19 वायरस से लड़ाई के लिए इस संस्थान को संक्रमण मुक्त रखने के लिए मील का पत्थर साबित होगी।

हिंदी एक जानदार भाषा है। वह जितनी बढ़ेगी देश का उतना ही नाम होगा।

–पंडित जवाहरलाल नेहरू

चलो मिलकर मुहिम चलायें,
आज ही से हिन्दी अपनाएं

भारत का आधार है हिंदी,
सबके सपने करती है साकार ये हिंदी

प्लास्टिक वेस्ट एक समस्या

अखिलेश पटेल, श्रृद्धा पटेल, संतोष कुमार एवं संदीप धगट
भा.कृ.अनु.प.-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय, जबलपुर (म.प्र.)

सर्वप्रथम मानव द्वारा वर्ष 1856 में प्लास्टिक का निमार्ण किया गया इस क्षेत्र में पॉलीमर सांइस एवं टेक्नोलॉजी द्वारा एक अद्भुत विकास की नीव रखी गई। प्लास्टिक की खोज अलेक्जेंडर पार्केस के द्वारा की गई। प्लास्टिक बहुत से असंतृप्त हाइड्रोकार्बन जैसे– ऐथिलीन, प्रोपेलीन आदि की बहुलीकरण की क्रिया से जो उच्च बहुलक का निमार्ण करते हैं उसे प्लास्टिक कहते हैं। प्लास्टिक दो प्रकार का होता है–

1. थर्मोप्लास्टिकः– वे प्लास्टिक जो गरम करने पर मुलायम हो जाते है एवं ठंडा करने पर कठोर हो जाते है इनकी रीसाइकलिंग की जा सकती है जैसे– पॉलीथीन, पॉलीविनायल क्लोराइड, नायलॉन ।

2. थर्मोसेटिंगः– ऐसे प्लास्टिक जिनको गर्म करने पर वह पिघलते नहीं है एवं ताप के प्रति दृढ़ होते हैं। जैसे–बैकेलाइट।

वर्तमान समय में प्लास्टिक का उपयोग चरम पर बना हुआ है, देखा जाए तो यह केवल मानव के लिए उपयोगी है बाकी अन्य जीवों के लिए अनुपयोगी है। प्लास्टिक की उपयोगिता गांव–गांव से लेकर शहर–शहर तक है। हमारे देश के राज्यों कि बात करें तो प्लास्टिक के उपयोग में प्रथम स्थान देश की राजधानी दिल्ली है। सी.पी.सी.बी. की रिपोर्ट 2019 के अनुसार देश में अनुमानित 9.205 टन प्रतिवर्ष प्लास्टिक कचरा निकलता है। जिसके भार का 60 प्रतिशत ही प्लास्टिक रिसायकिल किया जाता है एवं 40 प्रतिशत प्लास्टिक रिसायकिल नहीं हो पाता और वह भूमि, जल में पड़ा रहता है और वही प्रदूषण का कारण बनता जा रहा है। आसानी से उपलब्धता एवं सस्ता होने के कारण मानव जीवन में इसकी लोकप्रियता बढ़ गई है और मानव इसके उपयोग के बिना जीवन की कल्पना नहीं कर सकता। मानव द्वारा प्लास्टिक की उपयोगिता के आधार पर इसे दो भागों में बांटा गया है।

1. सिंगल यूज प्लास्टिक :– इस श्रेणी में ऐसे प्लास्टिक उत्पादों को शामिल किया गया है जिसका एक बार उपयोग करके पुनः उपयोग नहीं किया जा सकता एवं उपयोग के उपरात यह अपशिष्ट की श्रेणी में आता है। इसके अंतर्गत पॉलीबैग, पानी की बोतल, पेय पदार्थ की बोतल, पैकिंग प्लास्टिक जैसे– गुड्स, ट्रांसपोर्ट मटेरियल, कास्मेटिक, दवाओं की पैकिंग, चाय के कप, खाने की प्लेट डिस्पोजल इत्यादि को शामिल किया गया है।

2. मल्टीयूज प्लास्टिकः– इस श्रेणी के प्लास्टिक का एक बार उपयोग करके पुनः अन्य आकार देकर उपयोग में लाया जा सकता है इसके अंतर्गत निम्न श्रेणी के प्लास्टिक आते है।

- **किचन उत्पादः**– प्राचीन काल में किचन में मिट्टी के बर्तन, मध्यकाल में धातु के बर्तन एवं वर्तमान में प्लास्टिक ने जगह बना ली है। उदाहरण के रूप में बाल्टी, मग, प्लेट, चम्मच एवं बोतल आदि का उपयोग किया जा रहा है।

  अतः यह कहना उचित होगा कि किचन में मिट्टी व धातु से बने बर्तनों को प्लास्टिक बर्तनों ने प्रतिस्थापित कर दिया है।

- **इलेक्ट्रिकल एवं इलेक्ट्रानिक उत्पादः**– जैसे कि टी. वी., फ्रिज, पंखा, कम्प्यूटर, प्रिंटर, कूलर, वांशिग मशीन, केबल वॉयर एवं इलेक्ट्रिक स्विच आदि विद्युत उपकरणों में बहुतायत में प्लास्टिक का उपयोग किया जा रहा है।

- **पेयजलः**– पेयजल के लिए यू.पी.वी.सी., पी.वी.सी. व एस. डी.बी. से बने पाइप के माध्यम से जल की आपूर्ति की जाती है।

- **खिलौनेः**– वर्तमान समय में बच्चों के बनाये जाने वाले खिलौने अधिकतम प्लास्टिक से ही निर्मित किये जाते हैं।

निपटारण में समस्याः– मानव द्वारा निर्मित प्लास्टिक के कारण ही यह एक समस्या का रूप ले चुका है। जिसके निपटारण में निम्न समस्याएं उत्पन्न हो रही है।

1. नॉन बायोडिग्रेडेबलः– प्लास्टिक के उपयोग की सबसे बड़ी समस्या यह है कि सूक्ष्म–जीवों द्वारा अपघटित नहीं होता और 100 वर्ष तक पर्यावरण में बना रह सकता है।

2. नॉन सुटेबल फॉर इन्वायरमैन्ट :– प्लास्टिक का दहन करना पर्यावरण के लिए अनुकूल प्रक्रिया नही है। क्योंकि यदि 1 कि.ग्रा. प्लास्टिक को जलाया जाता है तो 3 कि.ग्रा. कार्बन डाई आक्साइड गैस निकलती है जो ग्लोबल वार्मिग को बढ़ाने की प्रमुख कारक गैस है।

3. लैंडकिलः– इसे लैंडकिल भी नहीं किया जा सकता, यदि किसी कारण से प्लास्टिक को लैंडकिल किया जाता है तो यह

100 वर्ष तक भी नष्ट नहीं होता बल्कि इससे निकलने वाले प्रदूषित पदार्थ भूजल को प्रदूषित करते हैं।

प्लास्टिक की अंधाधुंध उपयोगिता ने पर्यावरण के जैविक जगत हर क्षेत्र को प्रभावित किया है जिसका प्रभाव जैव मंडल व जलमंडल में मानव व अन्य जीवों पर देखा जा सकता है।

1. जैव मंडल पर प्रभावः— जैव मंडल अर्थात स्थलीय भूमि जहां पर प्लास्टिक को उपयोग के बाद फेंक दिया जाता है यह प्लास्टिक जानवरों के लिए बड़ी समस्या बना है। जिसे खा लेने के बाद इसका पाचन नहीं हो पाता एवं जानवरों को जीवन गंवाना पड़ जाता है। प्लास्टिक के निर्माण में उपयोग होने वाले रासायनिक पदार्थ मानव जीवन को भी प्रभावित कर रहे है।

2. जल मंडल पर प्रभावः— जैव मंडल में उपयोग किया गया प्लास्टिक अंततः वर्षा के दौरान नालियों से बहकर जल मंडल के सबसे बड़े भाग समुद्र में आता है जहां पर यह जलीय जीवों के जीवन चक्र (खाद्य श्रृंखला एवं खाद्य जाल) में सबसे बड़ा खतरा उत्पन्न कर रहा है।

चित्र : मानव ने प्रकृति को प्लास्टिक से ढंक दिया था, अब प्रकृति ने मानव को प्लास्टिक से ढंक दिया।

"राई का पहाड़ तो कहावतों में बनते देखा है,
वास्तव में कहीं देश में प्लास्टिक का पहाड़ न बन जाए।
आओ हम प्लास्टिक का उपयोग न करने के लिए दृढ़ संकल्पित रहें,
जिससे जल-थल पर जीवों का जीवन और पर्यावरण बच पाए।

कल हो ना हो

गणपत लाल चपलोत
19, महावीर नगर, सेक्टर 14, उदयपुर

जिंदगी हर पल जियो
हर पल सहज हो जियो
सोचो न आगे न पीछे
न जाने कल हो ना हो

रंगीनियां हर तरफ बटोर लो
हर पल सज संवर लो
आंखों में रहे उन्माद जीने का
न जाने कल हो ना हो

न उलझो उलझनों में
व्यर्थ चटपटी खबरों में
कोई पुकारे तो साथ हो लो
न जाने कल हो ना हो

हर तरफ बिखरीं हैं खुशियां
बटोर लो, फिर बांट दो
न उठाओ परदें चारों तरफ
न जाने कल हो ना हो

न करो महल सी बातें
न पीयो हर घाट का पानी
छोड़ दो नखरे सारे
न जाने कल हो ना हो

न जाने कितने जनम बीत गये
न जाने कितनी सदियां गुजर गई
वक्त नहीं फिर दोहराने का
न जाने कल हो ना हो

अच्छा लगे तो आगे बढ़ो
बुरा लगे तो छोड़ दो
रुको न एक पल भी कहीं
न जाने कल हो ना हो

उठा लो दुकान बेइमानियों की
मलिनता गटर में फैंक दो
न रुको न झुको पल भर भी
न जाने कल हो ना हो

ये खूबसूरत लम्हें, ये वादियां
हर तरफ स्वर्ग सा है नजारा
क्यों रुके हो अभी तक मयखानों में
न जाने कल हो ना हो

फैंक दो कंकड़ पत्थरों को
न करो इकट्ठा कूड़ा – करकट
उठा लो डायमंड, सजा लो घर
न जाने कल हो ना हो

छुआ न अभी तक फूलों को
केवल बटोरते रहे कांटे
विश्राम दो नासमझियों को
न जाने कल हो ना हो

लो उठो अब बहुत देर हो गई
रात की तीन पहर हो गई
जागो जरा उसे याद कर लो
न जाने कल हो ना हो

है भव्य भारत ही हमारी मातृभूमि हरी भरी। हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा और लिपि है नागरी।

– मैथिलीशरण गुप्त

कार्मिक सूची

(दिनांक – 30 जुलाई 2020)

डॉ. पी.के. सिंह, निदेशक

वैज्ञानिक वर्ग

1. डॉ. सुशील कुमार, प्रधान वैज्ञानिक (कीट विज्ञान)
2. डॉ. के.के. बर्मन, प्रधान वैज्ञानिक (मृदा विज्ञान)
3. डॉ. आर.पी. दुबे, प्रधान वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान)
4. डॉ. शोभा सौंधिया, प्रधान वैज्ञानिक (कार्बनिक रसायन)
5. डॉ. पी.के. मुखर्जी, प्रधान वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान)
6. डॉ. वी.के. चौधरी, वरिष्ठ वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान)
7. डॉ. योगिता घरडे, वैज्ञानिक (कृषि सांख्यिकी)
8. डॉ. दिबाकर घोष, वैज्ञानिक (सस्य विज्ञान)
9. डॉ. सुभाष चन्द्र, वैज्ञानिक (आर्थिक वनस्पति विज्ञान और पादप अनुवांशिक संसाधन)
10. इंजी. चेतन सी.आर., वैज्ञानिक (कृषि अभियांत्रकीय)
11. डॉ. दीपक पवार, वैज्ञानिक (कृषि जैव प्रौद्योगिकी)
12. श्री दिबाकर रॉय, वैज्ञानिक (मृदा विज्ञान)
13. डॉ. हिमांशु महावर, वैज्ञानिक (कृषि सूक्ष्म जीव विज्ञान)
14. डॉ. दसारी श्रीकांत, वैज्ञानिक (पादप कार्यिकी विज्ञान)
15. इंजी. वैभव चौधरी, वैज्ञानिक (कृषि अभियांत्रकीय)

तकनीकी वर्ग

1. श्री आर.एस. उपाध्याय, टी–9 मुख्य तकनीकी अधिकारी
2. श्री संदीप धगट, टी–9 मुख्य तकनीकी अधिकारी
3. श्री व्ही.के.एस. मेश्राम, टी–7–8 सहा.मुख्य तक.अधिकारी
4. श्री जी.आर. डोंगरे, टी–7–8 सहा.मुख्य तक. अधिकारी
5. श्री पंकज शुक्ला, टी–7–8 सहा.मुख्य तक. अधिकारी
6. श्री जे.एन. सेन, टी–6 वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी
7. श्री एस.के. पारे, टी–6 वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी
8. श्री बसंत मिश्रा, टी–6 वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी
9. श्री ओ.एन. तिवारी, टी–6 वरिष्ठ तकनीकी अधिकारी
10. श्री के.के. तिवारी, टी–5 तकनीकी अधिकारी
11. श्री एस.के. तिवारी, टी–5 तकनीकी अधिकारी
12. श्री घनश्याम विश्वकर्मा, टी–5 तकनीकी अधिकारी
13. श्री एस.के. बोस, टी–5 तकनीकी अधिकारी
14. श्री मुकेश कुमार मीणा, टी–5 तकनीकी अधिकारी
15. श्री अजय पाल सिंह, टी–5 तकनीकी अधिकारी
16. श्री भगुन्ते प्रसाद, टी–4 (वाहन चालक) व. तक. सहायक
17. श्री प्रेम लाल दाहिया, टी–4 (वाहन चालक) व. तक. सहायक
18. श्री दिलीप साहू, टी–4 (वाहन चालक) व. तक. सहायक
19. श्री सबस्टीन दास, टी–4 (वाहन चालक) व. तक. सहायक
20. श्रीमती इति राठी, टी–3 तकनीकी सहायक
21. श्री व्ही.एस. रैकवार, टी–1 तकनीशियन

प्रशासनिक वर्ग

1. श्री सुजीत वर्मा, प्रशासनिक अधिकारी
2. श्री आर. हाड़गे, सहायक प्रशासनिक अधिकारी
3. श्री एम.एस. हेडाऊ, सहायक वित्त एवं लेखा अधिकारी
4. श्रीमती निधि शर्मा, निज सचिव
5. श्री मनोज गुप्ता, निज सहायक
6. श्री टी. लखेरा, कार्यालय सहायक
7. श्री बी.पी. उरिया, कार्यालय सहायक
8. श्री फ्रांसिस जेवियर, वरिष्ठ लिपिक

कुशल सहायी वर्ग

1. श्री वीरसिंह, कुशल सहायी कर्मी
2. श्री राजू प्रसाद, कुशल सहायी कर्मी
3. श्री जागोली प्रसाद, कुशल सहायी कर्मी
4. श्री जगत सिंह, कुशल सहायी कर्मी
5. श्री छोटेलाल यादव, कुशल सहायी कर्मी
6. श्री अनिल शर्मा, कुशल सहायी कर्मी
7. श्री नरेश सिंह, कुशल सहायी कर्मी
8. श्री शंकर लाल कोष्ठा, कुशल सहायी कर्मी
9. श्री जे.पी. दाहिया, कुशल सहायी कर्मी
10. श्री मदन शर्मा, कुशल सहायी कर्मी
11. श्री शिव कुमार पटेल, कुशल सहायी कर्मी
12. श्री जेठूराम विश्वकर्मा, कुशल सहायी कर्मी
13. श्री अश्विनी कुमार तिवारी, कुशल सहायी कर्मी
14. श्री सुरेश चंद्र रजक, कुशल सहायी कर्मी
15. श्री गज्जूलाल, कुशल सहायी कर्मी
16. श्री गंगाराम कोल, कुशल सहायी कर्मी
17. श्री संतलाल रजक, कुशल सहायी कर्मी
18. श्री महेन्द्र पटेल, कुशल सहायी कर्मी
19. श्री संतोष रैदास, कुशल सहायी कर्मी
20. श्री नेमीचंद कुर्मी, कुशल सहायी कर्मी
21. श्री मोहन लाल दुबे, कुशल सहायी कर्मी

निदेशालय में वर्ष भर में आयोजित विभिन्न कार्यक्रम

निदेशालय के स्थापना दिवस के अवसर पर उद्‌बोधन देते हुए मुख्य अतिथि डॉ. पी.के. बिसेन, कुलपति, ज.ने. कृ.वि.वि. जबलपुर

स्थापना दिवस कार्यक्रम के अवसर पर मुख्य अतिथि डॉ. पी.के. बिसेन, कुलपति, ज.ने.कृ.वि.वि., जबलपुर को स्मृति चिह्न भेंट करते हुए निदेशक डॉ. पी.के. सिंह

निदेशालय में बालदिवस के अवसर पर बच्चों को संबोधित करते हुए डॉ. वी. के. चौधरी, वरिष्ठ वैज्ञानिक

निदेशालय में दिनांक 21.06.219 को आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस कार्यक्रम का दृश्य

अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस कार्यक्रम पर ग्रामीण अंचल में आयोजित कार्यक्रम का दृश्य

निदेशालय में दिनांक 8 मार्च 2020 को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर आयोजित कार्यक्रम में कृषक महिलाओं से परिचचर्चा करते हुए निदेशक महोदय

गाजरघास सप्ताह के दौरान आयोजित गतिविधियां

गाजरघास जागरूकता सप्ताह 16-22 अगस्त 2019 कार्यक्रम में भाग लेते निदेशक महोदय एवं निदेशालय के सदस्यगण

गाजरघास जागरूकता सप्ताह के अवसर पर आयोजित कार्यक्रम में गाजरघास खाने वाले कीड़ों का कृषकों को वितरण करते हुए निदेशक डॉ. पी.के. सिंह

गाजरघास जागरूकता सप्ताह के अवसर पर नवोदय विद्यालय, बरगी के विद्यार्थियों को संबोधित करते निदेशक डॉ. पी.के. सिंह

गाजरघास जागरूकता सप्ताह के अंतर्गत कृषक प्रशिक्षण कार्यक्रम का दृश्य एवं मंचासीन क्यू.आर.टी. के सदस्य

निदेशालय में आयोजित बैठकें

दिनांक 17-19 अगस्त 2019 को निदेशालय में आयोजित क्यू.आर.टी. की बैठक का दृश्य

दिनांक 25-26 फरवरी 2020 को निदेशालय में आयोजित आर.ए.सी. की बैठक का दृश्य

निदेशालय में वर्ष भर में आयोजित विभिन्न कार्यक्रम

स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर ध्वजारोहण करते हुए
निदेशक डॉ. पी.के. सिंह

सद्भावना दिवस के अवसर पर साम्प्रदायिक सद्भावना शपथ
दिलाते हुए निदेशक डॉ. पी.के. सिंह

राष्ट्रीय एकता दिवस के अवसर पर संबोधित करते हुए
डॉ. आर.पी. दुबे, प्रधान वैज्ञानिक

साम्प्रदायिक सद्भाव अभियान सप्ताह एवं झंडा दिवस के
अवसर पर डॉ. आर.पी. दुबे, प्रधान वैज्ञानिक संबोधित करते हुए

संविधान दिवस के अवसर पर मंचासीन डॉ. आर.पी. दुबे,
प्रधान वैज्ञानिक एवं सुजीत कुमार वर्मा, प्रशासनिक अधिकारी

स्वच्छता पखवाड़े के दौरान आयोजित किसान दिवस के अवसर
पर मंचासीन निदेशक, वैज्ञानिकगण एवं कृषक

स्वच्छता अभियान के दौरान संपन्न विभिन्न गतिविधियां

दिनांक 16-31 दिसम्बर 2019 स्वच्छता पखवाड़ा के दौरान जनजागृति कार्यक्रम में उपस्थित कृषक समुदाय

गांधी जयंती पर स्वच्छता अभियान के दौरान विंग्स कान्वेंट स्कूल, जबलपुर के सहयोग से निदेशालय द्वारा आयोजित जन-चेतना रैली

'स्वच्छता ही सेवा' कार्यक्रम के तहत निदेशक महोदय निदेशालय के कर्मचारियों को शपथ दिलाते हुए

'स्वच्छता ही सेवा' कार्यक्रम के तहत ग्राम मनकेड़ी प्राथमिक शाला में कूड़ेदान प्रदान करते हुए निदेशालय के वैज्ञानिक

स्वच्छता पखवाड़े के दौरान निदेशालय में आयोजित कार्यक्रम का दृश्य

स्वच्छता पखवाड़े के समापन समारोह का दृश्य

निदेशालय में वर्ष भर में आयोजित विभिन्न कार्यक्रम

दिनांक 18 सितम्बर 2019 को आयोजित 28वीं संस्थान प्रबंधन समिति की बैठक का दृश्य

फार्मर फर्स्ट प्रोग्राम के अंतर्गत निदेशालय द्वारा ग्राम बरोदा-पनागर में खेत दिवस का आयोजन

सतर्कता जागरूकता सप्ताह के अवसर पर डॉ. आर.पी. दुबे, सतर्कता अधिकारी द्वारा कर्मचारीगण को शपथ दिलाते हुए

सतर्कता जागरूकता सप्ताह के अवसर पर आयोजित वाद-विवाद प्रतियोगिता का दृश्य

निदेशालय में आयोजित प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्रशिक्षार्थियों से परिचर्चा करते हुए निदेशक महोदय।

निदेशालय में अनुसूचित जाति उपयोजना (एस.सी.एस.पी.) के अंतर्गत आयोजित कृषक परिचर्चा एवं प्रक्षेत्र भ्रमण का दृश्य

निदेशालय में वर्ष भर में आयोजित विभिन्न कार्यक्रम

निदेशालय में भ्रमण हेतु पधारे महाविद्यालय की छात्राओं को संबोधित करते हुए डॉ. वी.के. चौधरी, वरिष्ठ वैज्ञानिक

निदेशालय में आयोजित राज्य कृषि प्रबंधन संस्थान, रहमानखेड़ा, लखनऊ, उत्तरप्रदेश द्वारा प्रायोजित प्रशिक्षण कार्यक्रम का दृश्य

बायोटेक किसान हब प्रोजेक्ट के अंतर्गत प्रशिक्षण सह प्रक्षेत्र भ्रमण कार्यक्रम का दृश्य

माता गुजरी महिला महाविद्यालय, जबलपुर की छात्राओं के निदेशालय में शैक्षणिक भ्रमण का दृश्य

अनुसूचित जाति उपयोजना के अंतर्गत कृषक परिचर्चा के अवसर पर उपस्थित निदेशक, उपयोजना प्रभारी एवं कृषक

भा.कृ.अनु.प. के अंतर संस्थानिक खेल प्रतियोगिता में निदेशालय के उत्कृष्ट प्रदर्शन करने पर खेल टीम को संबोधित करते हुए निदेशक महोदय

हिन्दी कार्यशालाओं का आयोजन

हिन्दी राजभाषा कार्यशाला में चर्चा करते हुए श्री मनोज कुमार, हिन्दी प्रभाग, भा.कृ.अनु.प., नई दिल्ली

हिन्दी राजभाषा कार्यशाला के अवसर पर वक्ता डॉ. वी.के. चौधरी को स्मृति चिन्ह प्रदान करते हुए निदेशक डॉ. पी.के. सिंह

राजभाषा हिन्दी पखवाड़े के दौरान संपन्न विभिन्न गतिविधियाँ

निदेशालय में आयोजित हिन्दी दिवस के अवसर पर वर्ष भर हिन्दी में कार्य करने हेतु शपथ लेते हुए स्टाफ सदस्य

राजभाषा हिन्दी पखवाड़े के दौरान आयोजित वाद-विवाद प्रतियोगिता का दृश्य

राजभाषा हिन्दी पखवाड़े के दौरान आयोजित क्विज कान्टेस्ट प्रतियोगिता का दृश्य

राजभाषा हिन्दी पखवाड़े के दौरान आयोजित तात्कालिक निबंध प्रतियोगिता का दृश्य

राजभाषा हिन्दी पखवाड़े के दौरान संपन्न विभिन्न गतिविधियाँ

राजभाषा हिन्दी पखवाड़े के दौरान आयोजित शुद्ध लेखन प्रतियोगिता का दृश्य

हिन्दी पखवाड़ा समापन समारोह के अवसर पर मंचासीन मुख्य अतिथि प्रो. वीणा तिवारी एवं अतिथिगण डॉ. जितेन्द्र जामदार एवं हास्य कवि श्री शर्मा जी

राजभाषा हिन्दी पखवाड़े के दौरान आयोजित समापन समारोह के अवसर पर तृण संदेश पत्रिका के चौदहवें अंक के विमोचन का दृश्य

राजभाषा हिन्दी पखवाड़े के समापन समारोह के अवसर पर विशिष्ट अतिथि डॉ. जितेन्द्र जामदार का सम्मान करते हुए निदेशक महोदय

वर्ष भर में सर्वाधिक हिन्दी कार्य करने वाले सम्पदा अनुभाग को पुरस्कार प्रदान करते हुए विशिष्ट अतिथि

राजभाषा हिन्दी पखवाड़े के समापन समारोह के अवसर पर विजयी प्रतियोगियों को पुरस्कार प्रदान करते हुए निदेशक एवं अतिथिगण

समाचारों में भाकृअनुप-खरपतवार अनुसंधान निदेशालय

भा.कृ.अनु.प. – खरपतवार अनुसंधान निदेशालय
ICAR - Directorate of Weed Research

जबलपुर, मध्य प्रदेश

आई.एस.ओ. 9001 : 2015 प्रमाणित

ISO 9001 : 2015 Certified

Amrit # 8349634350